ISSN NO. 0970-9398

सत्यमेव जयते

राजभाषा भारती

वर्ष 48 अंक 173 जून, 2026

भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग

हमारे प्रेरणा स्रोत

"हमें प्रयत्नपूर्वक हिंदुस्तान की सभी बोलियों व भाषाओं में जो उत्तम चीजें हैं, उन्हें हिंदी भाषा की समृद्धि के लिए उसका हिस्सा बनाना चाहिए और यह प्रक्रिया अविरल चलती रहनी चाहिए।"

—नरेन्द्र मोदी (प्रधान मंत्री)

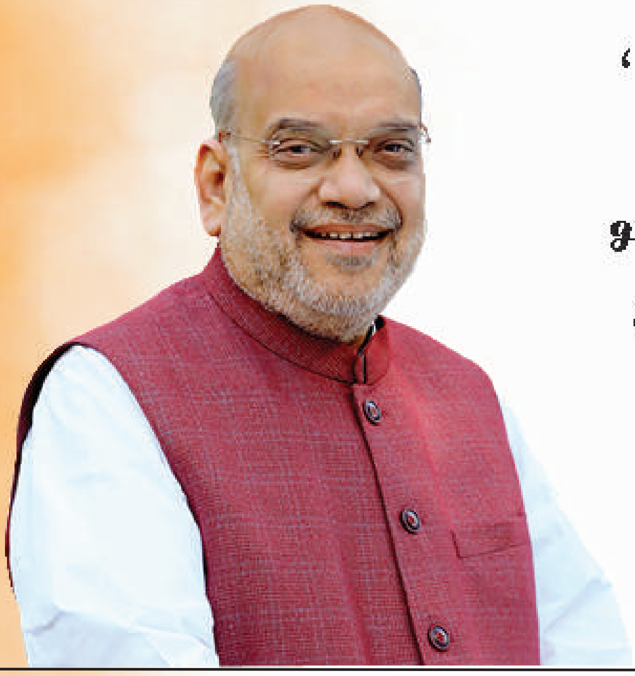

"राजभाषा का विकास तभी हो सकता है जब सभी स्थानीय भाषाओं का विकास हो। देशभर की जनता का यह लक्ष्य होना चाहिए कि हम राजभाषा को मजबूत करें।"

—अमित शाह (गृह एवं सहकारिता मंत्री)

राजभाषा भारती

वर्ष : 48 अंक : 173 जून, 2026

"भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है, हिंदी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।"

–नरेन्द्र मोदी, प्रधान मंत्री

संरक्षक
अंशुली आर्या
सचिव, राजभाषा विभाग

प्रधान संपादक
डॉ. निधि पाण्डेय
संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग

राजेश कुमार श्रीवास्तव
संयुक्त निदेशक (पत्रिका)

संपादन
वीरेन्द्र कुमार
सहायक निदेशक (पत्रिका)

टंकण एवं वितरण सहयोग
अनिल कनौजिया, प्रत्यूष यादव, प्रीतम सिंह

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पत्र-व्यवहार का पता:
संयुक्त निदेशक (पत्रिका)
राजभाषा विभाग
एनडीसीसी-II भवन, चौथा तल,
बी विंग, जय सिंह रोड, नई दिल्ली-**110001**
ईमेल – patrika-ol@nic.in
वेबसाइट – rajbhasha.nic.in

निःशुल्क वितरण के लिए

शुभकामना संदेश :

सचिव, राजभाषा विभाग का संदेश
संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग का संदेश

लेख :

क्र. सं.	शीर्षक	रचनाकार का नाम	पृष्ठ सं.
1.	सिन्दूर : परम्परा, प्रतीक एवं पराक्रम	प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र	05
2.	सिन्दूर : एक प्रतीक	डॉ. प्रीता पँवार	09
3.	भारत के संविधान निर्माण में महिलाओं की भूमिका	संदीप कुमार	13
4.	हिंदी की देशव्यापी स्वीकार्यता	डॉ. अक्षय भास्कर बाजपेयी	22
5.	भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पर्याय : राष्ट्रभाषा हिंदी	डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता	27
6.	महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा का स्वप्न	डॉ. आलोक कुमार पाण्डेय	32
7.	विकसित भारत@2047 की परिकल्पना और राजभाषा हिंदी	डॉ. जे. आत्माराम	36
8.	स्वभाषा : स्वाभिमान का प्रतीक	विकास कौशल	39
9.	हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में परस्पर समभाव	डॉ. जुगनू खट्टर भाटिया	43
10.	तमिल और हिंदी का भाषिक अंतर्संबंध	प्रो. पी. राजरत्नम	51
11.	हिंदी और असमिया भाषा में समभाव	डॉ. बिंद कुमार चौहान	54

राजभाषा भारती

क्र. सं.	शीर्षक	रचनाकार का नाम	पृष्ठ सं.
12.	स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत का योगदान	डॉ. जगदीश व्योम	57
13.	भाषाई समरसता से राष्ट्रीय समरसता	डॉ. वी. वेंकटेश्वर राव	63
14.	हिंदी के प्रचार–प्रसार में दक्षिण भारतीय हिंदी शिक्षकों का योगदान	डॉ. मिलन बिश्नोई	67
15.	आधुनिक भारतीय भाषाओं की लिपि, ध्वनि एवं रूपगत एकता का विश्लेषण	संजय कुमार पाण्डेय	73
16.	भाषाई विरासत का संरक्षण–भारत की लुप्त एवं लघु भाषाओं का वाचन और रक्षण	रश्मि	78
17.	लोकतंत्र में सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा की भूमिका	हितेन्द्र धूमाल	82
18.	वित्तीय समावेशन अभियान में भारतीय भाषाओं की भूमिका	डॉ. संजय कुमार	86
19.	चिकित्सा विज्ञान का हिंदी माध्यम से शिक्षण	अमित कुमार वर्मा	90
20.	डिजिटल इंडिया और राजभाषा: तकनीकी क्रांति में एक–दूसरे के सहयोगी	डॉ. रवि देव	92
21.	कृत्रिम मेधा तथा हिंदी भाषा का भविष्य	मंजुला वाधवा	97
22.	हिंदी के प्रयोग में कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद की भूमिका	डॉ. दीनदयाल	103
23.	भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित संस्कृति और भाषा	डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता	112

अंशुली आर्या, आई.ए.एस.
सचिव
ANSHULIARYA, I.A.S.
Secretary

भारत सरकार
राजभाषा विभाग
गृह मंत्रालय
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTER OF HOMEAFFAIRS
DEPARTMENT OF OFFICIAL LANGUAGE

संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि राजभाषा विभाग की त्रैमासिक पत्रिका 'राजभाषा भारती' के 173वें अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। दशकों से राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार, संवर्धन एवं जनसरोकारों से जुड़े वैचारिक विमर्शों की सशक्त संवाहिका के रूप में में यह पत्रिका हिंदी जगत में अपनी विशिष्ट एवं गरिमामयी पहचान बनाए हुए है।

14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया। गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग केंद्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों, उपक्रमों, बैंकों में राजभाषा हिंदी के संवैधानिक प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन तथा व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु निरंतर सक्रिय भूमिका निभा रहा है। विभाग के सतत प्रयासों से सरकारी काम–काज में हिंदी के व्यापक प्रयोग को बल मिला है तथा प्रशासनिक कार्यप्रणाली को अधिक सरल, लोकहितकारी एवं सुगम बनाने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह एवं माननीय गृह राज्य मंत्री श्री नित्यानन्द राय जी के प्रेरणादायक और दूरदर्शी नेतृत्व में राजभाषा विभाग ने हिंदी के संवर्धन एवं प्रसार हेतु अनेक अभिनव पहल की हैं। इनमें बृहत डिजिटल शब्दकोश 'हिंदी शब्द सिंधु', भारतीय भाषाओं के समन्वित एवं समावेशी विकास के लिए 'भारतीय भाषा अनुभाग' की स्थापना, 'भारती – बहुभाषी अनुवाद सारथी' का विकास तथा महत्वपूर्ण विषयों पर विविध उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिंदी केवल संप्रेषण की भाषा नहीं, अपितु भारत की समृद्ध भाषायी एवं सांस्कृतिक विरासत को एक सूत्र में पिरोने वाली जीवंत कड़ी है। यह देश की आत्मा, जनमानस की संवेदनाओं तथा करोड़ों भारतीयों के पारस्परिक संवाद, सहभागिता और राष्ट्रीय एकात्मता की सशक्त वाहक है।

'राजभाषा भारती' के इस अंक में विविध विषयों पर संकलित चिंतनपरक, ज्ञानवर्धक एवं सारगर्भित सामग्री न केवल प्रबुद्ध पाठकों का ज्ञानवर्धन करेगी अपितु राजभाषा हिंदी के प्रति नई चेतना, जागरूकता और सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

आइए, हम सभी मिलकर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को और अधिक सशक्त, सक्षम एवं समृद्ध बनाते हुए इन्हें ज्ञान–विज्ञान, सुशासन, नवाचार तथा राष्ट्रीय एकात्मता का प्रभावी माध्यम बनाएं तथा आत्मनिर्भर, गौरवशाली एवं विकसित भारत के स्वप्न को साकार करने में सक्रिय सहभागिता निभाएँ ।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित,

अं आर्या
(अंशुली आर्या)

डॉ० निधि पाण्डेय, भा.प्र.से.
संयुक्त सचिव
Dr. Nidhi Pandey, IAS
Joint Secretary

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
राजभाषा विभाग
गृह मंत्रालय
नई दिल्ली–110001
GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF OFFICIAL LANGUAGE
MINISTRY OF HOMEAFFAIRS
NEW DELHI-110001

संदेश

'राजभाषा भारती' पत्रिका का 173वां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह पत्रिका राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार के सशक्त माध्यम के रूप में हिंदी प्रेमियों तथा राजभाषा कार्यान्वयन से जुड़े पाठकों के बीच लोकप्रिय है।

हिंदी हमारी राजभाषा होने के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक चेतना की सशक्त भाषा है। देश के विविध भाषाई एवं सांस्कृतिक समुदायों को एक सूत्र में पिरोने वाली प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में हिंदी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। हिंदी की व्यापक जनस्वीकार्यता, सहजता, समावेशी स्वरूप एवं राष्ट्रीय महत्व को दृष्टिगत रखते हुए संविधान निर्माताओं ने इसे संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकार किया।

माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी तथा गृह राज्य मंत्री श्री नित्यानन्द राय जी के दूरदर्शी नेतृत्व एवं कुशल मार्गदर्शन में गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभावी एवं अभिनव उपयोग द्वारा राजभाषा हिंदी को तकनीकी रूप से अधिक सशक्त, समृद्ध और भविष्योन्मुख बनाने हेतु अनेक महत्वपूर्ण परियोजनाओं का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन कर रहा है। विभाग हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के तकनीकी समन्वय, डिजिटल शब्द संसाधनों के विकास तथा भाषा आधारित नवाचारों के माध्यम से हिंदी को आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और प्रशासन की अधिक प्रभावी, व्यावहारिक और जनोन्मुख भाषा बनाने की दिशा में निरंतर अग्रसर है।

विभाग की पत्रिका 'राजभाषा भारती' संघ की राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार, प्रोत्साहन और सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभा रही है। इस पत्रिका में देशभर से प्रतिष्ठित विद्वानों, लेखकों एवं शोधार्थियों से हिंदी भाषा, राष्ट्रीय सुरक्षा, कृषि, विज्ञान, पर्यावरण, भूमंडलीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी तथा कृत्रिम मेधा जैसे विविध समसामयिक विषयों पर प्राप्त ज्ञानवर्धक एवं रोचक लेख प्रकाशित किए जाते रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'राजभाषा भारती' भविष्य में भी हिंदी प्रेमियों एवं शोधार्थियों के लिए प्रेरणा एवं ज्ञान का विश्वसनीय स्रोत बनी रहेगी।

मैं 'राजभाषा भारती' के सभी सुधी पाठकों एवं लेखकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ तथा आशा करती हूँ कि पत्रिका को और अधिक उपयोगी, ज्ञानवर्धक, समसामयिक एवं आकर्षक बनाने के लिए आपके बहुमूल्य सुझाव एवं प्रतिक्रियाएं निरंतर प्राप्त होती रहेंगी।

शुभकामनाओं सहित,

(डॉ. निधि पाण्डेय)

ISSN No. : 0970-9398

सिन्दूर: परम्परा, प्रतीक एवं पराक्रम

– प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
पद्म श्री, पूर्व कुलपति

भारतीय देवशास्त्र चारों वेद संहिताओं में प्राप्त होता है पूरे विस्तार के साथ। परन्तु वह छन्दोबद्ध तथा देवस्तुतिपरक होने के कारण, संस्कृत से अपरिचित लोगों के लिए अधिक बोधगम्य नहीं। परन्तु देवस्तुतियों का ही प्रतिपाद्य, परवर्ती उपनिषदों में भी, सरस वार्तालाप–शैली में उपन्यस्त किया गया है, जो अत्यंत आकर्षक तथा सुग्राह्य भी है। यह वार्तालाप कहीं (कठोपनिषद्) नचिकेता तथा यम के संवाद–रूप में है, तो कहीं याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी के संवाद–रूप में (वृहदारण्यकोपनिषद्), तो कहीं सत्यकाम जाबाल एवं महर्षि गौतम के संवाद–रूप में।

भारतीय उपनिषदों में इन सन्दर्भों में पारलौकिक रहस्यों की सारी जटिलताओं, सृष्टि–रहस्यों तथा मन–बुद्धि–अहंकार, अन्तःकरण–आत्मा–इन्द्रिय तथा महाभूत–तन्मात्राओं का स्वरूप बड़ी सरलता से स्पष्ट किया गया है। फ्रांस का दार्शनिक शोपेनहॉवर भी उपनिषदों के महाज्ञान पर समर्पित था।[1] पैगम्बर मुहम्मद साहब भी उपनिषदों को 'किताबे मक्नून' (आसमानी अर्थात दिव्य ग्रन्थ) कहते हैं जिसका विस्तृत विवरण दाराशिकोह ने अपने 'औपनखत' (उपनिषदों का फारसी अनुवाद) में दिया है।[2]

उपनिषदों के अनुसार सर्वान्तर्यामी निर्गुण, निराकार परमेश्वर ने अपनी लीला मात्र से ही सर्वप्रथम आध्यात्मिक सृष्टि की, जो मानसिक एवं संकल्पात्मक थी। इसका रोचक वर्णन ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में मिलता है। इस प्रयत्न की सफलता के बाद ही उसने आधिदैविक सृष्टि की जिसमें उसने रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण का आश्रय ले स्वयं को ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु के रूप में विस्तृत किया। अगले चरण में उसने इन्द्र, वरूण, यम, वायु, कुबेर, नासत्य तथा अन्य अनेक देवी–देवताओं की संरचना की– यथापूर्वमकल्पयत्।[3]

परन्तु देवता अमर्त्य तथा अदृश्य हैं। वे मरण–धर्मा मानवों के अभिभावक, संरक्षक तथा अनुभूति के विषय तो हैं, परन्तु प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हैं। फलतः परमेश्वर ने तीसरे चरण में मर्त्यसृष्टि (Mortal Creation) की, चर तथा अचर (अथवा जड़ एवं जंगम) के रूप में। यह सृष्टि पंच महाभूतों पर आश्रित आधिभौतिक सृष्टि थी। इसमें उत्पन्न प्राणी चार कोटियों के थे– पिण्डज अथवा जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज! जैसे देवसृष्टि में सात जातियों के देवकोटिक प्राणी हैं–

विद्याधरोऽप्सरो रक्षोयक्षगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचा गुह्यकाश्चामी सप्रैता देवयोनयः।

उसी प्रकार मर्त्यप्राणी भी उपर्युक्त चार प्रमुख जातियों के हैं – पिण्डज (मनुष्य, पशु), अण्डज (पक्षी, सर्पादि), स्वेदज (कीड़े–मकोड़े) तथा उद्भिज्ज (धरती को उद्भिन्न कर पैदा होने वाले, वनस्पति–समूह)।

भारतीय संस्कृति में प्रारंभ से ही आध्यात्मिक (Living with Supreme God – ईश्वर) तथा आधिदैविक (Living with Gods) के साथ–साथ आधिभौतिक जीवन जीने की परम्परा रही है। फलतः पृथ्वी के शान्त तथा धर्मप्राण मनुष्य विशाल यज्ञों तथा नित्य नैमित्तिक धर्माचरणों से देवताओं को सन्तुष्ट करते थे तथा इसके बदले देवगण भी पृथ्वीवासियों को सुवृष्टि, सुभक्ष्य तथा नाना प्रकार के अन्य वैभव तथा ऐश्वर्य प्रदान करते थे। मनुष्य देवों से प्रार्थना करता था–

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा
यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति
मा नो मध्या रीरिषताऽऽयुर्गन्तोः।।

यहाँ प्रश्न उठता है कि देवता भी मानवों जैसे ही हैं? वे कहां रहते हैं? उनका व्यक्तित्व–कर्तृत्व तथा व्यवहार कैसा है?

निरुक्तकार यास्क (ई.पू. नवीं शती) के युग में भी यही आशंका थी। परन्तु उन्होंने स्पष्टतः देवताओं की 'पुरुष विधता' सिद्ध की है। देवता शक्ति के प्रतीक तो हैं ही, वे मानवों जैसे ही शरीरधारी भी हैं। सतयुग, त्रेता तथा द्वापर में वे यज्ञों में आवाहन करने पर प्रत्यक्ष आते भी थे तथा सोमपान भी करते थे।

ISSN No. : 0970-9398

भारतवर्ष के तपःपूत ऋषियों–महर्षियों ने अपनी नैष्ठिक तपश्चर्या द्वारा अदृश्य देवताओं के विषय में सब कुछ जान लिया है। गहन–समाधि में, इन्द्रादि देवताओं के साथ ऐकात्म्य स्थापित कर – ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान की त्रिपुटी बाधा से रहित दशा में देवमय हुए ऋषियों ने न केवल देवों को प्रत्यक्ष देखा, मन की आंखों से, प्रत्युत यह सब जान लिया कि उन्हें कौन भक्ष्य पेय प्रिय है, कौन वर्ण (रंग) प्रिय है, कौन धातु, कौन पुष्प तथा कौन परिधान प्रिय है? यह संभव हुआ 'अभ्यानर्षण प्रक्रिया' (सूक्ष्मानुभूति) से जो मीमांसा शास्त्र की एक विलक्षण ज्ञानविधि है। यह अतीन्द्रिय है। इस ज्ञान में पंच ज्ञानेन्द्रियों का अपने विषयों से साक्षात् सम्पर्क होना अपेक्षित नहीं। इसे 'योगजप्रत्यक्ष' भी कहते हैं जो केवल भारत में विकसित हुई। इस विधि से अनभिज्ञ लोग ही व्यास–वाल्मीकि के वर्णनों में अविश्वास करते हैं।

देवताओं के सांगोपांग जीवन का यह विवरण हमें आचार्य शौनक प्रणीत बृहद्देवता तथा पुराण–वाङ्मय में मिलता है। इसी के आधार पर देवताओं की पंचोपचार, षोडशोपचार तथा बृहत्कोटिक पुरश्चरणों की परम्परा का उदय हुआ, जिसका अद्भुत शास्त्रीय विधान हमें आगम–साहित्य में मिलता है। निगम तथा आगम परम्परापेक्ष युग्म शब्द हैं। निगम अथवा वेद में देशक विषयक ज्ञान (स्तवन स्वरूपचित्रण) मात्र है, परन्तु आगमों में उन देवों की वृहत्ध् पूजाविधि, कामनासिद्धि हेतु उनके कठोर पुरश्चरण, तन्त्रोपाय, शतनाम, सहस्रनाम तथा वरिवस्या के अनेक जटिल विवरण उपलब्ध हैं।

आगमों को ही तन्त्र भी कहते हैं जो मंत्र का पूरक है। भारतीय जनमानस की आस्था है कि जिस घर में पवित्र तन्त्र ग्रंथ होता है उसमें साक्षात् परमेश्वर का वास होता है। ये तन्त्र विविध देवताओं तथा उनके श्रोता भक्तों के संवाद–रूप में होने के कारण मुख्यतः चार प्रकार के हैं:–

1. शैवतन्त्र – वक्ता शिव, श्रोता पार्वती
2. शाक्ततन्त्र – वक्ता पार्वती, श्रोता शिव
3. यामलतन्त्र – शिव पार्वती दोनों ही वक्ता–श्रोता
4. वैष्णवतन्त्र – वक्ता नारायण, श्रोता लक्ष्मी

भारत का आगमिक अथवा तान्त्रिक वाङ्मय आकाश विस्तृत तथा सागर गंभीर है। एक जन्म में एक ही देवता का तन्त्रवाङ्मय पढ़ पाना असंभव है। शिव–पार्वती तथा विष्णु के अतिरिक्त गणपति, कार्तिकेय, कालभैरव तथा वीर–शैव सम्प्रदायादि के भी पुष्कल आगम हैं।

वस्तुतः आगम प्रत्येक शास्त्र का होता है, सिद्धांत का व्यवहार या प्रयोग होने के कारण। आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र (ई.पू. चतुर्थ शती) यदि रंगमंच विज्ञान है तो रंगशाला उसका आगमपक्ष है जिसमें नान्दीपाठ, कुतप (वाद्यवृन्द) विधान, ध्रुवाविधान तथा रंगदैवत–पूजा (जर्जरपूजा) आदि आते हैं।

इसी तन्त्रविधान अथवा आगमिक व्यवस्था का एक विलक्षण तत्त्व है– सिन्दूर जो प्रारंभ से ही आह्लादकता, अप्रतिहतशक्ति तथा शत्रुविनाश का स्रोत रहा है। व्यक्तित्व का अविच्छेद्य धर्म होने के कारण सिन्दूर, संस्कृति के उदयकाल से ही अखिल ब्रह्माण्डेश्वरी शक्तिस्वरूपा भगवती पार्वती, (उनके पुत्र) गणपति, सूर्य एवं आंजनेय हनुमान का अनिवार्य प्रिय पदार्थ रहा है तथा अन्यान्य सभी पूज्यदेवों का काम्य! भगवती पार्वती का सौभाग्यसूचक होने के कारण सिन्दूर सदैव उनके सीमन्त (माँग) में विद्यमान रहता है:–

तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी–
परीवाहस्रोतः सरणिरिव सीमन्तसरणिः।

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर–
द्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम्।।

–सौन्दर्यलहरी

भगवान गणपति के मस्तक पर प्रभूत सिन्दूर विद्यमान रहता है। जब वह कान फड़फड़ाते हैं तो वही सिन्दूर उड़कर आकाश व्याप्त कर लेता है। लगता है मानो संध्या घिर आई। शार्ङ्गधरपद्धति का यह पद्य पढ़ें–

चलत्कर्णानिलोद्धूतसिन्दूरारुणिताम्बरः।
जयत्वकालेऽपि सृजन् सन्ध्यामिव गजाननः।।

निर्वाणतन्त्र में भी गणपति को सम्पूर्ण शरीर में सिन्दूर से व्याप्त बताया गया है–

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं।
खड्गं पाशाङ्कुशेष्टान्यरुणकरलसद्वारुणी पूर्णकुम्भं।।

बालसूर्य की प्रातःकालीन किरणें सर्वथा सिन्दूर समान होती हैं। वे जब हाथी के मस्तक पर पड़ती हैं तो महावत को भ्रम हो जाता है सिन्दूर का। वह हाथी का मस्तक झाड़ने लगता है। ऐसा ही भ्रम औरों को भी होता है–

सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थमाधोरणा।
भिल्लीपल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु।।

कान्ताः कुङ्कुमशङ्कया करतले मृद्गन्ति लग्नं च यत्।
तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरं चिरं पातु वःघ्।।

– त्रिविक्रमकविः

यह दीर्घ प्रसंग अब यहीं छोड़ते हैं। यह जानना आवश्यक है कि भारत में सिन्दूर का प्रयोग कितना प्राचीन है। इसका सटीक उत्तर है – वेदमंत्रों जैसा प्राचीन। ऋग्वेद के दशम मंडल का आठवां सूक्त सूर्या एवं सोम के विवाह का है। संभवतः संपूर्ण विश्ववाङ्मय का यह प्राचीनतम विवरण है जिसमें भारतीय प्राजापत्य विवाहविधि का सविस्तार वर्णन किया गया है। अथर्ववेद के चतुर्दश काण्ड में भी यह सूक्त दो खण्डों में प्रस्तुत है। पहले में 64 मंत्र हैं तथा दूसरे सूक्त में 75 मंत्र हैं। इन सूक्तों में सूर्य की पुत्री सूर्या तथा सोम का मंगलमय विवाह वर्णित है। अधिकांश मंत्र वर–वधू के आशीर्वाद के रूप में हैं। अनेक मंत्रों में सूर्या सरीखी सुन्दरी की प्राप्ति के संदर्भ में सोम का प्रहर्ष, परितोष, कृतार्थता का भाव तथा अपने मंगल–दाम्पत्य की कामना है।

सोम कहता है कि श्रेष्ठ देवों ने मुझे सहधर्माचरण हेतु सूर्या को प्रदान किया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह मेरे घर में सम्राज्ञी बन कर रहे तथा सास, ससुर आदि सभी कुटुम्बियों पर अपने सद्गुणों से राज करे।

भगस्त्वेतोनयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नीयथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।।

इह प्रियंप्रजायै ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्यातन्वं सं सपृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि।।

यथासिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधिपत्युरस्तं परेत्य।

सम्राज्ञ्येधिश्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युतश्वर्श्वाः।

ममेयमस्तुपोष्या मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्।।

येनाग्निरस्याभूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा
मया सह प्रजया च धनेन च।।

–अथर्ववेद, काण्ड–14

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन।।

रुक्मप्रस्तरणंवह्यं विश्वा रुपाणि विभ्रतम्।
आरोहत्सूर्या सावित्री बृहतेसौभगाय कम्।।

–अथर्ववेद 14 (2) 28, 30

वस्तुतः सूर्या–सोम विवाह–सूक्त ही, अगले चरण में पारस्कर गृह्यसूत्र तथा मनुस्मृति–प्रभृति स्मृतियों एवं कौटिल्यार्थशास्त्र के विवाह–प्रकरण का बीज रूप है। इस सूक्त में आया रुक्मप्रस्तरणंवह्यं विश्वा रुपाणि विभ्रतम् वधू के सीमन्त में रुक्म अर्थात् सुवर्ण की भाँति देदीप्यमान सुहाग–सिन्दूर का प्रतीक है। यहां रुक्म को सिन्दूर का पर्याय मानता हूँ मैं। सोना लाल नहीं प्रत्युत सिन्दूर वर्ण होता है। वेदों के जटिल आशय को समझने के लिए ही कालान्तर में छह वेदांगों का उदय हुआ– शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष तथा छन्द।

तीसरे चरण में स्मृतियां आयीं। स्मृतियां भी वेदार्थ की ही व्याख्या करती हैं जैसा कि महाकवि कालिदास ने (ई. पू. द्वितीय शती) कहा– श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

ऋग्वेद के अनेक अन्य सन्दर्भों की तरह ही सूर्या–सोम विवाह प्रकरण भी रूपकात्मक ही है। उस रूपक का मर्म समझने से ही, भारतीय नारी के सौभाग्य–प्रतीकभूत सिन्दूर का महत्व समझ में आता है।

ग्रह विज्ञान बताता है कि चन्द्रमा स्वयंज्योतित नहीं है (जबकि पृथ्वी में अपनी ज्योति है)। चन्द्रमा को ज्योतित करती है सूर्य की एक विशिष्ट किरण–सुषुम्णा। सुषुम्णा में आह्लादन, उद्योतन तथा अप्रतिहत सामर्थ्य (शौर्य–पराक्रम) का गुण है।

इसी ग्रहमण्डलीय सत्य पर आधारित है सूर्या–सोम विवाहसूक्त। पुराणों में सूर्य की सन्ततियों में (प्रथम पत्नी संज्ञा से) वैवस्वत मनु, यम तथा यमी आते हैं। यम–यमी जुड़वाँ हैं। दूसरी पत्नी छाया (अथवा सवर्णा) से शनैश्चर

का जन्म हुआ। अन्ततः अश्विवनीरूपधारिणी (प्रथम पत्नी) संज्ञा से जुड़वॉ अश्विनी कुमार हुए। इस प्रकार सूर्य की सन्ततियों में सूर्या नहीं है।

चूँकि सूर्य की सुषुम्णा नामक किरण ही निस्तेज चन्द्रमा को बलवीर्य (ओषधीश), आह्लादकता (अमृतांशु) तथा दीप्ति (पार्वण मृगांक) प्रदान करती है, फलतः वेद सूक्तकार (सोम, सूर्या तथा अन्य अनेक देव) सुषुम्णा–किरण को ही सूर्यपुत्री (सूर्या) मान लेता है तथा उसी को वधूरूप में कल्पित कर सोम (वर) को आह्लादक, उद्दीपक तथा पराक्रमी बना देता है।

सिन्दूरवर्णी सूर्य की सुषुम्णा किरण ही भारतीय वधू का सीमन्त–सिन्दूर है। यह सिन्दूर रमणी के रूप–सौन्दर्य तथा उसके सौभाग्य का प्रतीक है। परन्तु इसी सिन्दूर ने संकट एवं अवमानना की वेला में महाकाली का रूप धारण कर शत्रुओं का सर्वनाश भी किया है। महारानी पद्मिनी, राणा सांगा की पत्नी महारानी कर्मवती तथा रणथम्भौर नरेश राव हम्मीर की महिषी (सन् 1401 ई. अलाउद्दीन का आक्रमण) के भयावह जौहरव्रत इसके ज्वलन्त ऐतिहासिक प्रमाण हैं। रानी लक्ष्मीबाई, रानी चेनम्मा तथा रानी दुर्गावती के भी सिन्दूरों की गाथा अद्भुत है।

भारतीय साहित्य में सिन्दूर की महिमा–गरिमा, जीवन के प्रत्येक विवर्त में मिलती है। उसका पौराणिक, धार्मिक तथा सामाजिक महत्व तो है ही, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक महत्व भी है। साहित्यिक एवं लोकगीतात्मक हिंदी कविता में भी सिन्दूर शिखर पर है। राम–सीता वन जाते हैं तो वर्षा का भयावह रूप देखकर माता कौशल्या यही विलाप करती है कि मेरी सीता का सिन्दूर तथा राम–लक्ष्मण का पटुका भींग रहा होगा। किस पेड़ के नीचे खड़े होंगे मेरे बच्चे?

नववधू घर में आती है तो सारा घर समझ लेता है कि वह सौभाग्य का दीप लेकर ही आ रही है। प्रश्नोत्तर–शैली में गीतकार लिखता है–

केथुवा के नेहवा केथुववा कै बाती
केथुववा के दियना गउरी के लिलार?

केसिया कै नेहवा सेन्दुरवा कै बाती
सुहगवा कै दियना लछमी के लिलार।।

सौभाग्य का दीप लेकर आती है बहू। काले केश ही हैं उस दीप का तेल तथा सिन्दूर–रेखा ही है वर्तिका (बाती)। भारतीय परंपरा में सिन्दूर केवल श्रृंगार का चिह्न नहीं, बल्कि वैवाहिक जीवन की पवित्रता, निष्ठा और अखंड सौभाग्य का प्रतीक है। यही सिन्दूर परिवार के जीवन में उजाला, विश्वास और मंगल का संदेश देता है। दीपक की बाती जिस प्रकार स्वयं जलकर चारों ओर प्रकाश फैलाती है, उसी प्रकार एक बहू अपने कर्तव्यों, प्रेम और त्याग से पूरे परिवार के जीवन को आलोकित करती है।

दुर्भाग्य कि जिन अभागों की संस्कृति (?) में सिन्दूर है ही नहीं वे उसे समझ भी नहीं सके। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में सिन्दूर केवल लाल रंग की रेखा नहीं, बल्कि प्रेम, विश्वास, समर्पण और परिवार की निरंतरता का उज्ज्वल प्रतीक है। जो लोग इन भावनात्मक और सांस्कृतिक आयामों से अपरिचित हैं, वे उसके बाहरी रूप को तो देख सकते हैं, पर उसकी आत्मा को नहीं समझ सकते।

संदर्भ–

1. यह (उपनिषद्) एक सर्वाधिक कृतार्थ करने वाला पाठ है जो संसार में संभव हो सकता है। उससे मुझे जीवन में शांति मिलती है और मृत्यु में भी मिलेगी।

   – शोपेनहॉवर

   यदि शोपेनहॉवर के इन शब्दों के लिए किसी समर्थन की आवश्यकता है तो मैं अपने जीवनभर के अध्ययन के आधार पर, प्रसन्नतापूर्वक अपना समर्थन दूँगा।

   – फ्रेडरिक मैक्समूलर

2. सविस्तार द्रष्टव्य मेरा ग्रंथ–विश्वगुरू भारत

3. पुरूषसूक्त

सिंदूर : एक प्रतीक

– डॉ. प्रीता पँवार
पूर्व प्राचार्य, स्नातकोत्तर राजकीय नेहरू महाविद्यालय,
फरीदाबाद

सनातन धर्म मात्र धर्म न होकर एक संतुलित, स्वस्थ व सांस्कृतिक रूप से समृद्ध जीवन शैली का पर्याय रहा है और सिंदूर इसका प्रतीक! सिंदूर जहाँ सौभाग्य वहाँ! सिंदूर रक्ताभ भी, सिंदूर पीत वर्ण का भी! सिंदूर नभ और धरा पे बिखरा तो प्रकृति प्रफुल्लित हुई, पल्लवित हुई। स्त्री भी तो प्रकृति रूपा! सिंदूर स्त्री की मांग में सुसज्जित हो तो सौभाग्य बरसे, संसार बसे, घर बार सजे, जीवन का व्यापार चले, हर्ष के अनेकानेक दीप जले! सिंदूर है तो आभा है, आशा है, जिजीविषा है! सिंदूर है तो गति है, उन्नति है, प्रगति है! सिंदूर है तो प्रीति है, संतति है, समृद्धि है! सिंदूर है तो मान है, मुस्कान है, पहचान है! नारी का ही नही वरन् सिंदूर तो देवताओं का भी श्रृंगार है। सनातन जीवन की अनगिनत पौराणिक व प्रागैतिहासिक कथाएँ सिंदूर के अलौकिक महत्व से जुड़ी हैं।

सिंदूर का प्रयोग व महत्व सहस्रों वर्ष पुराना है। सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों से ज्ञात होता है कि लाल रंग का पदार्थ उस समय सौंदर्य, उपासना व साधना में प्रयोग होता था। हिंदू शास्त्रों में सिंदूर को सौभाग्य और आध्यात्मिकता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। स्कंद पुराण के अनुसार माता पार्वती ने भगवान शिव के साथ अपने वैवाहिक बंधन को मजबूत बनाने के लिए सिंदूर लगाया था। कहाँ सहज पाया था माँ पार्वती ने महादेव को! वर्षों की कठिन तपस्या! वर्षों की साधना! तब अघोरी शिव ने पार्वती को अंगीकार किया। सो पार्वती माँ ने शिव को अपनी सिंदूर की रेखा से सदैव के लिए बांध लिया। अब शिव पार्वती एक थे–शिवशक्ति! अर्धनारीश्वर! संपूर्ण सृष्टि! इसलिए मान्यता यह है कि माँ गौरा को सिंदूर चढ़ाया जाता है और माँ गौरा को चढ़ाया हुआ सिंदूर लगाने से अखंड सौभाग्य का वरदान प्राप्त होता है। मान्यता यह भी है कि नाक की सीध में सिंदूर लगाने से पति को खूब मान सम्मान प्राप्त होता है तथा वैवाहिक जीवन में स्थिरता आती है। सिंदूर बुरी नजर तथा नकारात्मक शक्तियों से सुहागन की और उसके घर–परिवार की रक्षा करता है। पद्म पुराण में लाल रंग के सिंदूर को शक्ति, समृद्धि और वैवाहिक स्थिरता का प्रतीक माना गया है। महाभारत में द्रौपदी के संदर्भ में सिंदूर का उल्लेख मिलता है। दुर्योधन, दुशासन और कर्ण द्वारा अपमान के बाद द्रौपदी ने अपने केश उस समय तक खोल कर रखने का संकल्प लिया जब तक वो उन दुराचारियों के लहू से अपने केश धो न ले। यहाँ सिंदूर प्रतीक बन गया स्त्री के प्रचंड रूप का! स्त्री केवल कोमलांगिनी ही नही है बल्कि प्रतिकार लेना भी जानती है। जब उसके सम्मान और अस्मिता की बात आती है तो वो किसी प्रकार का समझौता भी नही करती।

इसी प्रकार माना जाता है कि माता सीता भी अपना श्रृंगार करते समय मांग में सिंदूर जरूर भरती थीं। जब हनुमान जी ने उन्हें ऐसा करते हुए देखा तो माता सीता से सवाल किया कि वो सिंदूर क्यों लगातीं हैं। इस पर देवी जानकी ने उत्तर दिया कि इससे भगवान राम को प्रसन्नता मिलती है और उनकी आयु दीर्घ होती है। अब हनुमान जी तो भगवान राम के परम भक्त ठहरे! उन्होने तो अपना पूरा वज्र शरीर ही सिंदूर से रंग लिया। यहाँ सिंदूर प्रतीक बन गया श्रद्धा का, शौर्य का, भक्ति का, पूर्ण समर्पण का।

आयुर्वेद के ग्रंथ चरक संहिता में सिंदूर को औषधीय गुणों वाला बताया गया है। ज्योतिष में सिंदूर को साहस और ऊर्जा से ओत प्रोत मंगल ग्रह का प्रतीक माना गया है। इसे लगाने से मंगल दोष का प्रभाव कम होता है जो वैवाहिक बंधन को न केवल पवित्र बनाता है बल्कि परिवार में सुख शांति भी लाता है। इसके अतिरिक्त माँग में सिंदूर लगाने से आध्यात्मिक ऊर्जा जागृत होती है जो घर की स्वामिनी को मानसिक शांति और आत्मविश्वास देती है। पारंपरिक सिंदूर में हल्दी, चूना और पारे का मिश्रण होता है। पारा त्वचा के जरिए अवशोषित होकर दिमाग की नसों को शांत करता है जिससे तनाव और चिंता कम होती है। मांग का मध्य भाग, जहाँ सिंदूर लगाया जाता है, आयुर्वेद और एक्युप्रेशर में महत्वपूर्ण माना जाता है। पुरुषों के मुकाबले महिलाओं के मस्तिष्क का यह भाग बहुत संवेदनशील और कोमल होता है। सिंदूर में मौजूद तत्व इस स्थान से शरीर की विद्युत ऊर्जा को नियंत्रित करता है। इस जगह हल्का दबाव या स्पर्श रक्त प्रवाह को बेहतर बनाता है। लाल रंग मनोवैज्ञानिक रूप से सकारात्मकता व ऊर्जा को बढ़ाता है। सिंदूर में पारा धातु की अधिकता होती है जिससे चेहरे पर झुर्रियाँ नही पड़तीं। हल्दी से बना सिंदूर ऐंटी बैक्टीरियल और ऐंटी इनफ्लेमेटरी गुणों से युक्त होता

ISSN No. : 0970-9398

है जो त्वचा को स्वस्थ रखता है। लाल रंग सूर्य की किरणों को सोखता है जिससे मस्तिष्क का तापमान नियंत्रित रहता है और सिर दर्द या तनाव से राहत मिलती है। इसी प्रकार सिंदूर तंत्र एवं धर्म से जुड़े क्रिया कलापों में भी बहुप्रचारित सामग्री है।

सिंदूर केवल माँग की लकीर नही है बल्कि स्त्री की अस्मिता का प्रतीक है। सिंदूर का लाल रंग शक्ति, ऊर्जा और संघर्ष का प्रतीक है। यह रंग नारी की आंतरिक शक्ति और तप की झलक भी देता है। यही कारण है कि देवी दुर्गा की प्रतिमा की पूजा के समय उनके माथे पर सिंदूर लगाया जाता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार सिंदूर को माता लक्ष्मी के सम्मान का भी प्रतीक भी माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि माँ लक्ष्मी इस धरती पर पाँच स्थानों पर निवास करती हैं। इनमें से पहला स्थान स्त्री का मस्तक है, जहाँ विवाह के बाद महिलाएँ सिंदूर भरती हैं। यही कारण है कि महिलाओं को देवी का स्वरूप भी माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि लाल रंग में माता सती और पार्वती की भी ऊर्जा शामिल होती है। यह सिंदूर महिला में छिपी वीरांगना की निशानी भी माना जाता है। अतः सिंदूर हिंदू स्त्री के लिए सिर्फ श्रृंगार नही बल्कि आस्था, प्रेम, समर्पण व गरिमा का प्रतीक है। वहीं पीले रंग का सिंदूर गुरु ग्रह और भगवान विष्णु से संबंधित माना जाता है। पीले रंग का सिंदूर जीवन के प्रकाश को दर्शाता है। किसी भी धार्मिक कार्य में पीला रंग पहनने और पीले रंग का प्रयोग करने से शुभ फलों की प्राप्ति होती है। मांग में पीला सिंदूर लगाने से शुभत्व प्राप्त होता है और इसका प्रतीकात्मक अर्थ भी है। सिंदूर का सबसे विशिष्ट रूप बिहार में छठ पूजा के दौरान देखा जाता है। छठ पूजा पर घाट पर एकत्रित हुई महिलाएँ मांग से नाक तक सिंदूर लगाए दिखती हैं जिसे देखने के बाद दिमाग में एक ही बात आती है कि ऐसा क्यों? ऐसी इसलिए है कि सिंदूर को नाक से लेकर सिर पर लंबी लाइन बनाकर लगाने से पति की उम्र लंबी होती है क्योंकि मांग का सिंदूर जितना लंबा होगा पति की आयु भी उतनी ही लंबी होगी।

इस संदर्भ में यदि माँ कामाख्या की बात न हो तो सिंदूर के महत्व की विवेचना अधूरी रह जाएगी। सदियों से चली आ रही मान्यता और अटूट विश्वास के अनुसार जो कोई कामाख्या माता के सिंदूर का प्रयोग करता है उस पर देवी माँ की कृपा बनी रहती है। माना जाता है कि यह सिंदूर जादू–टोना, गृह क्लेश, कारोबार में बाधा, विवाह या प्रेम की समस्या या दूसरी तरह की समस्याओं को दूर करता है। कामाख्या सिंदूर देवी कामाख्या का शुभ प्रसाद है। यह भी उसी माँ कामाख्या के मंदिर के सिंदूर की पारलौकिक शक्ति रही होगी जिसे माथे पे लगाकर लगाकर असम भूमि के वीर अहोम नृपों की वीर सेनाओं ने मुस्लिम आक्रान्ताओं को शताब्दियों तक अपनी धरा पर पग तक धरने नहीं दिया।

माथे पर सिंदूर लगाने की भी आदि परंपरा रही है। सिंदूर उग्रता का प्रतीक है। यह साधक की शक्ति या तेज बढाने में सहायक माना जाता है। विगत काल में जब भी नृप गण अपनी सेना के साथ युद्ध में उतरते थे तो लाल रंग के सिंदूर से ही तिलक लगाते थे। वहाँ लाल रंग उत्सर्ग का प्रतीक बन जाता था – अब विजय या मृत्यु! मध्य का कुछ भी नहीं! अब रणक्षेत्र से तभी वापसी होगी जब शत्रु के लहू से मातृभूमि का स्नान करा दिया जाए या स्वयं के लहू से मातृभूमि को सिंचित कर दिया जाए! तो सिंदूर केवल श्रृंगार की वस्तु नही, नारी का अलंकार मात्र नहीं – यह तो प्रतीक है रणभूमि के उस त्योहार का जिसमें फाग खेला जाता है लहू की उफनती, उबलती धाराओं के संग! यह प्रतीक है शौर्य का! यह प्रतीक है उस सार्वभौमिक, अकाट्य सत्य का कि अंधकार कितना ही निर्मम क्यों न हो – अंततः अरुणाभा की सिंदूरी छटा उस आसुरी तम को भेद ही लेगी। सिंदूर प्रतीक है ब्रह्मांड में अनवरत चलने वाले उस द्वंद का जिसमें विजय अंधकार पर प्रकाश की, असत्य पर सत्य की और अंततः अधर्म पर धर्म की होती है।

सनातन धर्म एक चैतन्य व स्वस्थ जीवनशैली का पर्याय है और यही कारण है कि इस धरा पर मानव

सभ्यताओं के प्रादुर्भाव से ही सनातन धर्म विद्यमान रहा है और आज के इस आधुनिक युग में भी यह सनातन विचारधारा अपनी प्रासंगिकता को बनाए हुए है। किंतु विचलित करने वाला तथ्य यह है कि राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के बावजूद भी भारत मानसिक व वैचारिक दृष्टि से स्वतंत्र नही हो पाया। तुष्टीकरण की राजनीति के जो बीज अंग्रेजों ने बोए वो स्वतंत्रता के बाद समूल नष्ट होने की बजाय और भी अधिक फलने फूलने लगे, नए नए नैरेटिव पनपने लगे और तथाकथित धर्म निरपेक्षता की आड़ में भारत की चिर सनातनी सभ्यता के चिह्नों का महत्व न केवल क्षीण हुआ अपितु वे शनैः शनैः उपहास के पात्र भी बनते गए। स्वयं को साम्यवादी व सेक्युलर कहने वाले राजनैतिक दलों, एन.जी.ओ बनाकर उसकी आड़ में छद्म एजेंडा चलाने वाले बुद्धिजीवियों और बॉलीवुड के तथाकथित कलाकारों ने सनातनी अवधारणाओं का न केवल उपहास उड़ाया बल्कि अपने इस घातक उपक्रम में उन्होंने इनकी गरिमा व उपयोगिता को भीतर तक ठेस पहुँचा कर राष्ट्र के भविष्य को भी धूमिल किया है। यदि कोई राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक भव्यता को विस्मृत कर बैठता है, अपने अतीत के स्वर्णिम कालखंड को नकार देता है, अपनी वैचारिक संपदा की तिलांजलि दे बैठता है – तो ऐसा राष्ट्र कालांतर में अपना अस्तित्व ही गँवा देता है।

आज सोया भारत जाग रहा है, उसकी आत्मा चौतन्य हो रही है, वो अपने विस्मृत मूल्यों को पहचान रहा है। आज विश्व इस तथ्य से अवगत हो रहा है कि साड़ी धारिणी सिंदूर लगाने वाली भारतीय महिला कोई दीन हीन स्त्री नही है बल्कि वो अपनी संस्कृति की संवाहक है। वो अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भी सहेज कर रख रही है और न केवल राष्ट्र निर्माण में अपनी सशक्त भूमिका का निर्वहन कर रही है अपितु विश्व पटल पर अपनी उपलब्धियों से सबको चकित भी कर रही है। समूचा विश्व जानता है कि भारत बहुत ही कम लागत पर मंगल यान भेजने में सफल हुआ और इस कार्य का श्रेय भारत की उन महिला वैज्ञानिकों को जाता है जो भारतीय परिवेश में पूर्णतः रची बसी थीं। इसी प्रकार इसरो में ऐसी भी कई महिला वैज्ञानिक हैं जिन्होने भारत के लिए आधुनिक से आधुनिक मिसाइल तैयार कर भारत की सुरक्षा में अपना महती योगदान दिया। सेना में भारतीय महिलाओं की दमदार उपस्थिति किसी से छिपी नही है।

पहलगाम के आतंकवादी हमले में पाकिस्तानी आतंकियों ने चुन–चुन कर हिंदू स्त्रियों के सिंदूर उजाड़े। किंतु अब इतिहास के कुकृत्यों की पुनरावृति मंजूर नही थी। अब भारतीय नारी के मांग के सिंदूर की रक्षा करनी थी। अब अपमान का घूँट पीकर चुप नहीं बैठना था। अब मोदी जी के नेतृत्व में नई सरकार थी, नए तेवर थे, नए तरीके थे! अतः पूर्ववत खामोश होकर नहीं बैठी सरकार! तुरंत निर्णय लिए गए, सेना नें मोर्चे संभाले, शत्रुओं पर सटीक वार किए गए और एक गौरवान्वित इतिहास रच दिया गया। इतिहास यह रचा गया कि कोई भी दुराचारी भारत की माँ बहिन के सिंदूर को हल्के में लेने का दुस्साहस कदापि न करे! कोई भी आततायी यदि सिंदूर से खिलवाड़ करेगा तो उसकी धज्जियाँ उड़ा दी जाएंगी, उसके आतंक के ठिकानों को धूल में मिला दिया जाएगा, उसके हथियारों के जखीरों में आग लगा दी जाएगी, उसके एयर बेसों को ध्वस्त कर दिया जाएगा, उसके एयर डिफेंस सिस्टम को निरस्त कर दिया जाएगा और यही किया गया भारत की बहादुर सेना द्वारा 6–7 मई 2025 की रात को जब भारतीय सेना ने पाकिस्तान के सभी आतंकी ठिकाने आग के हवाले कर दिये। शताब्दियों की प्रतीक्षा रंग लाई! भारत भूमि की बेटियों की मांग का सिंदूर कब से बाट जोह रहा था कि कोई तो ऐसा युग पुरुष हो जो उनकी माँग उजाड़नें वालों को दंड दे सके और उन्हें न्याय दिला सके। प्रतीक्षा थी भारतीय ललनाओं के सिंदूर को ऐसे सटीक प्रहारों की, प्रतिकारों की, प्रतिशोधों की! अनगिनत वर्ष बीत गए थे – अपमानित होते हुए! पूरे भारतीय उपमहाद्वीप का वायुमंडल भारतीय ललनाओं की निरूशब्द वेदनाओं, व्यथाओं व व्याकुलता से भरा हुआ हुआ है। पाकिस्तान की 26% हिंदू आबादी कैसे घट कर 2% रह गई , बांग्लादेश की 36% हिंदू आबादी कैसे घट कर 4% रह गई – ये उन अभागी ललनाओं की आत्माओं से कोई पूछे जिनके क्षत विक्षत तन की काली परछाइयाँ युगों युगों से भारत भूमि के ऊपर मंडरा रही हैं।

पहली बार भारत ने अपनी माताओं और बहनों के सिंदूर के गौरव की रक्षा के लिए, उनकी अस्मिता की रक्षा के लिए, उनके अश्रुओं का मूल्य चुकाने के लिए इतनी सशक्त सैन्य कार्रवाई की और सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि तीन दिन के इस आकाशीय युद्ध में शत्रु हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। संभवतः महाभारत के बाद यह हुआ कि नारी के सम्मान के लिए, नारी की अस्मिता की रक्षा के लिए कोई युद्ध हुआ हो और जो इतनी सटीकता से और इतनी तीव्रता से जीत भी लिया गया हो। अतः निश्चित रूप से समूचे विश्व ने देखा कि भारतीय नारी की मांग में सजा सिंदूर कोई रंग मात्र नही है, कोई श्रृंगार या आडंबर मात्र नहीं है, कोई पिछड़ेपन का चिह्न नहीं है – यह तो एक समूची संस्कृति और सभ्यता की निरंतरता व ऊर्जा का पर्याय है। जब तक भारत की बेटियों और बहनों की मांग का सिंदूर अक्षुण्ण रहेगा तब तक भारत भूमि स्वतंत्र रहेगी, भारत का गौरव अक्षुण्ण रहेगा, भारत का आकाश

ISSN No. : 0970-9398

निर्भीक रहेगा, भारत की हवाएँ उन्मुक्त रहेंगी, भारत का वर्तमान सुदृढ़ और भविष्य उज्ज्वल रहेगा। यह ऑपरेशन सिंदूर का जलवा है कि समूचा विश्व भारत की ललनाओं की मांग में सजे सिंदूर को कौतुक से देख रहा है और नतमस्तक भी हो रहा है। तभी तो भारत की लोकप्रिय अभिनेत्री ऐश्वर्या राय बनारसी साड़ी धारण किए, मांग में सिंदूर सजाए सांस्कृतिक संवाहक बन फ्रांस के कान्स शहर में आयोजित अंतरराष्ट्रीय फिल्म व फैशन महोत्सव कान्स पहुँची, जहाँ एक से एक बढ़कर अंतरराष्ट्रीय मीडिया व फैशन तथा फिल्मी जगत के दिग्गजों का जमावड़ा था। अब भारतीय नारी की मांग का सिंदूर कोई आश्चर्य या उपहास की वस्तु नहीं था। अब वो भारतीय नारी की गरिमा, अस्मिता और साधना का परिचायक बन गया। युगों युगों पहले द्रौपदी का अपमान हुआ था। उस अपमान का प्रतिशोध बना महाभारत का युद्ध। उसके बाद सहस्रों वर्ष बीते। सहस्रों अग्नि परीक्षाओं से गुजरी भारतीय नारी। सहस्रों वर्षों का तप और त्याग। सहस्रों वर्षों की अपमान की पीड़ा भरी गाथाएँ! सहस्रों वर्षों की परीक्षाएँ! तब इस युग में आज गौरवशाली क्षण आया ऑपरेशन सिंदूर का जिसने आततायियों को खुली चुनौती दी कि भारत की बेटियों के सिंदूर का अपमान किसी भी रूप में बर्दाश्त नहीं। ऑपरेशन सिंदूर ने सफलता के अद्‌भुत आयाम रचे। भारतीय नारी की मांग के सिंदूर के आगे समूचा विश्व नतमस्तक हुआ। निस्संदेह भारत की सुहागिनों की मांग में सजा सिंदूर भारत की अस्मिता और सांस्कृतिक गरिमा का परिचायक है और उस सिंदूर का किसी भी प्रकार का अपमान भारत के गौरव का अपमान है जिसे आज का भारत कदापि सहने वाला नही है।

ISSN No. : 0970-9398

भारत के संविधान निर्माण में महिलाओं की भूमिका

– संदीप कुमार
उप निदेशक (राजभाषा), पर्यटन मंत्रालय

भारत का इतिहास केवल पुरुष नेतृत्व का इतिहास नहीं है, बल्कि इसकी बुनियाद में महिलाओं की अदम्य शक्ति, संघर्षशीलता और असाधारण बुद्धिमत्ता भी शामिल है। वेदों की ऋचाओं को रचने वाली गार्गी और मैत्रेयी, या फिर शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाली मंडन मिश्र की पत्नी उभय भारती–भारतीय नारी का ज्ञान, विवेक और आत्मबल सदैव अनुकरणीय रहा है। इसी परंपरा का विस्तार आधुनिक भारत में संविधान निर्माण के समय दिखा, जब स्वतंत्र भारत की आधारशिला रखने वाले इस महान कार्य में 15 प्रतिभाशाली महिलाएँ शामिल हुईं। इन महिलाओं ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया बल्कि संविधान सभा में अपने विचारों, तर्कों और सुझावों से भारत को एक समतामूलक, न्यायप्रिय और लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश एक विशाल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चुनौती के सामने खड़ा था। विविधताओं से भरे इस देश को एक ऐसा संविधान चाहिए था जो हर नागरिक को समान अधिकार दे सके और शासन की दिशा व गति तय कर सके। 1946 में गठित संविधान सभा में 389 सदस्य थे, जिनमें 15 महिलाएं–बहुत कम संख्या में होते हुए भी असाधारण रूप से सक्रिय और प्रभावशाली थीं। इन महिलाओं ने मुद्दों पर स्पष्टता और संवेदनशीलता दोनों को सामने रखा। इस लेख में इन सभी 15 असाधारण महिलाओं की भूमिका को संक्षिप्त में समझने का प्रयास किया गया है और बताया गया है कि भारत के संविधान निर्माण में उनका योगदान क्यों ऐतिहासिक रूप से अमूल्य है।

भारतीय संविधान केवल कानून का दस्तावेज नहीं है, यह राष्ट्र की आत्मा है। इसकी प्रस्तावना, मूल अधिकार, नीति निदेशक तत्व और विभिन्न अनुच्छेद लोकतांत्रिक सोच, सामाजिक न्याय और समानता के मूल सिद्धांतों पर आधारित हैं। महिलाओं ने संविधान निर्माण के हर भाग में समानता, शिक्षा, सामाजिक न्याय, अल्पसंख्यक अधिकारों और राजनीतिक भागीदारी जैसे मुद्दों को मजबूती से उठाया।

भारतीय संविधान के निर्माण में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायी रही है। संविधान सभा में उपस्थित महिला सदस्यों ने केवल औपचारिक भागीदारी नहीं निभाई, बल्कि उन्होंने राष्ट्र निर्माण की दिशा और दृष्टि को आकार देने में सक्रिय योगदान दिया। हंसा मेहता, दुर्गाबाई देशमुख, राजकुमारी अमृत कौर तथा सुचेता कृपलानी जैसी दूरदर्शी महिलाओं ने समानता, महिला शिक्षा, सामाजिक न्याय, श्रमिक अधिकार, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा तथा राजनीतिक भागीदारी जैसे विषयों को संविधान में समुचित स्थान दिलाने हेतु प्रभावशाली विचार प्रस्तुत किए।

इन महिलाओं ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान केवल शासन संचालन का माध्यम न होकर सामाजिक परिवर्तन का सशक्त उपकरण बने। उन्होंने लैंगिक भेदभाव के उन्मूलन, महिलाओं को समान नागरिक अधिकार प्रदान करने तथा समाज के वंचित वर्गों को न्याय दिलाने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। उनके प्रयासों का ही परिणाम है कि भारतीय संविधान महिलाओं को समान अवसर, सम्मान और अधिकार प्रदान करते हुए एक समावेशी एवं प्रगतिशील समाज की आधारशिला रखता है।

उनकी उपस्थिति ने यह सुनिश्चित किया कि स्वतंत्र भारत केवल औपचारिक लोकतंत्र न रहे, बल्कि एक सामाजिक–आर्थिक लोकतंत्र भी बने। प्रस्तुत आलेख में उन 15 प्रतिभाशाली महिलाओं का जीवन वृत संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

1. सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडू का जन्म 13 फरवरी 1879 को हैदराबाद में हुआ था। कुशाग्र बुद्धि की धनी सरोजिनी नायडू ने मात्र 12 वर्ष की उम्र में 12वीं की परीक्षा उत्कृष्ट अंकों के साथ उत्तीर्ण की और 13 वर्ष की आयु में 'लेडी ऑफ द लेक' नामक कविता की रचना की।

1895 में, वे उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड गईं, जहाँ उन्होंने अपनी पढ़ाई के साथ कविताएँ भी लिखीं। उनके पहले कविता संग्रह 'गोल्डन थ्रेशोल्ड' के बाद 'बर्ड ऑफ

ISSN No. : 0970-9398

टाइम' और 'ब्रोकन विंग' ने उन्हें एक प्रतिष्ठित कवयित्री बना दिया। 1898 में, उनका विवाह डॉ. गोविंदराजुलू नायडू से हुआ।

1914 में इंग्लैंड में उनकी मुलाकात महात्मा गांधी से हुई, जिनके विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने अपने जीवन को स्वतंत्रता संग्राम के लिए समर्पित कर दिया। उन्होंने सत्याग्रह और संगठन में अपनी नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया और विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों का नेतृत्व किया, जिसके कारण उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। उन्होंने गाँव–गाँव जाकर देशभक्ति की भावना जगाई और अपने प्रभावशाली भाषणों के माध्यम से लोगों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। वह बहुभाषाविद थीं और अपनी सभाओं में अंग्रेजी, हिंदी, बंगला या गुजराती भाषा में भाषण देती थीं।

उनकी लोकप्रियता और नेतृत्व क्षमता के कारण उन्हें 1925 में कानपुर में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया। 1932 में, वह भारत की प्रतिनिधि बनकर दक्षिण अफ्रीका भी गईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, उन्हें उत्तर प्रदेश का पहला राज्यपाल नियुक्त किया गया। एनी बेसेंट की प्रिय मित्र और गांधीजी की अनुयायी सरोजिनी नायडू ने अपना संपूर्ण जीवन देश की सेवा में अर्पित कर दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, देश के नेतृत्वकर्ताओं के सामने राष्ट्र–निर्माण की चुनौती थी। उन्हें उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बनाया गया, जिससे वे किसी भारतीय राज्य की प्रथम महिला राज्यपाल बनीं। लखनऊ में रहते हुए उन्होंने अत्यंत गरिमा, संवेदनशीलता और कुशल प्रशासनिक क्षमता के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन किया। उनका व्यक्तित्व सरलता, सौम्यता और राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत था, जिसके कारण वे जनसामान्य तथा प्रशासनिक वर्ग दोनों में अत्यंत सम्मानित थीं। उन्होंने राज्यपाल के पद को केवल औपचारिक जिम्मेदारी न मानकर जनसेवा और राष्ट्रहित का माध्यम बनाया।

सरोजिनी नायडू महिलाओं के अधिकारों की प्रबल समर्थक थीं। संविधान निर्माण के दौर में उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, सामाजिक समानता और राजनीतिक सहभागिता जैसे विषयों पर विशेष बल दिया। वे संविधान सभा में महिला अधिकारों की प्रबल समर्थक थीं। उनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब महिलाओं को समान अवसर, सम्मान और नेतृत्व प्रदान किया जाए। उन्होंने भारतीय महिलाओं को सामाजिक बंधनों से बाहर निकलकर शिक्षा, राजनीति और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया।

वे एक प्रभावशाली वक्ता, कुशल प्रशासक और संवेदनशील कवयित्री थीं। अपनी ओजस्वी वाणी और राष्ट्रप्रेम के कारण उन्हें "भारत कोकिला" की उपाधि प्राप्त हुई। 2 मार्च 1949 को उनका निधन हो गया, किंतु उनका जीवन, संघर्ष और योगदान आज भी भारतीय लोकतंत्र और महिला सशक्तिकरण के इतिहास में अमिट प्रेरणा के रूप में विद्यमान है।

2. अम्मू स्वामीनाथन

अम्मुकुट्टी स्वामीनाथन जिसे अम्मू स्वामीनाथन के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की एक सेनानी और भारत की संविधान सभा के लिए चुनी जाने वाली महिला सदस्य थीं।

उनका जन्म 1894 में केरल के पलक्कड़ जिले में हुआ था। अपने पति स्वामीनाथन की प्रेरणा से अम्मू ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया और 1934 में तमिलनाडु में कांग्रेस का एक प्रमुख चेहरा बन गईं। 1917 में अम्मू ने 'महिला भारत संघ' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य महिला अधिकारों और सामाजिक समस्याओं पर आवाज उठाना था। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें एक साल के लिए वेल्लोर जेल भी जाना पड़ा।

अम्मू स्वामीनाथन ने भी भीमराव आंबेडकर के साथ मिलकर संविधान के मसौदे को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे उन अग्रणी महिलाओं में थीं जिन्होंने सामाजिक समानता, महिला अधिकारों और लोकतांत्रिक मूल्यों को सशक्त बनाने के लिए निरंतर कार्य किया। उनका मानना था कि किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र की प्रगति तभी संभव है जब महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और राजनीतिक भागीदारी के समान अधिकार प्राप्त हों। उन्होंने संविधान में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार देने की बात उठाई।

स्वतंत्रता के बाद भी उन्होंने सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभाई। 1952 में वे तमिलनाडु के डिंडिगुल लोकसभा क्षेत्र से चुनी गईं और संसद में पहुंचीं। वे भारतीय राजनीति में महिला नेतृत्व की प्रेरणास्रोत रहीं और अपने विचारों एवं कार्यों के माध्यम से उन्होंने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी और प्रगतिशील बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अम्मू स्वामीनाथन ने हमेशा लैंगिक और जातिगत उत्पीड़न का विरोध किया। 24 नवंबर 1949 को संविधान के मसौदे को पारित करने के लिए अपने भाषण में अम्मू ने कहा, "बाहर के लोग कह रहे हैं कि भारत ने अपनी महिलाओं को बराबर अधिकार नहीं दिए हैं। अब हम कह सकते हैं कि भारतीय लोगों ने स्वयं अपने संविधान को तैयार किया है और महिलाओं को बराबर का अधिकार दिया है।''

उनके पुत्र गोविन्द स्वामीनाथन और दो प्रख्यात पुत्रियाँ– लक्ष्मी सहगल और मृणालिनी साराभाई थीं। गोविन्द स्वामीनाथन एक कानूनी विद्वान, मृणालिनी साराभाई एक नृत्यांगना थी और लक्ष्मी सहगल स्वतन्त्रता संग्राम एवं आजाद हिन्द फौज की सिपाहियों में से एक थी। अम्मु स्वामीनाथन का देहांत 4 जुलाई 1978 को हो गया।

3. बेगम एजाज रसूल

बेगम कदसिया ऐजाज रसूल भारत की संविधान सभा की एकमात्र मुस्लिम महिला सदस्य थीं। इनका जन्म 2 अप्रैल 1909 को हुआ था। 1937 के चुनावों में, उन्होंने एक गैर–आरक्षित सीट से चुनाव लड़ा और उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए चुनी गईं। 1937 से 1940 तक, उन्होंने विधानसभा की उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।

1946 से 1950 तक, उन्होंने संविधान सभा में मुस्लिम लीग के सदस्य के रूप में कार्य किया और इस पद पर पहुँचने वाली एकमात्र मुस्लिम महिला थीं। 1950 में जब मुस्लिम लीग भंग हुई, तो वे कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गईं। अपनी पृष्ठभूमि के बावजूद, उन्होंने जमींदारी उन्मूलन का पुरजोर समर्थन किया और धर्म के आधार पर अलग निर्वाचक मंडल की मांग का कड़ा विरोध किया।

1952 में वे उत्तर प्रदेश के शाहबाद विधानसभा क्षेत्र से विधायक चुनी गईं और साथ ही राज्यसभा की सदस्य भी बनीं। हालांकि, एक साथ दो सदनों का सदस्य होने के कारण 1954 में उन्हें राज्यसभा से इस्तीफा देना पड़ा। इसके बाद, 1969 से 1989 तक वे उत्तर प्रदेश विधानसभा की सदस्य रहीं।

1969 से 1971 के बीच, उन्होंने समाज कल्याण और अल्पसंख्यक कल्याण मंत्री के रूप में कार्य किया। उनके सामाजिक कार्यों के लिए 2000 में भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया।

साहित्य में उनकी रुचि ने उन्हें "Three Weeks in Japan" (जापान में तीन सप्ताह) नामक पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया। इसके अलावा, उन्होंने विभिन्न समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में लेख लिखे। उनकी आत्मकथा "Parda to Parliament:A Muslim Woman in Indian Politics" (पर्दा से संसद तक: भारतीय राजनीति में एक मुस्लिम महिला) नाम से प्रकाशित हुई, जो उनकी राजनीतिक यात्रा को दर्शाती है। दिसंबर 2001 में उनका निधन हो गया।

4. हंसा मेहता

हंसा मेहता का जन्म 3 जुलाई 1897 को बॉम्बे राज्य (अब गुजरात) में हुआ था। उन्होंने 1918 में दर्शनशास्त्र में स्नातक किया और उसके बाद इंग्लैंड में पत्रकारिता और समाजशास्त्र का अध्ययन किया।

हंसा मेहता ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों के बहिष्कार का आयोजन किया और गांधीजी की सलाह पर अन्य आंदोलनों में भी भाग लिया। स्वतंत्र भारत में, वे भारतीय संविधान की मसौदा समिति का हिस्सा बनने वाली 15 महिलाओं में शामिल थीं। वे सलाहकार समिति और मौलिक अधिकारों पर बनी उप–समिति की सदस्य थीं और महिलाओं के लिए समानता और न्याय की प्रबल समर्थक थीं।

उन्होंने 1926 में बॉम्बे स्कूल कमेटी के लिए चुनाव जीता और 1945–46 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्ष बनीं। इस सम्मेलन में उन्होंने महिला अधिकारों के लिए एक चार्टर प्रस्तावित किया। उन्होंने कई महत्वपूर्ण शैक्षिक पदों पर कार्य किया, जिनमें एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय की कुलपति, अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सदस्य, इंटर–यूनिवर्सिटी बोर्ड ऑफ इंडिया की अध्यक्ष और महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा की कुलपति शामिल हैं।

1946 में, हंसा मेहता ने संयुक्त राष्ट्र की महिलाओं की स्थिति पर बनी उप–समिति में भारत का प्रतिनिधित्व किया। 1947–48 में, वे संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग में भारतीय प्रतिनिधि बनीं। उन्होंने "All menAre created

ISSN No. : 0970-9398

equal" वाक्यांश में "men" शब्द की जगह "human beings" करने की सफल वकालत की, जिससे यह "All human beingsAre created equal" बना। इस परिवर्तन से उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि मानवाधिकारों को केवल पुरुषों तक सीमित न रखा जाए, बल्कि महिलाओं को भी समान अधिकार मिले।

उन्होंने वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड, बालकांड और सुंदरकांड का अनुवाद किया। उनके निबंधों का संग्रह 'केतलाक लेखो' (1978) के नाम से प्रकाशित हुआ। 1959 में, भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया। इसके अलावा, भारतीय संविधान सभा में राष्ट्रीय ध्वज को प्रस्तुत करने का गौरव भी हंसा मेहता को प्राप्त हुआ। 1995 में उसका देहांत हो गया।

5. सुचेता कृपलानी

सुचेता कृपलानी का जन्म 25 जून 1908 को अंबाला में हुआ था। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक प्रमुख नेता और राजनीतिज्ञ थीं। वे उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं और इस पद पर आसीन होने वाली भारत की पहली महिला थीं।

उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफेंस कॉलेज से इतिहास में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। 21 वर्ष की उम्र में वे स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होना चाहती थीं, लेकिन 1929 में उनके पिता और बहन के निधन के कारण उन्हें परिवार की जिम्मेदारी उठानी पड़ी। इसके बाद, वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में संवैधानिक इतिहास की व्याख्याता बनीं।

1936 में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वरिष्ठ नेता जे. बी. कृपलानी से विवाह किया। अपने पति के साथ जुड़कर राजनीति में सक्रिय हो गईं। 1940 में, उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की महिला शाखा अखिल भारतीय महिला कांग्रेस की स्थापना की। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने के कारण उन्हें एक वर्ष तक जेल में रहना पड़ा। 1946 में, वे संविधान सभा की सदस्य चुनी गईं और 1949 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे भारतीय राजनीति में सक्रिय रहीं। 1962 में सुचेता कृपलानी ने उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव जीता और कानपुर निर्वाचन क्षेत्र से विधायक बनीं। उन्हें श्रम, सामुदायिक विकास और उद्योग मंत्रालय का कार्यभार सौंपा गया। 1963 में उन्हें उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया, जिससे वे भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री बनीं। वे 1967 तक इस पद पर रहीं।

1971 में, उन्होंने राजनीति से संन्यास ले लिया और अपने पति के साथ दिल्ली में बस गईं। कोई संतान न होने के कारण उन्होंने अपनी संपत्ति और संसाधन लोक कल्याण समिति को दान कर दिए। इसी दौरान, उन्होंने अपनी आत्मकथा 'एन अनफिनिश्ड ऑटोबायोग्राफी' लिखनी शुरू की, जो तीन भागों में प्रकाशित हुई। 1 दिसंबर 1974 को हृदय गति रुक जाने से उनका निधन हो गया।

6. कमला चौधरी

कमला चौधरी का जन्म 22 फरवरी 1908 को लखनऊ में हुआ था। एक महिला होने के नाते उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए कई संघर्षों का सामना करना पड़ा, जिससे उन्हें बचपन से ही महिलाओं की सामाजिक समस्याओं की गहरी समझ हो गई।

कमला चौधरी को बचपन से ही लेखन में रुचि थी, और वह राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित थीं। उन्होंने स्कूली जीवन में ही महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर लिखना शुरू कर दिया था। फरवरी 1922 में उनका विवाह जेएम चौधरी से हुआ। विभिन्न शहरों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में 'रत्न' और 'प्रभाकर' की उपाधि अर्जित की। साहित्य में गहरी दक्षता प्राप्त करने के बाद उन्होंने महिलाओं की आंतरिक पीड़ाओं को अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया।

उनके नारीवादी विचारों के कारण उनके लेखन को उस समय बोल्ड माना जाता था। उन्होंने विधवापन, लैंगिक भेदभाव, महिलाओं की इच्छाओं, मानसिक स्वास्थ्य और महिला मजदूरों के शोषण जैसे गंभीर विषयों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। उनकी प्रमुख कृतियों में उन्माद (1934), पिकनिक (1936), यात्रा (1947), बेल पत्र और प्रसादी कमंडल शामिल हैं।

सिर्फ साहित्य ही नहीं, बल्कि सामाजिक कार्यों में भी कमला चौधरी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1930 में उन्होंने पारिवारिक परंपराओं को तोड़ते हुए राजनीति में कदम रखा और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़ गईं। उन्होंने स्वतंत्रता

संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया और महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले सविनय अवज्ञा आंदोलन में हिस्सा लिया, जिसके कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा। 1947 से 1952 तक वह संविधान सभा की सदस्य रहीं, और बाद में जिला कांग्रेस कमेटी और प्रांतीय महिला कांग्रेस कमेटी में विभिन्न पदों पर कार्यरत रहीं। 1962 में वह हापुड़ से लोकसभा चुनाव जीतकर संसद की सदस्य बनीं।

कमला चौधरी न केवल एक प्रसिद्ध लेखिका थीं, बल्कि एक समाज सुधारक और प्रभावशाली राजनीतिक नेता भी थीं। महिलाओं के अधिकारों और उनके उत्थान के लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित किया। 1970 में उनका देहांत हो गया।

7. दुर्गाबाई देशमुख

दुर्गाबाई देशमुख का जन्म 15 जुलाई 1909 को आंध्र प्रदेश के राजमुंदरी में हुआ था। उनके पिता बीवीएन रामा राव एक सामाजिक कार्यकर्ता थे, जिनकी निःस्वार्थ सेवा भावना ने उन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होने महिलाओं के शैक्षिक उत्थान के लिए हिंदी पाठशालाओं की स्थापना की।

महात्मा गांधी से प्रेरित होकर उन्होंने कांग्रेस में शामिल होने का निर्णय लिया और एक सक्रिय सेविका बनीं। जब देश में नमक सत्याग्रह चल रहा था, तब स्वतंत्राता सेनानी टी. प्रकाशम की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने मद्रास में सत्याग्रह का नेतृत्व संभाला।

कारावास के दौरान, दुर्गाबाई देशमुख ने महिलाओं पर हो रहे अन्याय को करीब से देखा। उन्होंने पाया कि कई अशिक्षित महिलाएं बिना किसी अपराध के सजा भुगत रही थीं क्योंकि उनके अधिकारों के लिए कोई आवाज उठाने वाला नहीं था। इससे प्रेरित होकर उन्होंने शिक्षा को प्राथमिकता दी और सजा पूरी होने के बाद कानून की पढ़ाई में ध्यान लगाया।

1942 में उन्होने आंध्र महिला सभा की स्थापना की। 1946 में, दुर्गाबाई देशमुख को मद्रास प्रांत से संविधान सभा का सदस्य चुना गया। वह अध्यक्षों के पैनल में शामिल होने वाली एकमात्र महिला थीं। उन्होंने संविधान सभा में अनाथ बच्चों, शिक्षा और महिला अधिकारों को प्रमुखता से उठाया। उनका मानना था कि जब संविधान वन्य जीवों के संरक्षण की बात कर सकता है, तो अनाथ बच्चों और युवाओं की देखभाल और शोषण से मुक्ति के बारे में भी सोचना चाहिए। संविधान सभा में उन्होंने 750 से अधिक संशोधन प्रस्ताव रखे, जिसके कारण वे लगातार चर्चा में रहीं।

1953 में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की पहली अध्यक्ष बनीं और 1958 में भारत सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद की पहली अध्यक्ष भी रहीं। सामाजिक कार्यों में सक्रिय रहते हुए 44 वर्ष की उम्र में उन्होंने भारतीय रिजर्व बैंक के पहले गवर्नर और पूर्व वित्त मंत्री चिंतामन देशमुख से विवाह किया। दुर्गाबाई देशमुख का निधन 9 मई 1981 को हो गया।

8. विजया लक्ष्मी पंडित

विजया लक्ष्मी पंडित का जन्म 18 अगस्त 1900 को प्रतिष्ठित नेहरू परिवार में हुआ था। वो स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की बहन थीं। उनकी शिक्षा मुख्य रूप से घर पर ही हुई। गांधीजी से प्रभावित होकर वे स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगीं। वे हर आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभातीं, कई बार जेल गईं और रिहा होते ही पुनः स्वतंत्रता संग्राम में जुट जातीं।

1921 में उनका विवाह रणजीत सीताराम पंडित से हुआ, जो काठियावाड़ के एक प्रतिष्ठित बैरिस्टर और संस्कृत के विद्वान थे। 1937 में विजया लक्ष्मी पंडित उत्तर प्रदेश की विधानसभा के लिए निर्वाचित हुईं और स्थानीय स्वशासन एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य मंत्री के रूप में कार्यभार संभाला। 1946 से 1950 तक वे भारतीय संविधान सभा की सदस्य रहीं।

1953 में वे संयुक्त राष्ट्र महासभा की अध्यक्ष बनने वाली पहली महिला बनीं, जो एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी। इसके अलावा, वे विभिन्न देशों में भारत की राजदूत के रूप में कार्यरत रहीं और कई महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त की गईं। 1975 में जब इंदिरा गांधी ने आपातकाल लागू किया, तो विजया लक्ष्मी पंडित ने इसका विरोध किया और जनता दल में शामिल हो गईं।

1 दिसंबर 1990 को देहरादून में उनका निधन हो गया। विजया लक्ष्मी पंडित का जीवन भारतीय राजनीति, स्वतंत्रता संग्राम और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में उनके योगदान के लिए सदैव याद रखा जाएगा। उन्होंने संविधान सभा में अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने की बात कही।

ISSN No. : 0970-9398

9. राजकुमारी अमृत कौर

राजकुमारी अमृत कौर का जन्म 2 फरवरी 1889 को लखनऊ में पंजाब के कपूरथला राजघराने में हुआ था। वे अपने सात भाई–बहनों में इकलौती बेटी थीं और उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा घर पर प्राप्त की। इसके बाद, उन्हें इंग्लैंड के डोरसेटशायर स्थित शेरबोर्न स्कूल भेजा गया, जहाँ से उन्होंने स्कूली शिक्षा पूरी की। शिक्षा पूरी करने के बाद, अमृत कौर 20 वर्ष की आयु में भारत लौटीं।

उन्होंने पर्दा प्रथा, बाल विवाह और देवदासी प्रथा के खिलाफ अभियान चलाया और 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की सह–स्थापना की। 1930 में वे इसकी सचिव और 1933 में अध्यक्ष बनीं। अंततः 1934 में उन्हें सेवाग्राम आश्रम में शामिल होने का अवसर मिला, जहाँ वे 16 वर्षों तक गांधीजी की सचिव रहीं।

राजनीति में उनकी रुचि बचपन से ही विकसित हुई, क्योंकि उनके पिता का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कई नेताओं से घनिष्ठ संबंध था। 1930 के दशक तक वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से शामिल हो चुकी थीं। 1932 के अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में, उन्होंने इसके खिलाफ प्रस्ताव प्रस्तुत किया और संयुक्त निर्वाचिका का समर्थन किया।

अमृत कौर संविधान सभा के लिए मध्य प्रांत और बरार से कांग्रेस के टिकट पर निर्वाचित हुईं। वो संविधान सभा की चर्चाओं में सम्मिलित होने साथ कई महत्वपूर्ण उप–समितियों की सदस्य भी रहीं। उन्होंने मौलिक अधिकार और अल्पसंख्यक उप–समितियों में योगदान दिया।

1947 में वे स्वतंत्र भारत की पहली स्वास्थ्य मंत्री बनीं और इस पद पर दस वर्षों तक कार्यरत रहीं। वे भारत की पहली महिला कैबिनेट मंत्री भी थीं। 1956 में उन्होंने संसद में एम्स विधेयक प्रस्तुत किया, जिसके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) की स्थापना हुई।

अमृत कौर महिला शिक्षा की प्रबल समर्थक थीं। वे ननकाना साहिब एजुकेशन ट्रस्ट और हिंदुस्तानी तालीमी संघ की ट्रस्टी थीं। वे दिल्ली के लेडी इरविन कॉलेज की संस्थापक सदस्यों में से एक थीं और भारतीय बाल कल्याण परिषद की स्थापना में भी प्रमुख भूमिका निभाई। 1956 में प्रिंसटन विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधि प्रदान की। राजकुमारी अमृत कौर का 6 फरवरी 1964 को 75 वर्ष की आयु में नई दिल्ली में निधन हो गया।

10. पूर्णिमा बनर्जी

पूर्णिमा बनर्जी का जन्म 1911 में हुआ था। वे जानी–मानी स्वतंत्रता सेनानी अरुणा असफ अली की बहन थीं। वे उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी की सचिव रहीं और 1930 के दशक के स्वतंत्रता आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई। उन्होंने 'भारत छोड़ो आंदोलन' में सक्रिय रूप से भाग लिया और इस दौरान कई बार गिरफ्तार हुईं।

संविधान सभा में उनकी भूमिका भी बेहद महत्वपूर्ण रही। प्रस्तावना में 'हम भारत के लोग' वाक्य जोड़ने का सुझाव उन्होंने ही दिया था, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि संविधान भारत के लोगों द्वारा और उनके लिए बनाया गया है।

उनके सहयोगियों में सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, उमा नेहरू, रामेश्वरी नेहरू और हाजरा बेगम जैसी प्रमुख महिलाएं शामिल थीं। 1934 में वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्य बनीं और इलाहाबाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नगर समिति की सचिव भी रहीं।

संविधान सभा में उन्होंने महिला आरक्षण के समर्थन में तर्क दिया कि भले ही महिलाएं आरक्षित सीटों की मांग न करें, लेकिन यदि कोई पद खाली हो तो महिलाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। वे चाहती थीं कि शिक्षा और आजीविका का अधिकार संविधान के मौलिक अधिकारों का हिस्सा बने।

वे संविधान में संशोधन कर एक न्यायसंगत मौलिक अधिकार जोड़ना चाहती थीं, जिसमें यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी राज्य संस्थानों में प्रवेश पाने वाले अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव न किया जाए।

संविधान सभा में अपने कई प्रभावशाली भाषणों के अलावा, पूर्णिमा बनर्जी पहली महिला थीं, जिन्होंने 24 जनवरी 1950 को 'जन गण मन' को आधिकारिक रूप से राष्ट्रगान के रूप में अपनाए जाने के बाद इसे गाया।

24 नवंबर 1949 को संविधान सभा में पूर्णिमा बनर्जी का अंतिम भाषण था, जिसमें उन्होंने कहा कि संविधान केवल नकारात्मक और सकारात्मक अधिकारों का दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह लोगों की अपेक्षाओं से भी कहीं अधिक

ISSN No. : 0970-9398

है। उन्होंने एक ऐसी सरकार की आवश्यकता पर जोर दिया, जो देश के प्रमुख उद्योगों और खनिज संसाधनों को विदेशी हस्तक्षेप से बचाने में सक्षम हो।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के कारण 1951 में नैनीताल में उनका असमय निधन हो गया। हालांकि उनका जीवन छोटा था, लेकिन स्वतंत्रता संग्राम और संविधान सभा में उनकी भूमिका को हमेशा याद किया जाएगा।

11. एनी मस्कारिन

ऐनी मस्कारिन का जन्म 6 जून 1902 को त्रिवेंद्रम (अब तिरुवनंतपुरम) में एक लैटिन कैथोलिक परिवार में हुआ था। उनके पिता, गैब्रियल मस्कारिन, त्रावणकोर राज्य में सरकारी अधिकारी थे। उन्होंने 1925 में महाराजा कॉलेज, तिरुवनंतपुरम से इतिहास और अर्थशास्त्र, दोनों विषयों में एमए की डिग्री प्राप्त की।

1940 के दशक में, ऐनी मस्कारिन ने महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग उठाई और राजनीति में सक्रिय भागीदारी के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ा। उन्होंने स्वतंत्र भारत में त्रावणकोर के विलय के लिए संघर्ष किया।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, ऐनी ने त्रावणकोर के दीवान के खिलाफ कांग्रेस आंदोलन का नेतृत्व किया। 1942 में वे 'भारत छोड़ो' आंदोलन से जुड़ीं, और 1944 में त्रावणकोर स्टेट कांग्रेस की सचिव चुनी गईं। 1946 में ऐनी मस्कारिन भारतीय संविधान सभा की सदस्य बनीं। 1948 में, उन्हें त्रावणकोर–कोच्चि विधानसभा के लिए चुना गया और 1949 में वे स्वतंत्र भारत में त्रावणकोर राज्य की पहली महिला मंत्री बनीं। उन्हें स्वास्थ्य मंत्री का दायित्व सौंपा गया।

1951 में उन्होंने तिरुवनंतपुरम लोकसभा क्षेत्र से स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा और जीतकर संसद पहुंचीं, जिससे वे केरल की पहली महिला सांसद बनीं। वह 1951 के आम चुनावों में विजयी होने वाली दस महिलाओं में से एक थीं। हालांकि, 1957 के लोकसभा चुनावों में उन्हें हार का सामना करना पड़ा।

19 जुलाई 1963 को ऐनी मस्कारिन का निधन हो गया। स्वतंत्रता संग्राम, सामाजिक न्याय और महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में उनके योगदान को आज भी याद किया जाता है।

12. रेणुका रे

रेणुका रे का जन्म 1904 में बंगाल में हुआ था। रेणुका रे एक प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता, स्वतंत्रता सेनानी, लेखिका, राजनीतिज्ञ और संविधान सभा की सदस्य थीं।

रेणुका रे महज 16 वर्ष की उम्र में महात्मा गांधी के संपर्क में आईं और उनसे प्रभावित हुईं। जब गांधीजी ने ब्रिटिश भारतीय शिक्षा प्रणाली के बहिष्कार का आह्वान किया, तो उन्होंने कॉलेज छोड़ने का निर्णय लिया। उनका विवाह सत्येंद्र नाथ रे से हुआ, जो विभिन्न जिलों में न्यायाधीश रह चुके थे।

रेणुका रे ने लंदन से लौटने के बाद अखिल भारतीय महिला सम्मेलन से जुड़कर महिलाओं के अधिकारों, विशेष रूप से पैतृक संपत्ति में महिलाओं के उत्तराधिकार के अधिकार की वकालत की। वर्ष 1932 में वे अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्ष बनीं। 1943 में उन्हें केंद्रीय विधान सभा में भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए नामांकित किया गया और 1946–47 में वे संविधान सभा की सदस्य रहीं।

1952 से 1957 तक उन्होंने पश्चिम बंगाल में राहत एवं पुनर्वास मंत्री के रूप में कार्य किया। 1957 से 1967 तक वे मालदा लोकसभा क्षेत्र से संसद सदस्य रहीं। 1959 में उन्होंने सामाजिक कल्याण और पिछड़े वर्गों के लिए गठित समिति की अध्यक्षता की, जिसे 'रेणुका रे समिति' के नाम से जाना जाता है।

उन्होंने अखिल बंगाल महिला संघ और महिला समन्वय परिषद की स्थापना की। उनके संस्मरण, "My Reminiscences: Social Development During the Gandhian Era And After" में महिलाओं की स्थिति, भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन और विभाजन के प्रभावों पर चर्चा की गई है।

राजनीति में सक्रिय रहते हुए उन्होंने महसूस किया कि महिलाओं के लिए आरक्षण आवश्यक है। प्रारंभ में वे इसके विरोध में थीं, लेकिन बाद में उन्होंने इसे स्वीकार किया। उन्होंने समान नागरिक संहिता की मांग की और भारतीय महिलाओं की स्थिति को सुधारने की दिशा में संघर्ष किया। 93 वर्ष की आयु में वर्ष 1997 में उनका निधन हो गया।

ISSN No. : 0970-9398

13. लीला रॉय

लीला रॉय का जन्म 2 अक्टूबर 1900 को असम के गोलपारा में हुआ था। उनके पिता गिरीश चंद्र नाग डिप्टी मजिस्ट्रेट थे, और उनकी मां का नाम कुंजलता नाग था। उनका पालन–पोषण सिलहट, बंगाल (अब बांग्लादेश) में हुआ।

उस समय लड़कियों के लिए शिक्षा प्राप्त करना कठिन था, लेकिन लीला रॉय ने इस बाधा को पार किया। उन्होंने ढाका के ईडन हाई स्कूल से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और 1921 में कोलकाता के बेथ्यून कॉलेज से अंग्रेजी में बीए की डिग्री हासिल की, जिसके लिए उन्हें पद्मावती स्वर्ण पदक मिला। 1923 में उन्होंने ढाका विश्वविद्यालय से एमए किया।

1931 में उन्होंने 'जयश्री' नामक पत्रिका शुरू की, जिसे महिलाएं ही संपादित, प्रबंधित और लिखती थीं। इस पत्रिका का उद्देश्य महिलाओं में देशभक्ति और स्वतंत्रता संग्राम की चेतना जागृत करना था।

1927–28 के दौरान महिलाओं की सुरक्षा के लिए उन्होंने 'महिला आत्मरक्षा कोष' की स्थापना की, जो महिलाओं के लिए आत्मरक्षा प्रशिक्षण देने वाले पहले संगठनों में से एक था। उन्होंने 'गण शिक्षा परिषद' की भी स्थापना की, जो महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए समर्पित थी।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें और उनके पति को गिरफ्तार कर लिया गया, और उनकी पत्रिका बंद कर दी गई। 1946 में रिहाई के बाद वे संविधान सभा के लिए चुनी गईं। 1962 में उन्होंने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया। लीला रॉय का पूरा जीवन सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में समर्पित रहा। उन्होंने रूढ़िवादी सामाजिक मान्यताओं को चुनौती दी और पितृसत्तात्मक धारणाओं के विरुद्ध आवाज उठाई। 1970 में, लंबे समय तक कोमा में रहने के बाद उनका निधन हो गया। महिलाओं की शिक्षा, सशक्तिकरण और स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान को स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।

14. मालती चौधरी

मालती चौधरी का जन्म 26 अप्रैल 1904 को पटना, बिहार में हुआ था। उनके पिता, कुमुद नाथ सेन, जो पूर्वी बंगाल के निवासी थे और पेशे से बैरिस्टर थे। 16 वर्ष की उम्र में उन्होंने शांतिनिकेतन स्थित विश्वभारती में प्रवेश लिया, जहाँ वे रवींद्रनाथ टैगोर की शिक्षाओं से प्रभावित हुईं।

वहाँ उन्होंने शिक्षा के साथ–साथ संगीत और नृत्य की भी विधिवत शिक्षा ली। इसी दौरान उनकी मुलाकात नवकृष्ण चौधरी (स्वतंत्रता सेनानी एवं स्वतंत्रता के बाद ओडिशा के दूसरे मुख्यमंत्री) से हुई, जिनसे उन्होंने वर्ष 1927 में विवाह किया और सामुदायिक सेवा के कार्य में लग गईं।

महात्मा गांधी और रवींद्रनाथ टैगोर से प्रेरित मालती चौधरी ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई। 1930 में उन्होंने इंचुडी और कुजांग में महिलाओं को संगठित कर नमक सत्याग्रह में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने विदेशी वस्त्रों और सामान के बहिष्कार के लिए महिलाओं को धरना देने और गिरफ्तारियाँ देने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

1942 में उन्होंने ओडिशा के लोगों तक महात्मा गांधी का 'करो या मरो' संदेश पहुँचाया और भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। इसके लिए उन्हें गिरफ्तार कर तीन वर्ष की सजा सुनाई गई। जेल से रिहा होने के बाद, उन्होंने आदिवासी और अनाथ बच्चों के पुनर्वास और शिक्षा का कार्य प्रारंभ किया। 1946 में वे नुआखली में महात्मा गांधी के शांति मिशन से जुड़ीं, और 1948 में उन्होंने गरीब और आदिवासी बच्चों की शिक्षा के लिए 'उत्कल नवजीवन मंडल' की स्थापना की।

वे संविधान सभा की सदस्य थीं और उन्होने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होने बाजीराव छात्रावास, उत्कल नवजीवन मंडल और पोस्टबेसिक स्कूल की स्थापना के बाद भी अपने प्रयासों को धीमा नहीं किया। वे आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में शामिल हो गईं। आपातकाल के दौरान उन्होंने सरकार द्वारा अपनाई गई जनविरोधी नीतियों और दमनकारी उपायों के खिलाफ आवाज उठाई और जेल भी गईं। 15 मार्च 1998 को मालती चौधरी का निधन हो गया।

15. दक्षयानी वेलायुधन

दक्षयानी वेलायुधन का जन्म 15 जुलाई 1912 को केरल के एर्नाकुलम जिले में हुआ था। अनेक सामाजिक चुनौतियों के बावजूद, दक्षयानी ने महाराजा कॉलेज से रसायन विज्ञान में स्नातक की डिग्री

पूरी की और फिर मद्रास विश्वविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में दाखिला लिया।

1913 में कोच्चि में 'कयाल सम्मेलन' नामक एक ऐतिहासिक घटना हुई, जिसमें दक्षयानी के परिवार सहित सैकड़ों पुलया जाति के लोग केरल के बैकवाटर में छोटी नावों पर इकट्ठा हुए, क्योंकि उन्हें जमीन पर एकत्र होने की अनुमति नहीं थी। इस घटना ने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने आग्रह किया कि उनकी जीवनी का शीर्षक 'The Sea Has No Caste' रखा जाए, जो उनके जातिगत भेदभाव के खिलाफ संघर्ष और समानता के प्रति उनके विश्वास को दर्शाता है।

22 जुलाई 1946 को दक्षयानी वेलायुधन को संविधान सभा का सदस्य चुना गया, जो उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 389 प्रतिष्ठित सदस्यों वाली इस सभा में दक्षयानी अकेली दलित महिला थीं। संविधान सभा में शामिल होते समय वह मात्र 34 वर्ष की थीं।

संविधान सभा में दक्षयानी वेलायुधन की उपस्थिति और योगदान उनकी स्वतंत्र सोच और सामाजिक न्याय के प्रति अटूट समर्पण का प्रतीक था। उन्होंने दलितों और अन्य हाशिए के समुदायों के अधिकारों की वकालत करते हुए संवैधानिक चर्चा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और उनकी भागीदारी समानता और न्याय के लिए भारत के संघर्ष के इतिहास में एक प्रेरक अध्याय बनी हुई है। 20 जुलाई, 1978 को उनका निधन हो गया।

सारांश में हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान निर्माण में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण, प्रेरणादायी और ऐतिहासिक रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जब भारत अपने लोकतांत्रिक भविष्य की रूपरेखा तैयार कर रहा था, तब संविधान सभा में शामिल महिला सदस्यों ने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय और प्रभावशाली भूमिका निभाई। यद्यपि संविधान सभा में महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम थी, फिर भी उनके विचारों, दूरदृष्टि और सामाजिक सरोकारों ने भारतीय संविधान को अधिक समावेशी, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील स्वरूप प्रदान किया। संविधान सभा में इन महिलाओं ने सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, शिक्षा, मानवाधिकार, महिला सशक्तिकरण तथा लोकतांत्रिक मूल्यों से जुड़े विषयों पर महत्वपूर्ण सुझाव दिए। उनका मुख्य उद्देश्य ऐसा संविधान तैयार करना था, जिसमें महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हों और समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिल सके। महिला सदस्यों के प्रयासों का ही परिणाम था कि भारतीय संविधान में समानता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण तथा महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए गए। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि भारतीय लोकतंत्र केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित न रहे, बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय को भी समान महत्व मिले।

इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि भारतीय संविधान निर्माण में महिलाओं की भूमिका केवल औपचारिक सहभागिता तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने अपने दूरदर्शी विचारों, सामाजिक चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों के माध्यम से संविधान को अधिक समावेशी, मानवीय एवं प्रगतिशील स्वरूप प्रदान किया। संविधान सभा में उपस्थित महिला सदस्यों ने महिलाओं, वंचित वर्गों तथा समाज के कमजोर तबकों के अधिकारों की सशक्त पैरवी करते हुए समानता, न्याय, स्वतंत्रता और गरिमा जैसे मूल आदर्शों को संविधान का अभिन्न अंग बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने शिक्षा, सामाजिक सुधार, लैंगिक समानता, मौलिक अधिकारों तथा मानवाधिकारों से जुड़े विषयों पर अपने विचार रखकर यह सुनिश्चित किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान केवल शासन संचालन का दस्तावेज न होकर सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्र निर्माण का सशक्त माध्यम बने। इन जागरूक महिलाओं ने भारतीय लोकतंत्र को संवेदनशील एवं जनोन्मुख बनाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। निस्संदेह, इनका योगदान भारतीय लोकतंत्र की सुदृढ़ नींव के रूप में सदैव स्मरणीय और प्रेरणास्पद रहेगा। उनके प्रयासों ने यह सिद्ध किया कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी केवल आवश्यक ही नहीं, बल्कि देश की प्रगति और सामाजिक समरसता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ISSN No. : 0970-9398

हिंदी की देशव्यापी स्वीकार्यता

– डॉ. अक्षय भास्कर बाजपेयी
राजभाषा अधिकारी, केनरा बैंक, मदुरै

भारत एक बहुभाषी बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है। यह विविध जातीयताओं के समुच्चय से बना है। यहाँ प्रत्येक जाति की अपनी अस्मिता है जिसमें उसका साहित्य, उसकी संस्कृति और सबसे महत्त्वपूर्ण उसकी भाषा है जो उसे दूसरी जाति से अलग करती है। इसीलिए एक बहुजातीय देश में राष्ट्रीय भावना कायम रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना अनिवार्य हो जाता है। जातीय भाषा के रुप में हिंदी अर्थात् खड़ी बोली हिंदी का प्रसार भक्तिकाल से शुरु हो चुका था और इसे अखिल भारतीय सम्पर्क भाषा का स्वरूप प्राप्त हुआ। खड़ी बोली के प्रसार को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं – "मोगल साम्राज्य के ध्वंस से भी खड़ी बोली के फैलने में सहायता पहुँची। दिल्ली, आगरे आदि शहरों की समृद्धि नष्ट हो चली थी और लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद आदि नई राजधानियों चमक उठी थीं। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोडकर मीर, इंशा आदि अनेक उर्दू शायर पूरब की ओर आने लगे, उसी प्रकार दिल्ली के आसपास के प्रदेशों की हिंदू व्यापारी जातियां (अग्रवाल, खत्री आदि) जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना आदि पूर्वी शहरों में फैलने लगी। उनके साथ साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। यह सिद्ध बात है कि उपजाऊ और सुखी प्रदेशों लोग व्यापार में उद्योगशील नहीं होते। अतः धीरे धीरे पूर्व के शहरों में भी इन पश्चिमी व्यापारियों की प्रधानता हो चली। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा भी खड़ी बोली हुई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुशियों की उर्दू–ए–मुल्ला नहीं। यह अपने ठेठ रूप में बराबर पछाँह से आई हुई जातियों के घरों में बोली जाती है। अतः कुछ लोगों का यह कहना या समझना कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में आई और उसका मूल रूप उर्दू है जिससे आधुनिक हिंदी गद्य की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई, शुद्ध भ्रम या अज्ञान है। इस भ्रम का कारण यही है कि देश के परंपरागत साहित्य की – जो संवत् के पूर्व तक पद्यमय ही रहा – भाषा ब्रजभाषा ही रही और खड़ी बोली वैसे ही एक कोने मे पड़ी रही जैसे और प्रांतों की बोलियाँ। साहित्य या काव्य में उसका व्यवहार नहीं हुआ।"

"इसी भाषा में बाजार चलते रहे, मुक्ति के आन्दोलन खड़े हुए और यह लोगों के बीच सम्प्रेषण का माध्यम बनी रही। आज जब देश स्वतंत्र है और हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा प्राप्त है ऐसे में उसकी लोकप्रियता

बढ़नी चाहिए थी। परन्तु यह देखा जाता है कि 'राजभाषा' हिंदीभाषी लोगों के बीच ही बोझिल और कृत्रिम–सी लगने लगती है। यहीं पर अनुवाद की भूमिका भी प्रश्नांकित होती है जिसका दबाव राजभाषा को सम्पर्क भाषा से अलग करता है।

सम्प्रेषण की इस समस्या के चार प्रमुख कारण हैं –

1. आधुनिकीकरण और अनुवाद की आवश्यकता को ध्यान में रखकर कुछ ही वर्षों में जितने पारिभाषिक शब्द हिंदी मे गढ़े गये हैं उनका प्रयोग बहुत जटिल है। अनुवाद को पुनर्सृजन भी कहा जाता है। परन्तु पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद के क्रम में हम यह भूल जाते हैं कि अनुवाद की परिशुद्धता को अनूदित पाठ की बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता से काटकर नहीं देखा जा सकता। यह समस्या राजभाषा के प्रयोग में प्रकट होती है और इसे जनता से दूर ले जाती है।

2. सुशासन के लिए जनता की सहभागिता आवश्यक होती है। इसे ध्यान में रखते हुए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा विकसित किए जा रहे ई–हिंदी वृहद डिजिटल शब्दकोश 'हिंदी शब्द सिंधु' के अंतर्गत पारिभाषिक शब्दों की त्रुटिरहित प्रविष्टि के लिए भी लोगों से सुझाव माँगे जा रहे हैं। यहीं से पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में 'डिजिटल भारत' की संकल्पना का प्रवेश होता है और लोकतांत्रिक प्रक्रिया की शुरुआत होती है। परन्तु अभी भी, यह धारणा बनी हुई है कि जो शब्द लोकप्रिय है वह पारिभाषिक नहीं हो सकता है। पारिभाषिक शब्दावली क्लिष्ट होनी चाहिए अन्यथा वह अंग्रेजी की समतुल्यता प्राप्त नहीं कर सकती। यह एक प्रमुख समस्या है जो सरकारी हिंदी की सम्प्रेषणीयता को बाधित करती है।

3. जनता की भाषा गत्यात्मक है और राजभाषा कहीं न कहीं उससे कटकर चलती है। आज अंग्रेजी इसीलिए वैश्विक स्तर पर सर्वमान्य भाषा है क्योंकि उसका एक अपना 'अन्तरराष्ट्रीय चरित्र' है। प्रति वर्ष ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज से प्रकाशित शब्दकोशों में नये लोकप्रिय शब्द जोड़े जाते हैं, जिन्हें अलग–अलग भाषाओं से लिया जाता है। राजभाषा लोगों से है, लोग राजभाषा के कारण नहीं है। इस बुनियादी तथ्य को भूलकर हमारे पारिभाषिक शब्दकोश जस के तस पड़े हुए हैं। पारिभाषिक शब्दावली अथवा शब्दकोशों में नियमित अंतराल पर परिवर्तन न होना भी राजभाषा को जनप्रवाह से विलग करता है।

4. चौथी और अंतिम बात यह कि राजभाषा हिंदी जब तक हिंदीभाषी जनता के जातीय स्वाभिमान से सम्पृक्त न होगी तब तक उसकी सम्प्रेषणीयता संदिग्ध रहेगी। इसके लिए आवश्यक है कि राजभाषा हिंदी अनूदित न होकर स्वयं में मौलिक हो। यह मौलिकता तभी आएगी जब राजभाषा का कार्यान्वयन जन बोधगम्यता को ध्यान में रखकर किया जाएगा। यह जन बोधगम्यता तभी संभव है जब 'राजभाषा हिंदी' अनुवाद के दबाव से मुक्त हो।

आज से लगभग एक दशक पहले सन् 2015 में भोपाल में आयोजित दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में विद्वानों ने यह विचार जाहिर किया था कि हिंदी को अन्तरराष्ट्रीय भाषा बनाने से पहले उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा देना आवश्यक है। आज की स्थिति को देखते हुए यह तभी संभव है जब हिंदी को अंग्रेजी–पदबंधों के प्रभाव और अनुवाद के संकुल से स्वतंत्र किया जाए। इसका परिणाम यह होगा कि हिंदी दूसरी भाषाओं से सरलता से जुड़ सकेगी।

तमिल और राजभाषा हिंदी

तमिल की अकूत शब्द–संपदा सर्वविदित है। संस्कृत से प्रतिस्पर्धा के क्रम में विद्वानों ने कहा कि प्रत्येक संस्कृत शब्द के लिए एक तमिल शब्द निश्चित है। प्रश्न उठा कि 'संस्कृत' को तमिल में क्या कहा जाता है? उत्तर मिला – 'तमिल'। निस्संदेह, तमिल भाषा की लिपि भले ही भिन्न हो (यद्यपि वह ब्राह्मी की दक्षिणी शाखा का परिवर्धित एवं संस्कृत रूप है), परन्तु उसका वाक्य–विन्यास अन्य भारतीय भाषाओं जैसा ही है, जहाँ कर्ता, कर्म और क्रिया की अन्विति दिखायी पड़ती है। तमिल की पूरी बोलचाल की शब्दावली में संस्कृत, अरबी एवं अंग्रेजी के शब्दों की अधिकता है। तमिल अपनी प्रकृति में समावेशी और लचीली भाषा है। इसकी सरलता संस्कृत के साथ इसके साहचर्य पर निर्भर करती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि संस्कृत के स्वभाव को आत्मसात करके ही यह शास्त्रीय भाषा बन पायी है। इसका संस्कृतनिष्ठ स्वरूप इसकी व्यापक स्वीकृति के लिए आवश्यक है। इसने संस्कृत भाषा के कई पुराने शब्दों को जीवंत रखा है। इसे सीखना वस्तुतः भारतीय ज्ञान परम्परा का ही संवर्धन करना है।

राजभाषा हिंदी के आधुनिकीकरण में उसकी पारिभाषिक शब्दावली की महती भूमिका रही है। वैज्ञानिक और प्राविधिक उन्नयन के साथ–साथ हिंदी ने नई प्रयुक्तियों को भी विकसित किया है। अब तो हिंदी के विकास को कृत्रिम बुद्धिमत्ता से जोड़कर देखा जाने लगा है। परन्तु यक्ष प्रश्न यह है कि आज जब हम राजभाषा विभाग की स्थापना

की स्वर्ण जयंती मना रहे हैं, तब क्या हम राजभाषा हिंदी के पारिभाषिक शब्दों का इस्तेमाल पूरे आत्मविश्वास के साथ कर पाने में सक्षम हैं? क्या हम अंग्रेजी की बैसाखी को छोड़ पाने का साहस जुटा सकते हैं? क्या कार्यालयों में प्रयोग की जाने वाली हिंदी अनुवाद के दबाव से आक्रांत नहीं है? क्या भारतीय भाषाओं के परस्पर संव्यवहार से इस दूरी को पाटा जा सकता है। ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर मंथन करना इस अमृत काल में आवश्यक हो जाता है।

संघ सरकार की राजभाषा नीति के आलोक में तकनीकी शब्दों को फिर से देखने की आवश्यकता है। अनुच्छेद 351 के अंतर्गत संविधान में हिंदी के विकास के लिए स्पष्ट निदेश दिया गया है–

"संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।"

यहाँ दो–तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। सामासिक संस्कृति के तत्त्वों की अभिव्यक्ति हिंदी की देशव्यापी स्वीकार्यता को दर्शाती है। 'हिंदी शब्द सिंधु' राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय के अधीन कार्यरत केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के संयुक्त उपक्रम का फल है। राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर पारिभाषिक शब्दों का अर्थ, वाक्यगत प्रयोग एवं उनकी व्याकरणिक कोटियों को जाना जा सकता है। यहाँ संविधान की 8वीं अनुसूची में अनुसूचित अन्य भारतीय भाषाओं में इस्तेमाल होते हुए उस शब्द विशेष के अन्य रूपों का भी विवरण आसानी से उपलब्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए 'अधिकारी' शब्द के लिए लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अधिकारी शब्द ही है। इसी प्रकार 'पत्राचार' के लिए पत्राचार अथवा पत्र व्यवहार शब्द प्रयोग में आता है। बांग्ला भाषा में इकाई को 'एकक' कहा जाता है। इस तरह राजभाषा हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सेतु का काम करती है।

कहा जाता है कि अच्छी हिंदी सीखना हो तो गाँधी जी से सीखो। छोटे–छोटे वाक्यों में विचारों की स्पष्टता हिंदी की प्रकृति है। नए शब्दों के आधान के क्रम में अक्सर हम कठिन शब्दों को अपना लेते हैं। ऐसा प्रायः सामासिक पदबंधों के साथ होता है। संस्कृत की लंबी पदबन्ध–योजना हिंदी की वाक्य संरचना को दुरूह बना देती है। इतना ही नहीं, अनुवाद के दबाव से एक कृत्रिम भाषाशैली का निर्माण होता है, जो राजभाषा हिंदी की संप्रेषणीयता को बाधित करती है। भाषा की क्लिष्टता शब्दों पर नहीं अपितु वाक्य–विन्यास पर निर्भर करती है। अंग्रेजी के दीर्घ वाक्य–संरचना से भिन्न छोटे वाक्य हिंदी की सरलता के लिए आवश्यक हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात तकनीकी शब्दों को गढ़ने के स्रोत से संबंधित है। यहाँ प्राथमिकता संस्कृत भाषा को दी गई है। धातु रूप में उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर अनंत शब्दराशि गढ़ी जा सकती है। उदाहरण के लिए 'योजना' के साथ उपसर्ग या प्रत्यय या दोनों लगाकर आयोजन, समायोजन, विनियोजन, प्रयोजन आदि शब्द बनाए जा सकते हैं। इन शब्दों को लोकप्रिय बनाना और उनका प्रसार करना संघ सरकार का कर्त्तव्य है। हिंदी की समाहार–शक्ति इसकी स्वीकार्यता का कारण है। नवीन शब्दों, पदों एवं शैलियों का आत्मसातीकरण इसे लचीला बनाती है – जैसे Academy का 'अकादमी', Technique का 'तकनीक', Interim का 'अंतरिम', better का 'बेहतर' आदि।

हिंदी और तमिल भाषाएं शब्दावली के धरातल पर जुड़ती हैं। संस्कृत इनके मध्य सेतु सदृश है। उदाहरणार्थ, याद रखने के लिए तमिल में 'ज्ञापकम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अब इस मूल शब्द से ज्ञाप (memo), ज्ञापन (memorandum), विज्ञापन (dvertisement), विज्ञप्ति (notice), अनुज्ञप्ति (license), अनुज्ञा–पत्र (permit) आदि शब्द जुड़ते हैं, जिसे बताने पर एक तमिल भाषी आसानी से समझ सकता है। इसी प्रकार तमिल के प्रतिष्ठित समाचारपत्रों में नियुक्ति के लिए 'नियमनम्' शब्द देखने को मिलता है। इससे नियम, उपनियम, विनियम, अधिनियम आदि शब्द सम्बद्ध हैं। मसौदा, रसीद, हुंडी जैसे बहुतेरे शब्द तमिल में घुल–मिल गये हैं। इसी तरह सड़क–सुरक्षा से संबंधित तमिल भाषा के सरल वाक्य 'अदि वेगमे विपत्तक्कु कारणम्' और 'मिदुमान वेगं, सुखमान पयणम्' सहज ही बोधगम्य हैं। संस्कृत का 'मित' अर्थात 'कम', तमिल में 'मिद' उच्चरित होता है। संस्कृत के कई उपसर्ग सीधे तमिल में व्यवहृत होते हैं। संस्कृत और अरबी शब्दों में तमिल के प्रत्यय लगाकर शब्द गढ़े गये हैं, जैसे संधि से संदिप्पु (junction), उच्चारण से उच्चरिप्पु (pronunciation), तैयार से तयारिप्पु (product) आदि। हिंदी में प्रयुक्त होने वाले कई शब्द तमिल में भिन्न अर्थ रखते हैं। उदाहरण के

लिए तमिल में 'अंगीकार' Affiliated के अर्थ में तो 'आलोचनै' सुझाव या परामर्श के अर्थ में इस्तेमाल होता है। तमिल में 'पता अथवा ठिकाना' (Address) के लिए बहुस्वीकृत शब्द 'विलासम्' और 'मुकवरि' क्रमशः संस्कृत और अरबी से लिए गये हैं। ऐसे शब्दों की एक लंबी फेहरिस्त है जो दूसरी भाषाओं से आयातित हैं और जिनका व्यवहार दैनन्दिन जीवन में किया जाता है। परन्तु जब हम हिंदी को महज अनुवाद की भाषा बना देते हैं तो उसकी रचनात्मकता क्रमशः चुकने लगती है। एक ओर हिंदी की देशव्यापी स्वीकृति उसकी मौलिकता पर निर्भर करती है तो दूसरी ओर लिपि में नवप्रवर्तन से देवनागरी का सौष्ठव और लालित्य निरंतर बढ़ रहा है।

देवनागरी और उसका लालित्य

'लालित्य' का शाब्दिक अर्थ है – भाव–सौन्दर्य, सरसता, कोमलता आदि। साहित्य के लालित्य पर काव्यशास्त्रों में विस्तृत विवेचना की गयी है। अलंकार संप्रदाय के प्रस्तोता आचार्य भामह ने कविता की तुलना स्त्री के अलंकारशोभित सुंदर मुख से की है – "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्"। जिस तरह मुख सुंदर होने पर भी स्त्री आभूषणरहित नहीं होती, ठीक वैसे ही अलंकार के बिना कविता शोभायमान नहीं मानी जाती। काव्य के शोभाकारक तत्त्व के रूप में अलंकार की गणना की गयी। निस्संदेह साहित्यिक अभिरुचि युग की छाया से संपृक्त रहती है। समय के साथ–साथ साहित्यिक अभिरुचि में परिवर्तन होता रहा है।

आज के प्रतिस्पर्धी युग में भाषा के लालित्य के साथ ही लिपि का लालित्य भी लोकप्रिय हो रहा है। भारत जैसे विविधता संपन्न देश में देवनागरी लिपि राष्ट्रीय एकता और अखंडता की वाहक बनी हुई है। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक देवनागरी लिपि की स्वीकार्यता और इसके प्रभाव ने कमोबेश इसके बाजार मूल्य को बढ़ा दिया है।

संविधान की आठवीं अनुसूची में अंतर्विष्ट कोंकणी, डोगरी, नेपाली, बोडो, मराठी, मैथिली, संथाली, सिन्धी, संस्कृत और हिंदी के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है। पहले जहाँ सुलेखन के लिए परम्परागत पद्धति का प्रयोग किया जाता था, वहीं आज प्राविधिक उन्नयन के साथ–साथ सुलेखन तकनीक का भी विस्तार हो चला है। देवनागरी सुलेखन शैली वैयक्तिक अभिरुचि तक सीमित न रहकर बाजार में स्टार्टअप्स को गति प्रदान कर रही है। सांस्कृतिक नवजागरण के दौर में लिपियों का भी पुनर्नवन हो रहा है। औपनिवेशिक मानसिकता के संकुलों को तोड़ती हुई देवनागरी लिपि महज लेखन का माध्यम भर नहीं रही है, अपितु रचनात्मकता एवं राष्ट्रीय गौरव को अभिव्यक्त करने का जरिया बन गई है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संलयन से अभिकल्पन के क्षेत्र में नवप्रवर्तन के द्वार उन्मुक्त हुए हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव लिपियों पर भी पड़ा है। बाजार की आवश्यकता के अनुसार बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने क्षेत्रीय भाषाओं में अपने प्रतीक चिह्नों को ढालना शुरू कर दिया है। आज माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस में देवनागरी में 'मंगल', 'अपराजिता', 'कोकिला', 'एरियल यूनिकोड एमएस', 'निर्मला', 'संस्कृत टेक्स्ट', 'शोभिका', 'उत्साह' जैसे फॉन्ट्स उपलब्ध हैं। ऑस्ट्रेलियाई ग्राफिक अभिकल्पन सॉफ्टवेयर 'केनवा' में देवनागरी के लिए 'अनेक देवनागरी', 'लीनोटाइप देवनागरी', 'मिरियड देवनागरी', 'डिआइएन नेक्स्ट देवनागरी', 'नोटो सेरिफ देवनागरी', 'टाइरो देवनागरी', 'जैनी पूर्व', 'अलकतरा', 'रंग', 'राजधानी', 'साहित्य', 'यात्रा वन', 'कलम', 'लिनी देवनागरी', 'माकू देवनागरी', 'बादशाह', 'अक्सर', 'आर्य', 'जल्दी', 'मुंशी देवनागरी', 'क्वांटम देवनागरी', 'कोयला देवनागरी', 'अमिता', 'असर', 'पालकी', 'मुक्ता', 'हलंत' आदि फॉन्ट्स के विकल्प उपलब्ध हैं। बाजार में देवनागरी की पैठ निम्नलिखित क्षेत्रों में बढ़ रही है –

1. **लिपियों का संलयन** : देवनागरी का दूसरी लिपियों के साथ संलयन विशिष्ट प्रकार की ब्रांड आइडेंटिटी को रचता है। भारतीय चॉकलेट ब्रांड 'जिअहो' द्वारा देवनागरी अंक प्रारूप का इस्तेमाल इसका उदाहरण है। क्षेत्रीय पहचान को भाषाई स्तर पर उतारकर इस ब्रांड ने नवाचार का परिचय दिया है।

2. **द्विभाषी प्रतीक–चिह्न** : विदित हो, राजभाषा नियम 1976 के नियम 11 के अनुसार केंद्र सरकार के कार्यालयों, उपक्रमों, स्वायत्त निकायों, उद्यमों, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों आदि में द्विभाषी प्रतीक–चिह्नों का प्रयोग किया जाना अपेक्षित है। परन्तु आजकल लोकप्रिय ब्रांड भी बाजार में टिके रहने के लिए देवनागरी में प्रतीक–चिह्नों को ढाल रहे हैं। चाहे वह दूरसंचार क्षेत्र में 'एयरटेल' हो अथवा यातायात में 'टाटा', 'हीरो' या फिर 'बजाज' हो या देवनागरी में रचे हुए प्रतीक–चिह्न निजी कंपनियों के बाजार को विस्तृत करते हैं। इसी दिशा में 'किंगफिशर', 'एशियन पेंट्स' जैसे ब्रांड भी द्विभाषी प्रतीक–चिह्नों द्वारा ग्राहकों को लुभाने में लगे हुए हैं। 'स्प्राइट', 'कोका–कोला' आदि शीतल पेय कंपनियां एवं 'पिज्जा हट', 'सबवे', 'स्टारबक्स' जैसे ब्रांड भी देवनागरी के प्रयोग में पीछे नहीं हैं। 'इन्फोसिस' जैसी सूचना

प्रौद्योगिकी की ख्यातिलब्ध कंपनियां भी देवनागरी को महत्त्व दे रही हैं।

3. **फैशन में देवनागरी का प्रवेशः** यह विडंबना ही है कि बॉलीवुड में पटकथा–लेखन और वस्तु–निवेदन के लिए रोमन लिपि का इस्तेमाल किया जाता है, परन्तु फैशन उद्योग में देवनागरी प्रवेश कर चुकी है। संस्कृत के सूक्ति वाक्यों से लेकर हिंदी के मुहावरों तक को कपड़ों पर मुद्रित किया जाने लगा है। इसके साथ ही देवनागरी में टेटू बनवाने का चलन भी बढ़ चला है। ऐसे परिधान और टेटू एक तरफ तो हमें 'कूल' दिखाते हैं, वहीं दूसरी तरफ अपनी संस्कृति से भी जुड़ते जान पड़ते हैं।

चाहे देसी हो अथवा बहुराष्ट्रीय कंपनी, हिंदी के देशव्यापी पसारे के कारण यश, उपलब्धि और लाभ की इच्छा रखने वाली कोई भी कम्पनी स्वयं को देवनागरी से असंपृक्त नहीं रख सकती। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देवनागरी के प्रति बढ़ती हमारी रुचि प्रकारान्तर से देश की सांस्कृतिक एकता की द्योतक है।

हिंदी की समाहार शक्ति

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति के असीम गुणों को अनावृत्त करते हुए 'अशोक के फूल' निबंध में लिखा है – "मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। .. देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है.. शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा, वह गंगा की अबाधित, अनाहत धारा के समान सब कुछ हजम करने के बाद भी पवित्र है।"

हिंदी ने कभी भी शुद्धता का आग्रह नहीं किया। कोलकाता में यदि कलकतिया हिंदी चलती है, तो मुंबई में बंबईया हिंदी, चेन्नै में मद्रासी हिंदी, तो अरुणाचल की अपनी प्राकृतिक मधुरता धारण की हुई हिंदी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग पचपन से अधिक बोलियाँ हैं जो हिंदी के स्वरूप को निखारती हैं। हिंदी का साहित्य शास्त्रीय भाषाओं की तरह पुराना भले न हो, परंतु उसका विस्तार सर्वाधिक है। इसका कारण हिंदी की समाहार शक्ति है। इसने कभी भी विदेशज होने के कारण किसी भी शब्द को अस्वीकार नहीं किया है। दूसरी भारतीय भाषाओं के शब्द भी इसमें घुलते–मिलते रहे हैं। यदि आज यह देश की संपर्क भाषा के रूप में जानी जाती है, तो इसके मूल में इसकी सर्वसमावेशी प्रकृति है। हिंदी ने यह गुण निरंतर अभ्यास के द्वारा अर्जित किया है।

इतिहास साक्षी है कि हिंदी कभी भी शासन की भाषा नहीं रही है। इसका विकास लोक में हुआ है। इस संबंध में निर्मल वर्मा अपने बीते हुए क्षणों को याद करते हुए लिखते हैं– "हिंदी भाषा का विकास बंद दरवाजे की सुरक्षा के भीतर नहीं, खुली हवा के मुक्त थपेड़ों के बीच हुआ है। यह महज ऐतिहासिक संयोग नहीं था कि भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी भाषा ने गौरवशाली भूमिका अदा की थी। गांधी जी के लिए यदि भारतीय चेतना का एक स्वदेशी प्रतीक खादी था तो दूसरा प्रतीक हिंदी भाषा थी। मेरे मित्र सुपरिचित नाटय निर्देशक बी. वी. कारंत, जो स्वयं कन्नड़ भाषी हैं, ने एक बार कहा था कि स्वतंत्रता संग्राम में वह जेल जाने का साहस तो नहीं जुटा सके, किंतु उन्होंने हिंदी भाषा को सीखना जरूर अपना नैतिक कर्तव्य माना था।"

बी. वी. कारंत का हिंदी और कन्नड़, दोनों भाषाओं में समान रूप से महत्त्व है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों को अभिमंचित करने का श्रेय इन्हें ही जाता है। जब हिंदी साहित्य–जगत के आलोचकगण प्रसाद के नाटकों को अभिनय के योग्य नहीं हैं, कहते हुए अघा नहीं रहे थे, ऐसे समय में कारंत ने नए रंग–प्रयोगों के द्वारा प्रसाद के नाटकों को मंच पर जीवंत कर दिया था। यह हिंदी की समाहार शक्ति का ही आकर्षण था कि कारंत ने अपने सुदीर्घ अनुभव से हिंदी नाटक और रंगमंच को नई चेतना प्रदान की।

अंततः यह कहा जा सकता है कि राजभाषा हिंदी की सार्थकता अंग्रेजी की छाया बनने में नहीं, अपितु उसके प्रभाव से मुक्त होने में है। इस प्रकार बेहतर तरीके से संवाद स्थापित किया जा सकता है और सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं। हिंदी की देशव्यापी स्वीकार्यता भी जनभावना से जुड़ने में ही निहित है।

ISSN No. : 0970-9398

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पर्याय: राष्ट्रभाषा हिंदी

– डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
सहायक आचार्य, किरोड़ीमल महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

"राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।

''मेरा यह मत है कि हिंदी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए''

उपर्युक्त कथन गांधी जी के हैं। गांधीजी का मानना था कि एक स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक साझा भाषा होनी चाहिए जो विविधता में एकता ला सके। उन्होंने 'हिंद स्वराज' (1909) में लिखा था कि संपूर्ण भारत को एकजुट करने के लिए हिंदी ही वह भाषा है जो सबसे उपयुक्त है। लेकिन, जब भारत स्वतंत्र हुआ और इसने अपना संविधान बनाया तो उसमें गांधीजी का 'हिन्दुस्तान' जगह नहीं पा सका और उनकी 'हिंदी' को 'राष्ट्रभाषा' न बनाकर 'राजभाषा' बना दिया गया। इतना ही नहीं, जिस अंग्रेजी को देश से हटाने के लिए वे बेहद बेचैन थे, उसे उलटे संवैधानिक मान्यता दे दी गई।

लॉर्ड मैकाले ने भारत पर कब्जा बनाए रखने के लिए 2 फरवरी, 1835 को ब्रिटेन की संसद में अपनी राय रखी थी – "मैं भारत में काफी घूमा हूँ। दाएँ–बाएँ, इधर–उधर मैंने यह देश छान मारा और मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखाई दिया, जो भिखारी हो, चोर हो। इस देश में मैंने इतनी धन–दौलत देखी है, इतने ऊँचे चारित्रिक आदर्श और इतने गुणवान् मनुष्य देखे हैं कि मैं नहीं समझता कि हम कभी भी इस देश को जीत पाएँगे, जब तक इसकी रीढ़ की हड्डी को नहीं तोड़ देते जो इसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत है और इसलिए मैं ये प्रस्ताव रखता हूँ कि हम इसकी पुरानी और पुरातन शिक्षा–व्यवस्था, उसकी संस्कृति को बदल डालें, क्योंकि अगर भारतीय सोचने लग गए कि जो भी विदेशी और अंग्रेजी है वह अच्छा है और उनकी अपनी चीजों से बेहतर है तो ये अपने आत्मगौरव, आत्मसम्मान और अपनी ही संस्कृति को भुलाने लगेंगे और वैसे बन जाएँगे जैसा हम चाहते हैं। एक पूर्ण रूप से गुलाम भारत।"[1]

मैकाले ने भारतीय शिक्षा–व्यवस्था को खत्म करने और उसकी जगह अंग्रेजी शिक्षा–व्यवस्था को लागू करने का प्रारूप तैयार किया था – "हमें हिंदुस्तानियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना है जो हम अंग्रेज शासकों और उन करोड़ों भारतीयों के बीच दुभाषिये का काम कर सके, जिन पर हम शासन करते हैं। हमें हिंदुस्तानियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना है, जिसका रंग और रक्त भले ही भारतीय हो लेकिन वह अपनी अभिरुचि, विचार, नैतिकता और बौद्धिकता में अंग्रेज हो।"[2]

अंग्रेजों को हिंदुस्तानियों से अधिक इस हिंदी का ही डर था, क्योंकि इस भाषा ने समूचे भारत को उनके खिलाफ जोड़ रखा था। इतिहास गवाह है कि 1857 में जब आजादी की पहली लड़ाई शुरू हुई तो बादशाह बहादुरशाह जफर ने लाल किले का मशहूर भाषण हिंदी में ही दिया था, उत्तर प्रदेश की कन्या रानी लक्ष्मीबाई इसी भाषा में, तांत्या टोपे को खत लिखती थी, पंजाब के स्वामी रामतीर्थ ने इसी जुबान में 'राम बादशाह के छह हुक्मनामे' जारी किए थे और गुजरात के स्वामी दयानंद के शास्त्रार्थ और भाषणों की भी यही भाषा थी। विदेश में जाकर जय बंगाल के सपूत नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को कदम–कदम बढ़ाने वाली आजाद हिंद फौज की खुशी के गीत के लिए एक भाषा की जरूरत हुई, तो उन्होंने हिंदी को चुना। इस तरह, देश आजाद होने के पहले ही, हिंदी समूचे हिंदुस्तान की आमफहम और स्वेच्छा से स्वीकृत कौमी जुबान बन चुकी थी।

अंग्रेज यह बात अच्छी तरह जानते थे कि हिंद की जातीय भाषा हिंदी है। तभी वे देश की जमीन के सर्वनाशी बँटवारे के पहले इस जुबान का बँटवारा करा चुके थे।... यदि एक ही भाषा को हिंदी और उर्दू नाम देकर और उनमें से एक को हिंदुओं से जोड़कर और दूसरी को मुसलमानों से लगाकर देश की भाषा के साजिशी बँटवारे में अंग्रेजों को पहले कामयाबी नहीं मिली होती तो आगे चलकर धर्म के आधार पर एक देश की जमीन को हिंदुस्तान और पाकिस्तान नाम से बाँट देना, मुमकिन नहीं होता।[3]

अंग्रेजों ने हिंदी को तोड़ने और बदनाम करने की साजिश क्यों रची? इसलिए कि भारत की यह एकमात्र ऐसी भाषा है जिसके समुद्रधर्मा साहित्य में भारत की प्रायः सभी भाषाओं का अद्भुत समाहार है। गंभीरता और व्यापकता की दृष्टि से यह समुद्रधर्मा है। सहिष्णुता इसकी विशेषता है और समन्वयात्मकता इसका स्वभाव। सच तो यह है कि हिंदी–साहित्य शाश्वत सारस्वत साधना प्रदेश का शीतल शांत तपोवन है। इसका अवगाहन कर भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य–परम्परा से अवगत हुआ जा सकता

है। कदाचित् इसीलिए मैकाले के अंग्रेज सहचरों–अनुचरों एवं भारतीय चाकरों ने भारतीय संस्कृति को विकृत और विनष्ट करने के लिए हिंदी को ही चुना।

हिंदी योगभूमि भारत की भाषा है। इसलिए यह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अवदानों के साथ–साथ पूर्वोत्तर भारत के सिद्धों तथा पश्चिमोत्तर भारत के नाथों और गुरुओं को भी अपने निर्माताओं के रूप में कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती है। इस क्रम में तमिल के आलवारों, आंध्र के पुष्टिमार्गियों, गुजरात के उपासकों, महाराष्ट्र के ज्ञानियों, कर्नाटक के सूफियों, सिंध के सौदागरों और केरल के गवैयों को याद करना भी वह गौरव की बात समझती है, गोरखनाथ और कबीर ने सधुक्कड़ी की जो खिचड़ी पकायी थी, उसके भी दाने–दाने पर, भारतीय भाषाओं के हर खाने का नाम खुदा है।

भारतीय भाषाओं के शीर्ष साहित्यकारों के सारस्वत अवदानों से परिचित होने के लिए भी हिंदी–साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। तभी यह समझा जा सकता है कि कैसे इस साहित्य में तुकाराम, ज्ञानदेव, वल्लभाचार्य और विद्यापति मिलकर एक हो गए, तभी सूर ने सूरसागर की रचना की। कश्मीर की लल्ला, कर्नाटक की अक्क महादेवी, महाराष्ट्र की मुक्ताबाई, तमिलनाडु की गोदा और बंगाल चंडीदास की विरहिणी राधा यदि उसके साहित्य में मिलकर एक नहीं होतीं, तो राजस्थान की मरुभूमि को मीरा की काकली कैसे सुनाई पड़ती?

साहित्य देश के स्वाभिमान का रक्षा कवच होता है और अंग्रेजों को इसी कवच को तोड़ना था। कारलाइल का प्रसिद्ध ग्रंथ है – 'हिरो वरशिप'। इस ग्रंथ में उन्होंने लिखा है – "अगर हमसे कोई पूछे कि भारतीय साम्राज्य और शेक्सपियर दो में से एक छोड़ने की नौबत आ जाए तो तुम किसे छोड़ना पसंद करोगे? उसके उत्तर में तत्क्षण मैं कहूँगा – भारतीय साम्राज्य रहे चाहे जाए, शेक्सपियर को हमसे कोई नहीं छीन सकता।" और, इस दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी साहित्य के सहस्र वर्षों के इतिहास में तुलसीदास निश्चय ही सबसे बड़े कवि ठहरते हैं जिनके कालजयी महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' में रत्नसेन और पृथ्वीराज की ऐतिहासिक हार को रावण–वध, सीता–हरण और राम–राज्य–संस्थापन के रूप में नयी दीप्ति प्रदान की गई और पराजित देश के स्वाभिमान को साहित्य ने कवच बनकर बचा लिया। इस ग्रंथ के प्रत्येक कांड में संस्कृत के मंगलाचरण, अपभ्रंश के छंद, अपढ़ ग्रामीण के युक्ताक्षर–वर्जित सहज उच्चारण, ब्रजभाषा के स्वारस्य और अवधी के विकास के अभेद को उदाहृत करने का जो अद्‌भुत व अद्वितीय अनुष्ठान है, उसमें रामानुज के दर्शन, रामानन्द के भजन और समर्थ स्वामी रामदास की टेक को अलग–अलग नहीं किया जा सकता, ठीक उसी तरह, जिस तरह कि काशी की गंगा, ब्रज की यमुना, अवध के बेटे, मिथिला की बेटी, किष्किंधा के नीर वनवासी और दण्डकारण्य की शबरी को भारत के आकैलास–कन्याकुमारी भूगोल और इतिहास से तोड़कर कभी अलग–अलग नहीं किया जा सका।[4] शायद यही कारण है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

लेकिन, हमारी इस हस्ती को मिटाने की कोशिशें जारी हैं। मुसलमानों को उर्दू से जोड़कर, उन्हें हिंदी और हिंदू से दूर करने की साजिश कुछ हद तक कामयाब भी हुई है। हिंदी का पहला कवि, जैसा कि राहुल सांकृत्यायन मानते हैं, लाहौर का रहने वाला, अब्दुर्रहमान, मुसलमान था, जिसने सोहर छंद में 'संदेशरासक' की रचना की थी। कबीर हिंदी के पहले मशहूर कवि थे। उन्हें हिंदू कहा जाए या मुसलमान या केवल आधुनिक भारत का प्रथम राष्ट्रपुरुष? हिंदुओं की उच्चतम जाति ब्राह्मण (विधवा ब्राह्मणी) के पेट से पैदा होने वाला और मुसलमानों के अपमानित जुलाहे के घर में पलने वाला, होठों से कविता गढ़नेवाला और हाथों से झीनी–झीनी चदरिया बुनने वाला, काशी में जन्मने वाला और मगहर में मरने वाला, सबको प्यार करने वाला और सबसे मार खाने वाला, लुकाठी हाथ लिए चौबीस घंटा अपना घर फूँकने के लिए तैयार काफिले का सिपहसालार – यह कबीर तो वस्तुतः हिंदी की ही तरह, हिंदू–मुसलमान से अलग केवल 'भारतीय' था। अब्दुर्रहमान की तरह हिंदी को सबसे पहले राजभाषा का पद देने वाला हैदर अली भी मुसलमान ही था।..... हिंदी को सबसे पहले राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले हैदर अली और टीपू सुल्तान की राजधानी चूँकि मैसूर–दक्षिण में थी, इसलिए उसे उत्तर भारत के साथ बदनाम करना भी जायज नहीं है। उससे भी पहले, तेरहवीं–चौदहवीं सदी से ही, दक्षिण के सूफी मुसलमान इसी भाषा में कविता और धर्म–प्रचार करते थे। स्वयं कुतुब कुलीशाह जैसे मुसलमान राजाओं की यह दरबारी जुबान थी। बहमनी राज्य और गोलकुंडा रियासत में लगभग छह सौ वर्षों तक हिंदी की साहित्यिक प्रतिष्ठा बनी रही।[5]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति–साहित्य से ही वास्तविक हिंदी–साहित्य का आरंभ मानते हैं। अन्य कारणों से उनका यह मत स्वीकार्य न भी हो, तब भी व्यापक समन्वय–भावना की दृष्टि से हिंदी–साहित्य का यही आरंभ–काल है। इसी काल में हिंदू–मुस्लिम एकता की वह जातीयता भी हृदय की भूमि पर प्रकट हुई, जिसमें अब्दुर्रहीम खानखाना का गुणगान करने वाले महाकवि गंग को 'सुकविन को सरदार' कहा गया और दूसरी ओर चित्तौड़ की महारानी पद्‌मिनी की कथा को एक मुसलमान कवि जायसी ने प्रेम और सहानुभूति के साथ गाया। रसखान, ताजबीबी

और रहीम के साथ–साथ जायसी को भी हम हिंदी की उस धारा का उद्‌गायक कहेंगे जो हिंदुओं के उस जातीय साहित्य का अंग थी, जिसका गान चंद और भूषण ने वीरगाथा बनाकर किया था।

भक्ति की स्पष्टतः तीन धाराएँ हैं। एक धारा वह, जो हिंदुओं और मुसलमानों को जोड़ती है और मीरा के साथ ताजबीवी और सूर के साथ रसखान और रहीम को जन्म देती है। निश्चय ही भक्ति का यह काव्य विप्रलंभ का काव्य है, क्योंकि आने को कहकर चले जाने वाले कृष्ण को सम्पूर्ण पराजित जाति के प्रतिनिधि के रूप में इन कवियों ने बिसूरा।

भक्ति की दूसरी धारा वह है, जिसमें तुलसी और जायसी एकत्र हुए हैं। इस धारा में पराजित हिंदू राजाओं–पृथ्वीराज और रत्नसेन की यश–गाथा भी है और पापियों को नष्ट करनेवाले भगवान् राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप भी। सच तो यह है कि सम्पूर्ण विश्व–साहित्य में तुलसी के राम–जैसा शक्ति, शील और सौन्दर्य से पूर्ण विशाल, विराट् और भव्य चरितनायक अद्यपर्यन्त उपस्थित नहीं किया जा सका। हिंदी–साहित्य में विद्यापति एकमात्र ऐसे शीर्ष कवि हैं, जिनकी लेखनी से वीरगाथा, भक्ति एवं रीति की त्रिपथगा प्रवाहित हुई है। समन्वय के इस निर्मल आदि–स्रोत की महिमा तो यह है कि इनके पदों को गा–गाकर बंगाल के चैतन्य महाप्रभु जैसे अवतारी महापुरुष भी विभोर हो उठते थे। श्रृंगार और भक्ति तथा बहुदेवोपासना–पद्धतियों के समन्वयक के रूप में हिंदी साहित्य इनका सम्मानपूर्वक स्मरण करता है।[6]

इन दोनों से अलग रूप है भक्ति की तीसरी धारा का, जिसमें लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के गीत राधा और मीरा के गीत न रहे, दरबार में नृत्य करने वाली सुन्दरियों के गीत हो गए। यहाँ तक आते–आते साहित्य लोक–जीवन से प्रायः विच्छिन्न हो गया तथा शास्त्र की उदाहरणी बनकर रह गया। नायक–नायिकाओं के कल्पित रूपों के वर्णन की इस परम्परा में, केशव, गंग जैसे कवियों की गणना की जा सकती है।[7]

हिंदी का भक्ति–साहित्य 'अहंकार–विसर्जन' को प्रमुखता के साथ अनुशंसित करता है। प्रेम–मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है – वर्ण–भेद की भावना। इन अवरोधों को संत–कवियों ने ही ध्वस्त किया, इसमें संदेह नहीं। हिंदू मुस्लिम ऐक्य के मसीहा महात्मा कबीर ने डंके की चोट के साथ घोषणा की–

"हिंदू कहे मोहि राम पियारा तुरूक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि–लरि मुए मरम न काहू जाना।।"

वहीं, दादू ने हिंदू और मुसलमान में एक ही आत्मा की विद्यमानता देख, यह घोषणा की –

"सब हम देख्या सोधि करि दूजा नाहिं आन।
सब घट एकै आत्मा क्या हिंदू–मुसलमान।।"

इतिहास साक्षी है कि हिंदी राष्ट्रभाषा या संघभाषा बनाई जाए, इसका आग्रह गैर–हिंदीभाषियों ने किया था, हिंदी भाषियों ने नहीं। भारत के लिए एक भाषा की आवश्यकता का अनुभव करने वाले अन्य प्रान्तों के जननायकों ने ही हिंदी की योग्यता को देखकर उसे राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव किया। यह प्रस्ताव राजा राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, विवेकानन्द, दयानन्द, सुब्रह्मण्यम् अय्यर, गोखले, राणाडे, तिलक और गांधी का था, जिनमें एक भी व्यक्ति हिंदी–भाषी नहीं था। स्वामी दयानंद ने तो हिंदी को संस्कृत की समकक्षता प्रदान की और अपना सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' उसी में लिखा। 'राष्ट्रभाषा' शब्द का प्रयोग भी तब किसी हिंदी–भाषी ने नहीं किया था। महात्मा गांधी हिंदी को सदा राष्ट्रभाषा कहते रहे।[8]

भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक समर्थ संवाहिका के रूप में हिंदी की अप्रतिम प्रतिष्ठा है। यह शत्रु के प्रति भी करुणा का व्यवहार करना सिखाती है। वाल्मीकि के राम रावण की मृत्यु पर शान्त भाव से कहते हैं –

"मरणन्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।"

(वाल्मीकि रामायणः 6/112/26)

"अर्थात् वैर मृत्यु तक ही रहता है। मेरा उद्देश्य पूरा हुआ। अब तो यह जैसे तुम्हारा है वैसे ही मेरा भी। इनका अग्नि–संस्कार करो।"

गोस्वामी तुलसीदास के श्रीराम भी रावण वध से व्यथित विभीषण को यही कहते हैं –

कृपादृष्टि प्रभु ताहि विलोका।
करहु क्रिया परिहरि सब सोका।।

(श्रीरामचरितमानस, लंकाकांड)

यह भारत की ही संस्कृति है। शत्रु की मृत्यु पर आँसू बहाने वाले और मृत्युपरांत उसका सम्मान करने वाले भारत में ही मिलेंगे। वहीं, सोफोक्लेस का क्रेओन पोलुनेइकेस की मृत्यु के बाद चिल्ला–चिल्लाकार कहता है– "कोई उसकी मृत्यु पर आँसू न बहाए। उसका शव–संस्कार न हो। कब्र में उसे जगह न दी जाए। उसकी लाश को गिद्ध और कुत्ते नोचें और लोग उस पर थूकें।" (सोफोक्लेस, एँटिगोने, अंग्रेजी अनुवाद, अनुवादक–त्युस कैम्पवेल, पृ.सं.9)

भारत की संस्कृति विश्व को फूल का खेल खेलने के लिए उत्साहित करती है, धूल का खेल खेलने के लिए

नहीं। हिंदी की कालजयी कृति 'कामायनी' की श्रद्धा मनु से यही कहती है –

"बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी वह बेलय
विश्व–भर सौरभ से भर जा,
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।"

('कामायनी': जयशंकर 'प्रसाद')

हिंदी–साहित्य में सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का समाहार है। हिंदी–साहित्य के माध्यम से भारत को जाना जा सकता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को चित्रित करने की दृष्टि से यह विश्व–साहित्य में अनुपम है। प्राचीनतम साहित्य वेद से लेकर आधुनिकतम साहित्य के वैशिष्ट्यों को आत्मसात् कर उद्‌घाटित करने वाला हिंदी–साहित्य न केवल भारत के लिए, अपितु विश्व के लिए गौरव की वस्तु है।

विश्व का हिंदी–साहित्य के प्रति आकर्षण और झुकाव इसलिए भी है कि यह सिखाता है कि बंधुत्व भाव और समन्वय की साधना से ही जीवन, काव्य और प्रेम का सम्यक् विकास संभव है। कदाचित् इसीलिए हिंदी साहित्य में दर्शन और साधना का, सिद्धान्त और व्यवहार का, आचार्यत्व और कवित्व का, अध्यात्म और लोकहित का सफल संयोजन दृष्टिगत होता है। भारत के बाहर हिंदी का जो मान और महत्त्व है, वह किसी सरकारी प्रयास से नहीं है, वह स्वतः स्फूर्त है, वह गिरमिटिया मजदूरों के और उनके वंशजों के कारण है जो जन्म–भूमि से दूर रहकर भी भारत की भाषा, साहित्य और संस्कृति को जीवित रखे हुए हैं –

कर रहे साहित्य–सृजन,
भारत से रह दूर।
शब्द–शब्द में है बसा,
देश–प्रेम भरपूर।।

देश–प्रेम भरपूर,
कि जिसका अभिनंदन है।
अभिव्यक्ति में सत्य,
धूप माटी चंदन है।।

भाषा और संस्कृति,
मनोहर जीवित भास्वर।
जननी रही पुकार,
अरे, इन पर गौरव कर।।

इन अप्रवासी साहित्यकारों का योगदान सचमुच स्तुत्य है।

इन साहित्यकारों ने भारत की संस्कृति से संसार को अवगत कराया है। भारत के सामान्य नागरिक, भारत के बाहर रह रहे भारतवासी एवं भारतवंशियों की यह अभिलाषा है कि उनका देश मात्र भारत नाम से जाना जाए और जितनी जल्दी हो सके आजाद भारत को 'अंग्रेजी' की गुलामी से छुटकारा मिल जाए। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा बने। (विश्वभाषा तो वह अब बन ही चुकी है। हिंदी के विदेशी साहित्यकारों ने हिंदी–साहित्य को नई ऊँचाई और गरिमा प्रदान की है।)

लेकिन, यह काम सरकार के ईमानदार प्रयास से ही संभव हो पाएगा। वर्तमान केंद्र सरकार हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने के प्रति गंभीर है। ऐसा कहने का आधार यह है कि उसने 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस (18–20 अगस्त, 2018) की वेबसाइट पर महात्मा गाँधी के राष्ट्रभाषा संबंधी कथन को प्रमुखता के साथ उद्धृत किया है। यह उद्धरण सुविचारित है, सप्रयोजन है। क्या आपको भी ऐसा नहीं लगता? गाँधीजी के अवतरण की 150वीं वर्षगांठ पर, केंद्र सरकार, उनका मनोरथ पूरा करेगी, इसका भरोसा किया जा सकता है।

योगिराज श्री अरविंद ने कहा था – "हमारा विश्वास है कि भारत इसलिए उठ रहा है कि योग को मानव–जीवन के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित कर सके। योग के द्वारा ही भारत को अपनी स्वतंत्रता, एकता, अपनी महिमा की अनुभूति होगी और योग के द्वारा ही भारत यह शक्ति प्राप्त करेगा कि वह अपनी स्वतंत्रता, एकता और महत्ता की रक्षा कर सके। आनेवाली जो चीज हमें दिखाई पड़ती है, वह आध्यात्मिक क्रान्ति है। भौतिक उन्नति तो उसकी छाया–मात्र है।"[9]

21 जून को योग दिवस मनाने के लिए विश्व को राजी कर लेने का करिश्मा भी तो इसी सरकार ने कर दिखाया है। यह नए सिरे से आध्यात्मिक क्रांति का श्रीगणेश है।

महर्षि अरविंद ने 'हिंदी' को स्वदेश में सर्वग्राह्य बनाने के लिए 'भारती' नाम देने का सुझाव देश के सामने रखा था। "भारतीय संविधान ने इस देश का नाम भारतवर्ष रखकर यहाँ के निवासियों का नाम 'भारतीय' तो रख ही दिया, इसी नाम के अनुसार यहाँ की राष्ट्रभाषा का नाम 'भारती' रख लेने से मुझे प्रसन्नता होती, किंतु यही नाम रखा जाय, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है। मेरा इतना ही निवेदन है कि गुलामों की भाषा–सूचक 'हिंदी' नाम के स्थान पर कोई दूसरा शुभ नामकरण कर लिया जाय।..... जब तक मैं अपने विद्वानों और शासन–सूत्र–संचालकों द्वारा दूसरे शोभनीय शब्दों को स्थिर किया हुआ नहीं पाऊँगा, तब तक मैं अपने देश को भारत, अपने को भारतीय और अपनी भाषा को भारती कहा करूँगा।"[10]

प्रकारान्तर से ही सही, भारत सरकार भी तो यह मान रही है कि 'हिंदी' का नाम 'भारती' होना चाहिए। भारत की

राजभाषा हिंदी है, लेकिन राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की त्रैमासिक पत्रिका का नाम 'राजभाषा हिंदी' न होकर 'राजभाषा भारती' है जो 1978 से लगातार प्रकाशित हो रही है।[11]

इधर, ईशा फाउंडेशन के सद्गुरु (जग्गी वासुदेव) ने प्रधानमंत्री से आग्रह किया है कि हमें अपने देश का फिर से ऐसे नाम बदल देना चाहिए, ताकि वह नाम यहाँ के हरेक देशवासी के दिल में धड़कने लगे। उनके अनुसार – "भारत में एक ताकत है। यह ताकत इस देश के हरेक वासी के दिल में गूंजनी चाहिए। एक भारतीय होने का मतलब यानी जो मूल भाव है, वह हरेक देशवासी के भीतर उभरना चाहिए। क्योंकि अगर हरेक देशवासी की आकांक्षाएँ देश की आकांक्षाओं से नहीं मिलेंगी तो फिर वो देश, देश नहीं होगा।"[12]

ऋषि–मुनियों के देश भारत का नेतृत्व कर रही वर्तमान सरकार भारत के सामान्य नागरिकों के साथ ही इन मनीषियों का मान रखेगी, इसमें संदेह नहीं। इसी में राष्ट्र का हित है।

इस तरह, भारत के निर्भारतीकरण के सारे प्रयत्न उसी दिन निष्फल हो जाएँगे, जिस दिन भारत की राष्ट्रभाषा के आसन पर हिंदी आसीन हो जाएगी।

हिंदी भारत की उस संस्कृति को जुगाए हुए है जो सबको, सारे संसार को, हँसता हुआ देखना चाहती है, जो अपने दुःख को भुलाकर दूसरों के सुख में अपना सुख तलाश लेने की नेक सलाह देती है –

"औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।"

('कामायनी': जयशंकर 'प्रसाद')

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र भी तो यही है –

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः।
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

सचमुच, यह हिंदी भारत की उस प्राचीनतम संस्कृति को जीवित रखे हुए है जो सबकी आर्यता, पूरी ध ारती की पवित्रता और हर जीव की आत्मवत्ता की सीख देती है। भारत शब्द का मूल अर्थ भी तो एक देशीय सीमा से सीमित 'देश–विदेश' नहीं है, बल्कि, 'विश्वव्यापी सूक्ष्म' या 'ब्रह्म' ही है – 'ब्रह्मेदं भारतं जनम्'।

"समुद्रमेखले देवि, पर्वत–स्तन–मंडले।
विष्णुपनि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।
माता पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः।
प्रवासो कुत्र कर्त्तव्यः स्वदेशो भुवनत्रयम्।।"

निष्कर्षतः, हिंदी के स्वरूप, स्वभाव और समर्पण की सच्चाई को अधोलिखित पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त देना चाहूँगी –

स्नेह–सुधा बरसाती हिंदी,
सबको गले लगाती हिंदी।

जन्मी भारत में भारत की,
संस्कृति रही जुगाती हिंदी।।

अपढ़ मूढ़ साक्षर शिक्षित से,
हिलमिलकर बतियाती हिंदी।

शील समन्वय सहिष्णुता का,
सार्थक पाठ पढ़ाती हिंदी।।
मानवता की जन्मभूमि की,
सचमुच है यह थाती हिंदी।

अखिल विश्व में फैल रही है,
हँसती और हँसाती हिंदी।।

संदर्भः

1. गूगल
2. गूगल
3. डॉ. रमाकान्त पाठक, 'शिक्षा के क्षेत्र में भाषा का सवाल', पृ. 10–13–14, श्लोक प्रकाशन, कानपुर (उ.प्र.), वर्ष–2007 ई.
4. ब्रह्मदेव प्रसाद कार्यी, 'विकलांगता विमर्श का सामाजिक संदर्भ' (आलेखः 'हिंदी–साहित्य की समन्वयात्मक भावधारा'), पृ. 30–35
5. डॉ. रमाकान्त पाठक, 'शिक्षा के क्षेत्र में भाषा का सवाल', पृ. 13–14
6. 'विकलांगता विमर्श का सामाजिक संदर्भ', पृ. 72
7. वही, पृ.–72
8. उद्धृत, 'चेतना की शिखा', राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 30, उदयाचल, राजेन्द्रनगर, पटना–16, वर्ष–1877
9. 'चेतना की शिखा', पृ. 30
10. उद्धृत, 'योगभारती', पृ. 18
11. उद्धृत 'योगभारती', पृ. 18
12. उद्धृत, 'योगभारती', पृ. 33 (सद्गुरु के साथ किरण बेदी की बातचीत)

ISSN No. : 0970-9398

महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा का स्वप्न

– डॉ. आलोक कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक, त्रिपुरा विश्वविद्यालय

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के साथ–साथ भाषा का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का। भारत जैसे बहुभाषी देश में एक ऐसी भाषा की कल्पना करना जो न केवल शासन की भाषा बने बल्कि जनता की आत्मा से भी जुड़ी हो, अत्यंत गंभीर और दूरदर्शी कार्य था। महात्मा गांधी स्वतंत्रता आंदोलन के आध्यात्मिक और नैतिक नेतृत्वकर्ता माने जाते हैं। उन्होंने भाषा के प्रश्न पर अत्यंत गंभीरता और संवेदनशीलता से विचार किया था। उनके लिए भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं थी बल्कि वह आत्मा का स्पंदन, संस्कृति की संवाहिका और राष्ट्र निर्माण का आधार थी। वे मानते थे कि जब तक भारत की जनता अपनी भाषा में सोचने, पढ़ने और लिखने में समर्थ नहीं होगी, तब तक स्वराज का सपना अधूरा रहेगा। उनकी दृष्टि में राष्ट्रभाषा का प्रश्न केवल तकनीकी या प्रशासनिक मुद्दा नहीं था, बल्कि यह भारतीय स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय एकता से जुड़ा हुआ था। उल्लेखनीय है कि उनका जीवन और विचार हमेशा लोक सापेक्षिक रहा है। वे जनता की उस भाषा की बात करते थे जिसे गाँवों में रहने वाला किसान, शहर का मजदूर और आम नागरिक सहजता से समझ सके। यही कारण है कि उन्होंने हिंदी अथवा 'हिंदुस्तानी' को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तुत किया। वे अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व को भारतीय मानसिकता के उपनिवेशीकरण का प्रतीक मानते थे। उनका विचार था कि जब तक हम विदेशी भाषा में सोचते और बोलते रहेंगे, तब तक हमारी स्वतंत्रता केवल राजनीतिक दिखेगी, सांस्कृतिक और मानसिक नहीं होगी। उनका स्पष्ट मत था कि, "एक राष्ट्र की आत्मा उसकी भाषा में बसती है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि वे अपनी भाषा से कितना प्रेम करते थे। यह कथन भाषा के प्रति उनकी गहरी आस्था और समझ ठीक ढंग से अभिव्यक्त करता है।

गांधीजी नैसर्गिक रूप से स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे मनुष्यता के विकास में किसी प्रकार के दबाव को घातक मानते थे। वह दबाव भले ही भाषा, साहित्य और संस्कृति का ही क्यों न हो। उनके विचार के अनुसार किसी भी भाषा का विकास दबाव या थोपे जाने से नहीं होता, बल्कि स्वाभाविक स्वीकृति और जनभागीदारी से होता है। इसलिए वे इस बात पर ज़ोर देते थे कि हिंदी का प्रचार–प्रसार प्रेम और सेवा से होना चाहिए, न कि सत्ता और शक्ति से। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की उनकी मुहिम केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं थी। उन्होंने दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु में 'हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की और स्वयं वहाँ रहकर सादगी और श्रम के माध्यम से हिंदी का प्रचार किया। अपनी जेल यात्राओं, सार्वजनिक आंदोलनों और लेखों के माध्यम से भाषा को भारत के पुनर्निर्माण का साधन बनाया। वे हिंदी को केवल भाषा नहीं, बल्कि भारत की आत्मा मानते थे। उनका मत था कि हिंदी में वह क्षमता है जो भारत की विभिन्न संस्कृतियों, समुदायों और बोलियों को एकता के सूत्र में पिरो सकती है। उनका सपना था कि एक ऐसी भाषा हो जो पूरे भारतवर्ष के लोगों को न केवल एक–दूसरे से जोड़े, बल्कि उन्हें अपने इतिहास, संस्कृति और मूल्यों से भी जोड़ सके। उनकी भाषा–नीति बहिष्करण की नहीं, समन्वय की थी। वे चाहते थे कि हिंदी, तमिल, बंगाली, मराठी, तेलुगु, गुजराती, मलयालम आदि सभी भारतीय भाषाएं अपने–अपने क्षेत्रों में सम्मान पाएँ और समृद्ध हों, परंतु राष्ट्र की साझा पहचान के लिए एक संपर्क भाषा हो; और वह भूमिका हिंदी निभा सकती है।

गांधीजी हिंदी को ऐसी भाषा बनाना चाहते थे जिसमें संस्कृत की आत्मा हो, उर्दू का सौंदर्य हो, और जनभाषा की सहजता हो। यही कारण है कि उन्होंने इसे 'हिंदुस्तानी' नाम दिया–एक समन्वयात्मक, समावेशी और सहज भाषा। उनके भाषाई दृष्टिकोण की विशेषता यह थी कि वे किसी भाषा को अन्य पर थोपने के पक्ष में नहीं थे। भाषाओं की समानता, सहयोग और साझा विकास के पक्षधर थे। वे भाषाई एकता का अर्थ भाषिक एकरूपता नहीं मानते थे, बल्कि भाषाओं के बीच सम्मानपूर्ण समन्वय को सही मायने में भाषाई एकात्म मानते थे। उनका यह दृष्टिकोण आज भी भारत की भाषाई राजनीति, शिक्षा नीति और सामाजिक एकता के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। जब–जब भारत में भाषा को लेकर विवाद होता है, गांधीजी की वह छवि सामने आती है जो प्रेम, संवाद, समावेश और आत्मसम्मान के साथ राष्ट्रभाषा का स्वप्न देख रही थी।

राष्ट्रभाषा का स्वप्न

महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा के मुद्दे को केवल राजनीतिक या भाषायी अस्मिता के साथ जोड़कर नहीं देखा था, बल्कि

यह उनके संपूर्ण राष्ट्र–चिंतन का एक मूलभूत तत्व था। वे भाषाई स्वराज को प्राथमिक सूची में स्थान देते थे। वे सदैव इस बात पर बल देते थे कि भारत में यदि सच्चे अर्थों में स्वराज स्थापित करना है, तो उसकी भाषा भी स्वदेशी होनी चाहिए। उस दौर के सभी महत्वपूर्ण चिंतकों ने स्वराज पर विचार किया था। महात्मा गांधी ने भी स्वराज को अपने ढंग से व्याख्यायित किया है। उनके अनुसार स्वराज का अर्थ केवल ब्रिटिश सत्ता को हटाकर भारतीयों के हाथ में सत्ता देना भर न था, बल्कि वे संपूर्ण सांस्कृतिक, बौद्धिक और नैतिक पुनरुत्थान की कल्पना करते थे, जिसमें भाषा की भूमिका केंद्रीय थी। उनका राष्ट्रभाषा का सपना किसी एक जातीय या क्षेत्रीय भावना से प्रेरित नहीं था। उन्होंने अपने जीवन और कार्यों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का उनका प्रस्ताव व्यावहारिकता और सर्वग्राह्यता पर आधारित था। वे इस बात को सर्वाधिक उद्धृत करते थे कि भारत की सबसे अधिक बोली–समझी जाने वाली भाषा हिंदी है, और वह जनसंचार का सबसे सशक्त माध्यम बन सकती है। राष्ट्रभाषा के मुद्दे को वे बेहद गंभीरता और सजगता से वर्णित करते हैं। उनकी निगाह में राष्ट्रभाषा का मतलब यह नहीं है कि भारत की अन्य सभी भाषाएं महत्वहीन हो जाएँ। उन्होंने भारतीय भाषाओं की समृद्धि, विविधता और संस्कृति में उनकी भूमिका की महत्ता को स्वीकार किया और उनके विकास के पक्षधर रहे। परंतु उन्होंने यह भी रेखांकित किया कि एक राष्ट्र के रूप में संगठित रहने के लिए एक संपर्क भाषा की आवश्यकता है, और इसके लिए हिंदी सर्वथा उपयुक्त है।

गांधीजी का चिंतन अधिकाधिक भारतीय जनता के हित को केंद्र में रखकर निर्मित हुआ था। इसका प्रभाव उनके भाषा संबंधी चिंतन में भी दृष्टिगोचर होता है। वे उसी भाषा को राष्ट्रभाषा की संज्ञा देने के पक्षधर थे जिसे बहुसंख्यक जनता बोलती और समझती हो। इस संदर्भ में उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों को मिलाकर 'हिंदुस्तानी' भाषा का समर्थन किया – एक ऐसी भाषा जो देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में हो सकती है और जो भारतीय मुसलमानों और हिंदुओं दोनों के लिए सहज हो। वे धार्मिक और सांप्रदायिक आधार पर भाषाओं के विभाजन के सख्त खिलाफ थे। वे इस बात पर बल देते थे कि यदि हम अंग्रेजी को शासन की भाषा बनाए रखेंगे, तो यह न केवल विदेशी प्रभुत्व की मानसिकता को बनाए रखेगा, बल्कि भारत को दो वर्गों में बाँट देगा – एक वह जो अंग्रेजी जानती है और सत्ता पर अधिकार रखती है, और दूसरा वह जो अंग्रेजी नहीं जानती और हमेशा के लिए पिछड़ जाएगी।

गांधीजी ने अनेक बार अपने भाषणों में कहा कि अंग्रेजी भाषा हमारी शिक्षा व्यवस्था, न्याय प्रणाली और प्रशासन में विदेशी सोच को पोषित करती है। इससे जनता के बीच और शासकों के बीच दूरी बढ़ती है। यदि हमें लोकतंत्र को सशक्त करना है, तो भाषा को जन की भाषा बनाना होगा। उन्होंने 'हरिजन', 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' जैसे पत्रों के माध्यम से निरंतर राष्ट्रभाषा के पक्ष में जनमत तैयार किया। वे भारत की शिक्षा नीति में मातृभाषा और राष्ट्रभाषा को केंद्रीय स्थान देने के पक्षधर थे। उन्होंने यह भी कहा कि राष्ट्रभाषा के अभाव में भारत स्वत्व नष्ट हो जाएगा। वे प्रायः अपनी सभाओं में और पत्रों में यह कहा करते थे कि, राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा होता है। वे उस भाषा को महत्व देने के पक्ष में थे जो आत्मा को छू सके, विचारों को स्पष्ट कर सके और जन–जन को आपस में जोड़ सके। अंग्रेजी इस कार्य में विफल थी, क्योंकि वह अधिकांश जनता की भाषा नहीं थी। उनका स्पष्ट विचार था कि जब तक हम अपनी भाषा में सोचने, लिखने और संवाद करने में सक्षम नहीं होंगे, तब तक हम अपने आत्मसम्मान को पुनः प्राप्त नहीं कर सकते। वे भाषा को आत्मनिर्भरता का आधार मानते थे। उनके अनुसार, राष्ट्रभाषा स्वदेशी उत्पादों की तरह हमारी पहचान होनी चाहिए, जिससे हमारी सोच, संस्कृति और कार्यप्रणाली स्वदेशी बने। वे चाहते थे कि हिंदी ऐसी भाषा बने जो न केवल उत्तर भारत के लिए उपयोगी हो, बल्कि दक्षिण भारत, पूर्वोत्तर और अन्य क्षेत्रों में भी सहजता से सीखी और समझी जा सके। इसके लिए सरल, स्पष्ट और व्यावहारिक हिंदी के प्रयोग पर बल दिया जाना चाहिए। उन्होंने बोझिल संस्कृतनिष्ठ शब्दों से परहेज करने और बोलचाल की सहज भाषा को अपनाने की सलाह दी।

गांधीजी ने भाषा के प्रश्न को केवल वैचारिक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे राष्ट्र निर्माण के एक व्यावहारिक साधन के रूप में अपनाया। उनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र की आत्मा उसकी भाषा में बसती है और यदि भारत को वास्तविक अर्थों में एकजुट एवं आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाना है, तो ऐसी संपर्क भाषा की आवश्यकता होगी जिसे देश का सामान्य जन सहज रूप से समझ और अपनाकर संवाद स्थापित कर सके। इसी विचार को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने वर्ष 1918 में मद्रास (वर्तमान चेन्नै) में हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा देना तथा हिंदी के माध्यम से उत्तर और दक्षिण भारत के बीच सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता को सुदृढ़ करना था।

गांधीजी ने इस कार्य को केवल संगठनात्मक स्तर तक सीमित नहीं रखा, बल्कि स्वयं दक्षिण भारत की यात्राएँ

ISSN No. : 0970-9398

कीं, जनसभाओं को संबोधित किया और हिंदी में भाषण देकर लोगों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। उनके प्रयासों में किसी प्रकार का भाषायी अहंकार या वर्चस्व की भावना नहीं थी। वे स्पष्ट रूप से कहते थे कि हिंदी को किसी पर थोपा नहीं जाना चाहिए, बल्कि उसे राष्ट्रीय संपर्क और पारस्परिक समझ की भाषा के रूप में अपनाया जाना चाहिए। उनका उद्देश्य भाषायी विविधता को समाप्त करना नहीं, बल्कि विविध भाषाओं के बीच संवाद और समन्वय स्थापित करना था।

गांधीजी भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। वे तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, बंगला, मराठी, गुजराती सहित सभी क्षेत्रीय भाषाओं को भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर मानते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मातृभाषा में शिक्षा और अभिव्यक्ति का अधिकार मिलना चाहिए। किंतु साथ ही वे यह भी मानते थे कि एक विशाल और बहुभाषी राष्ट्र के सुचारु संचालन तथा राष्ट्रीय एकता के लिए एक ऐसी साझा भाषा आवश्यक है जो पूरे देश को भावनात्मक रूप से जोड़ सके। उनके अनुसार हिंदी वही भाषा थी, क्योंकि उसे देश के बड़े भाग में समझा और बोला जाता था।

वे बार–बार इस बात पर बल देते थे कि हिंदी केवल उत्तर भारत की भाषा नहीं है, बल्कि संपूर्ण भारत की संपर्क भाषा है। गांधीजी के लिए हिंदी राष्ट्रीय एकता, जनसंपर्क और स्वदेशी चेतना का माध्यम थी। उनका विश्वास था कि विदेशी भाषा पर अत्यधिक निर्भरता राष्ट्र को मानसिक दासता की ओर ले जाती है, जबकि भारतीय भाषाएँ आत्मगौरव और सांस्कृतिक स्वाधीनता की भावना को सशक्त करती हैं। इस प्रकार गांधीजी का हिंदी संबंधी चिंतन केवल भाषाई आग्रह नहीं था, बल्कि भारत की सांस्कृतिक एकता, लोकतांत्रिक सहभागिता और राष्ट्रीय पुनर्जागरण की व्यापक दृष्टि से जुड़ा हुआ था।

गांधीजी ने भाषा को राजनीति से अलग रखने की भी सलाह दी। वे मानते थे कि भाषा का निर्णय भाषायी तर्क और व्यावहारिक अनुभव पर आधारित होना चाहिए, न कि संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों पर। यदि हम भाषा को राजनीति और सांप्रदायिकता के दायरे में ले आएँगे, तो इससे केवल विघटन होगा। भारत की एकता और अखंडता का आधार वह भाषा हो सकती है, जो सभी को आत्मीय लगे, जो न केवल संप्रेषण का माध्यम हो, बल्कि भावों और मूल्यों की संवाहिका भी हो। राष्ट्रभाषा का गांधीवादी स्वप्न केवल हिंदी को शासन की भाषा बनाना नहीं था, बल्कि जन–जन को सशक्त बनाना था। वे भाषा को सत्ता का उपकरण नहीं, सेवा का माध्यम मानते थे। वे कहते थे कि राष्ट्रभाषा का सम्मान तब ही होगा जब वह जनता की सेवा में लगेगी, और जनता उसे अपनाएगी।

गांधीजी की दृष्टि में राष्ट्रभाषा का निर्माण एक नैतिक और सांस्कृतिक आंदोलन था। इसके लिए केवल विचार नहीं दिए, बल्कि अपने जीवन से इसे जीकर दिखाया। उन्होंने अपने पत्राचार, लेख, भाषण, आंदोलनों और संगठनों के माध्यम से भाषा को जनांदोलन का रूप दिया। हिंदी में पत्राचार करना प्रारंभ किया, अदालतों में हिंदी का प्रयोग करने का आह्वान किया और शिक्षा को हिंदी माध्यम में करवाने की अपील की। उन्हें यह विश्वास था कि जब तक हम अपनी भाषा में प्रशासन नहीं चलाएँगे, तब तक जनता प्रशासन से जुड़ नहीं सकेगी। यह बेहद चिंता की बात है कि गांधीजी का राष्ट्रभाषा का स्वप्न आज भी अधूरा है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी यदि भारत में न्यायालय, संसद, विश्वविद्यालय, और प्रशासन में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है, तो यह गांधीजी की उस चेतावनी को सत्य सिद्ध करता है कि अंग्रेजी एक बाधा बनकर खड़ी है। यदि आज भारत को भाषायी समन्वय की ओर बढ़ना है, तो गांधीजी के राष्ट्रभाषा के सपने को पुनः समझना और पुनः जीवित करना आवश्यक है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भाषाई प्रश्न केवल शिक्षा और शासन व्यवस्था तक सीमित नहीं था। यह प्रश्न सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता से सीधे जुड़ा हुआ था। महात्मा गांधी इस विषय में अत्यंत संवेदनशील और समावेशी दृष्टिकोण रखते थे। जब राष्ट्रभाषा के चयन का प्रश्न उठा, तब उन्होंने केवल 'हिंदी' तक सीमित रहने के बजाय 'हिंदुस्तानी' का प्रस्ताव दिया। यह सर्वविदित है कि उन दिनों हिंदुस्तानी जुबान उत्तर और दक्षिण, हिन्दू और मुस्लिम, ग्राम और नगर, सभी के लिए सहज, सुगम और सम्मानजनक थी। 'हिंदुस्तानी' शब्द गांधीजी के लिए केवल भाषिक संज्ञा नहीं थी, बल्कि यह एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण, समावेशी सोच और व्यावहारिक समाधान का नाम था। वे इस बात को समझते थे कि हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं की जड़ें एक ही सामाजिक मिट्टी में निर्मित हुई थीं। उनके बोलने वाले अधिकांशतः एक ही भूभाग में रहते थे, और उन भाषाओं की सामान्य संरचना, व्याकरण और शब्दावली में असाधारण साम्यता आज भी है। गांधीजी इस बात को भलीभाँति समझते थे कि यदि हम 'हिंदी बनाम उर्दू' का विवाद खड़ा करते हैं, तो यह भाषाई प्रश्न को धार्मिक और सांप्रदायिक रंग दे देगा, जो भारतीय समाज के लिए अत्यंत घातक सिद्ध होगा। इसलिए उन्होंने बार–बार कहा कि हिंदी और उर्दू को अलग–अलग देखना इतिहास की भूल होगी। उन्होंने इन दोनों के मेल से बनी 'हिंदुस्तानी' भाषा को

राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तुत किया। वे हिंदुस्तानी भाषा को ऐसी बोली बनाना चाहते थे जो आमजन की भाषा हो, जिसमें फारसी और अरबी के शब्द हों और संस्कृतनिष्ठ शब्द भी। उन्होंने भाषा को धार्मिक पहचान से मुक्त रखने का आग्रह किया। उनका मत था कि यदि भाषा को धर्म का विषय बना दिया गया, तो भाषा कभी राष्ट्र की सेवा नहीं कर सकेगी। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हिंदुस्तानी भाषा देवनागरी और उर्दू – दोनों लिपियों में लिखी जा सकती है। यह विचार उस समय क्रांतिकारी था, क्योंकि भाषा और लिपि को अक्सर एक ही माना जाता था। उनका मानना था कि लिपियाँ माध्यम होती हैं, आत्मा नहीं। आत्मा उस भाषा में होती है जो जनता की भावना को संप्रेषित करे। हिंदुस्तानी के संबंध में उनका मत था कि, हिंदुस्तानी भाषा में हिंदी और उर्दू का मिलन हो, यह जन की भाषा हो, जो आम लोगों की ज़ुबान पर हो, जिसे सिखाना आसान हो और जिसमें हमारी गंगा–जमुनी संस्कृति झलकती हो।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि महात्मा गांधी का राष्ट्रभाषा के प्रति दृष्टिकोण उनके समग्र राष्ट्रीय पुनरुत्थान के दर्शन का एक केंद्रीय स्तंभ था। उनके लिए, भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह राष्ट्रीय पहचान, एकता और जन–जागरण का एक शक्तिशाली उपकरण थी। उन्होंने दृढ़ता से माना कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का कोई अस्तित्व नहीं है, स्वत्व नहीं है। इसके लिए उन्होंने हिंदी को सर्वाधिक उपयुक्त पाया क्योंकि यह भारत के एक बड़े वर्ग द्वारा बोली और समझी जाती थी। उन्होंने हिंदी को जन सामान्य के हृदय की भाषा कहा है, जो भावनात्मक जुड़ाव और सांस्कृतिक एकता स्थापित करने की उसकी क्षमता को दर्शाता है। उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा को बौद्धिक विकास और मौलिकता के लिए अनिवार्य माना। अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा को औपनिवेशिक मानसिकता का प्रतीक मानकर उसका विरोध किया। उनके लिए, स्वभाषा का प्रश्न सीधे तौर पर स्वराज्य से जुड़ा था। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय आंदोलन का एक शक्तिशाली अस्त्र बनाया, जिसके माध्यम से उन्होंने जनता को संगठित किया और उनमें आत्मविश्वास पैदा किया। उनके भाषाई दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू 'हिंदुस्तानी' की अवधारणा थी, जो हिंदी और उर्दू का एक सरल, बोलचाल का रूप था, जिसे देवनागरी और फ़ारसी–अरबी दोनों लिपियों में लिखा जा सकता था। यह उनकी समावेशिता और भाषाई समन्वय की गहरी इच्छा को दर्शाता था, जिसका उद्देश्य हिंदी–उर्दू विवाद को पाटना और हिंदू–मुस्लिम एकता को मजबूत करना था। इस दर्शन को मूर्त रूप देने के लिए, गांधीजी ने 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा', 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' और 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मुंबई' जैसी कई संस्थाओं की स्थापना की या उनसे जुड़े रहे। उन्होंने अपनी पत्रकारिता (यंग इंडिया, नवजीवन, हरिजन) का भी उपयोग अपने भाषाई और सामाजिक संदेशों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए किया।

गांधीजी के अथक प्रयासों के बावजूद, हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का उनका स्वप्न पूरी तरह साकार नहीं हो पाया। अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी को अनिवार्य बनाने के प्रयासों का कड़ा विरोध हुआ, जिसने क्षेत्रीय भाषाई अस्मिता की शक्ति को उजागर किया। हिंदी–उर्दू विवाद भी गहराता गया, जिससे हिंदुस्तानी की उनकी समावेशी अवधारणा की सीमाएं स्पष्ट हुईं। अंततः, संविधान सभा ने हिंदी को भारत की 'राजभाषा' (आधिकारिक भाषा) के रूप में स्वीकार किया, जबकि अंग्रेजी को सह–राजभाषा के रूप में जारी रखा गया। यह निर्णय भाषाई विविधता और क्षेत्रीय संवेदनशीलता के प्रति एक समझौतावादी दृष्टिकोण को दर्शाता है, जो गांधीजी के आदर्शवादी स्वप्न और भारत की भाषाई वास्तविकताओं के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास था। आज भी, गांधीजी का भाषाई दर्शन अत्यधिक प्रासंगिक है। मातृभाषा में शिक्षा का उनका आग्रह आधुनिक शिक्षाशास्त्र में एक मौलिक सिद्धांत बना हुआ है, जो बच्चों के समग्र विकास के लिए महत्वपूर्ण है। भाषाई समन्वय और समावेशिता पर उनका जोर, विशेषकर हिंदुस्तानी की अवधारणा के माध्यम से, भाषाई ध्रुवीकरण को कम करने और विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संवाद और समझ को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण मॉडल प्रदान करता है। भारत जैसे बहुभाषी देश में, जहां भाषाई पहचानें अक्सर राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचानों से गहराई से जुड़ी होती हैं, गांधीजी का यह दृष्टिकोण कि भाषा को एकता का साधन होना चाहिए, न कि विभाजन का, आज भी एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांत है। उनकी विरासत हमें यह सिखाती है कि भाषाई नीतियां केवल प्रशासनिक सुविधा पर आधारित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन्हें राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और भावनात्मक जुड़ाव को भी ध्यान में रखना चाहिए, ताकि एक मजबूत और एकजुट राष्ट्र का निर्माण किया जा सके।

ISSN No. : 0970-9398

विकसित भारत@2047 की परिकल्पना और राजभाषा हिंदी

– डॉ. जे. आत्माराम
हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

विकसित भारत@ 2047 की परिकल्पना केवल आर्थिक और तकनीकी उन्नति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक ऐसे सशक्त, समावेशी और संवेदनशील राष्ट्र के निर्माण की कल्पना है, जिसमें भारत का प्रत्येक नागरिक न केवल विकास का लाभार्थी हो, बल्कि उसकी प्रक्रिया में सक्रिय सहभागी भी बने। इस महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य की प्राप्ति में राजभाषा हिंदी की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि हिंदी न केवल देश की सबसे व्यापक संप्रेषण की भाषा है, बल्कि यह एक ऐसी सशक्त सांस्कृतिक सेतु है, जो विविध भाषाओं, समुदायों और क्षेत्रों को जोड़ने की क्षमता रखती है। इतना ही नही, तकनीकी और वैज्ञानिक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में भी राजभाषा हिंदी आज पूरी तरह सक्षम और समृद्ध हो चुकी है।

प्रशासनिक दक्षता और राजभाषा हिंदी

विकसित भारत@2047 की परिकल्पना में प्रशासनिक दक्षता एक केंद्रीय स्तंभ है, जो शासन को पारदर्शी, उत्तरदायी और जनोन्मुखी बनाता है। प्रशासनिक दक्षता का अर्थ केवल कार्य की गति नहीं है, बल्कि नागरिकों के साथ संवाद की गुणवत्ता और सहभागिता भी है। भारत जैसे बहुभाषी लोकतंत्र में यह दक्षता तब पूर्ण होती है जब शासन के नीति–निर्धारण की भाषा वही हो जो जन–सामान्य की भाषा है – और यही भूमिका राजभाषा हिंदी निभाती है।

राजभाषा हिंदी को प्रशासनिक कार्यों में प्राथमिकता देने से न केवल प्रक्रियाओं में सरलता आती है, बल्कि शासन और नागरिकों के बीच संवाद भी अधिक सहज और प्रभावशाली बनता है। राजभाषा नियम के अनुसार, जब कोई नागरिक अपने कार्यालय में हिंदी में आवेदन करता है तो उसे उत्तर भी हिंदी में भी प्राप्त होना चाहिए, और जब किसी भी परिस्थिति में इस नियम का अनुपालन शत–प्रतिशत अनुपालन होता है, तब वह स्वयं को शासन का भागीदार महसूस करता है। नागरिक का यह अनुभव लोकतंत्र की आत्मा को और सशक्त करता है।

राजभाषा अधिनियम की द्विभाषिकता की नीति का अनुपालन करते हुए केंद्र सरकार के सभी कार्यालयों में दस्तावेजों, आदेशों और अधिसूचनाओं को हिंदी में भी तैयार करने के प्रयास हो रहे हैं, किंतु इस नियम के शत–प्रतिशत कार्यान्वयन की भी कुछ सीमाएँ दिखाई दे रही हैं। यदि राजभाषा हिंदी को प्रशासनिक भाषा के रूप में सशक्त बनाना है, तो इसे केवल अनुवाद की भाषा नहीं बल्कि उसे 'निर्णय प्रक्रिया की भाषा' बनाना होगा। इसका अर्थ है कि सभी स्तरों पर मूल पत्र हिंदी में लिखे जाने चाहिए और नीति–निर्माण, योजना–निर्धारण और समीक्षा जैसे उच्च स्तरीय कार्य भी हिंदी में संपन्न होने चाहिएं।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने के लिए प्रशिक्षित करना अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ–साथ, नियमित रूप से कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, राजभाषा प्रोत्साहन कार्यक्रमों के आयोजन व तकनीकी सहयोग के माध्यम से उन्हें हिंदी में कार्य करने में दक्ष बनाया जा सकता है। इस प्रकार के आयोजनों से कर्मचारियों को अद्यतन प्रशासनिक एवं तकनीकी प्राप्त करने का अवसर मिलता है, उनकी यह जानकारी उनके प्रशासनिक कार्यों को न केवल सरल बनाती है, बल्कि उन्हें अधिक प्रभावी भी बनाती है।

आधुनिक प्रशासनिक तंत्र में ई–ऑफिस सिस्टम, MIS रिपोर्टिंग और डेटा एनालिटिक्स जैसे उपकरणों का प्रयोग बढ़ रहा है। यदि इन प्रणालियों को भी हिंदी में उपलब्ध कराया जाए तो इससे ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों के अधिकारी भी डिजिटल प्रशासन में सक्रिय भागीदारी निभा सकेंगे।

हिंदी में कार्य करने वाला प्रशासन नागरिकों के अधिक निकट होता है। जब शासन की भाषा और लोक की भाषा एक ही होती है, तो वह केवल आदेश देने का माध्यम नहीं रह जाती, बल्कि संवाद और सहभागिता का पुल बन जाती है। यह पुल नागरिकों को शासन से जोड़ता है, उनकी भागीदारी को बढ़ाता है और लोकतंत्र को जीवंत बनाता है।

अतः विकसित भारत की परिकल्पना में प्रशासनिक दक्षता को सशक्त करने के लिए संघ की राजभाषा के रूप

में हिंदी के उपयोग को अधिक से अधिक बढ़ाना केवल देश की भाषिक नीति का प्रश्न नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का संकल्प है। यदि हिंदी विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में कामकाज की प्रमुख निर्णायक भाषा के रूप में अपनी भूमिका निभाने लगे, तो भारत न केवल तकनीकी रूप से, बल्कि भाषिक और सांस्कृतिक रूप से भी एक समावेशी और आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में निश्चित रूप से उभर सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और राजभाषा हिंदी

विकसित भारत@2047 की परिकल्पना केवल भौतिक प्रगति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भाषिक समावेशन, तकनीकी दक्षता और लोकतांत्रिक सहभागिता को भी केंद्र में रखती है। इस दिशा में राजभाषा हिंदी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषकर जब तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे क्षेत्रों में हिंदी को सशक्त बनाने के प्रयास हो रहे हैं। हिंदी को प्रशासनिक और तकनीकी दोनों स्तरों पर सशक्त करना, भारत को वैश्विक मंच पर प्रतिस्पर्धी बनाने की दिशा में एक निर्णायक कदम है।

भारतीय संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा हिंदी से संबंधित प्रावधान हैं। अनुच्छेद 343(1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, जबकि 343(2) और (3) के तहत अंग्रेजी के प्रयोग को सीमित समय तक जारी रखने और संसद द्वारा विधिक विस्तार की व्यवस्था की गई। इसी आधार पर राजभाषा अधिनियम 1963 (यथासंशोधित 1967) अस्तित्व में आया, जिसकी धारा 3(3) में हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रयोग को अनिवार्य किया गया है। राजभाषा नियम 1976 के तहत देश को तीन क्षेत्रों में विभाजित कर हिंदी प्रयोग के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। अनुच्छेद 344 में राजभाषा आयोग और समिति का गठन तथा अनुच्छेद 351 में हिंदी को समावेशी और आधुनिक भाषा के रूप में समृद्ध करने का निर्देश है। ये सभी प्रावधान प्रशासनिक पारदर्शिता, जवाबदेही और भाषिक समावेशिता की दिशा में महत्वपूर्ण हैं।

इन संवैधानिक और नीतिगत प्रावधानों के बावजूद, हिंदी के प्रशासनिक प्रयोग में कई व्यावहारिक चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए तकनीकी उपकरणों का प्रयोग आवश्यक है। इस दिशा में राजभाषा विभाग द्वारा विकसित भारती बहुभाषी अनुवाद सारथी एक उल्लेखनीय पहल है। यह एक Translation Memory आधारित सॉफ्टवेयर है, जो अनुवादकों को सरकारी दस्तावेजों का हिंदी–अंग्रेजी अनुवाद करने में सहायता प्रदान करता है। भारती बहुभाषी अनुवाद सारथी में पूर्व अनुवादों का डेटाबेस होता है, जिससे एकरूपता और गति दोनों सुनिश्चित होती हैं।

भारती बहुभाषी अनुवाद सारथी की उपयोगिता को और बढ़ाने के लिए इसे सभी मंत्रालयों में अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए। इसके इंटरफेस को और अधिक सहज बनाया जाए और क्षेत्रीय भाषाओं के साथ समन्वय की सुविधा भी जोड़ी जाए। इसके अलावा, इसमें प्रसंग आधारित अनुवाद सुझाव, वाक्य संरचना की विविधता और प्रशासनिक शब्दावली का अद्यतन किया जाना भी आवश्यक है।

इसी क्रम में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) जैसे क्षेत्रों में भी राजभाषा हिंदी के लिए भाषा संसाधनों का विकास भारत को वैश्विक तकनीकी परिदृश्य में प्रतिस्पर्धी बनाने की दिशा में अग्रसर कर रहा है। AI4Bharat जैसे प्रोजेक्ट हिंदी समेत अन्य भारतीय भाषाओं के लिए मशीन लर्निंग मॉडल, वॉयस रिकग्निशन और टेक्स्ट एनालिसिस टूल्स विकसित कर रहे हैं। यह प्रयास न केवल तकनीकी समावेशन को सशक्त करते हैं, बल्कि भाषाई विविधता को तकनीक से जोड़ने का कार्य भी करते हैं।

इस प्रकार, राजभाषा हिंदी का तकनीकी और प्रशासनिक समावेश विकसित भारत की परिकल्पना में एक केंद्रीय भूमिका निभाता है। जब तकनीक और शासन दोनों हिंदी में संवाद करेंगे, तो नागरिक न केवल सेवाओं से जुड़ेंगे, बल्कि वे स्वयं को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का सक्रिय भागीदार भी महसूस करेंगे।

डिजिटल भारत और राजभाषा हिंदी

वर्ष 2047 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में डिजिटल समावेशन एक अनिवार्य घटक है। इस समावेशन की सफलता तब सुनिश्चित होती है जब तकनीक की भाषा आमजन की भाषा हो। ऐसे में राजभाषा हिंदी का डिजिटल मंचों पर सशक्त और सक्रिय रूप से उपस्थित होना न केवल भाषिक न्याय की दिशा में एक कदम है, बल्कि यह लोकतांत्रिक सहभागिता और प्रशासनिक पारदर्शिता को भी सुदृढ़ करता है।

भारत सरकार द्वारा संचालित अनेक ई—गवर्नेंस प्लेटफॉर्म जैसे MyGov, UMANG, DigiLocker, Aarogya Setu आदि में हिंदी इंटरफेस की उपलब्धता करोड़ों हिंदीभाषी नागरिकों को सरकारी सेवाओं तक पहुँचने में सुविधा प्रदान करती है। यह केवल भाषा का अनुवाद नहीं, बल्कि नागरिकों को उनकी अपनी भाषा में सशक्त बनाने की दिशा में एक ठोस कदम है। जब कोई ग्रामीण नागरिक अपने मोबाइल पर हिंदी में सरकारी योजना की जानकारी प्राप्त करता है, तो वह तकनीक से जुड़ने के साथ—साथ आत्मविश्वास भी अर्जित करता है।

डिजिटल समावेशन का वास्तविक अर्थ है—जहाँ तकनीक सबके लिए सुलभ हो और भाषा बाधा नहीं, बल्कि पुल बने। हिंदी में मोबाइल ऐप्स, वेबसाइट्स और सेवाओं की उपलब्धता भारत के उस विशाल वर्ग को सशक्त करती है जो अंग्रेजी से अपरिचित है। यह भाषाई समावेशिता का प्रतीक है, जो लोकतंत्र को अधिक जीवंत और समावेशी बनाता है।

राजभाषा हिंदी की डिजिटल उपस्थिति केवल प्रशासनिक सुविधा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्मबल का भी निर्माण करती है। जब नागरिक अपनी भाषा में तकनीकी सेवाओं का उपयोग करते हैं, तो वे न केवल सूचना प्राप्त करते हैं, बल्कि वे उस प्रणाली का हिस्सा बनते हैं। यह सहभागिता उन्हें शासन से जोड़ती है और उन्हें निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनाती है।

अतः डिजिटल भारत की परिकल्पना में राजभाषा हिंदी की सशक्त उपस्थिति एक अनिवार्य आवश्यकता है, जो तकनीक को जनभाषा से जोड़कर भारत को एक समावेशी, आत्मनिर्भर और भाषिक रूप से न्यायपूर्ण राष्ट्र की ओर अग्रसर करती है।

निष्कर्ष

विकसित भारत की परिकल्पना केवल आर्थिक या तकनीकी विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भी मांग करती है। इस पुनरुत्थान में राजभाषा हिंदी की भूमिका केंद्रीय है। हिंदी न केवल प्रशासनिक दक्षता का माध्यम है, बल्कि यह भारत की आत्मा, उसकी पहचान और उसकी विविधता की अभिव्यक्ति भी है।

यदि भारत को वर्ष 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनाना है, तो यह आवश्यक है कि हिंदी को प्रशासन, शिक्षा, तकनीक और जनसंचार के हर स्तर पर सशक्त रूप से स्थापित किया जाए। यह भाषाई समावेशन ही भारत को एक समतामूलक, आत्मविश्वासी और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करेगा।

संदर्भ –

1. https://rajbhasha.gov.in
2. https://ai4bharat.org
3. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2095327
4. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID= 2003820
5 अर्चना शर्मा, प्रशासन में हिंदी का प्रयोगः चुनौतियाँ और संभावनाएँ, हिंदी अकादमी दिल्ली
6 रवींद्र मिश्रा, हिंदी का सांस्कृतिक विमर्श, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 2021.

ISSN No. : 0970-9398

स्वभाषाः स्वाभिमान का प्रतीक

– विकास कौशल
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, मुंबई

स्वभाषा का उद्‌भव

भाषा का प्रयोग मनुष्यों ने कई युगों पूर्व शुरू किया होगा। भाषा कब और कैसे अस्तित्व में आयी इसके लिए कई बुद्धिजीवियों ने अपने तर्क दिए हैं पर हम सब जानते हैं, भाषा का प्रयोग एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को अपना निज बताने के लिए किया गया पहला प्रयास रहा होगा। यही प्रयास आज भी भाषा का मूल उद्देश्य है। युगों से चले आ रहे इस प्रयास से मनुष्यों ने सात हजार से अधिक भाषाएं पा ली हैं और यह भाषा ही है जिसने इस विश्व को एक साथ जोड़े रखा है।

मनुष्य को इन हजारों भाषाओं में से वो एक भाषा अपनी लगती है जिसमें उसने अपनी माँ को बोलते सुना होगा। फिर उसी का अनुसरण कर जब उसने बोलना और पुकारना प्रारंभ किया होगा तो उस भाषा ने उसे अभिव्यक्ति की प्रेरणा दी होगी। बचपन से सीखी–बोली गई भाषा ही मनुष्य की अपनी भाषा है जो उसे अभिव्यक्ति का अवसर देती हुई उसे अपनी जड़ों से जोड़े रखती है, यही होती है व्यक्ति की स्वभाषा जिसमें वो अपनी संस्कृति और परंपरा से जुड़ा रहता है तथा उसके साथ ही नये विचारों के संवाहक के रूप में वह अपनी स्वभाषा की सहायता लेता है। स्वभाषा संवाद से एक कदम आगे जाकर मानव समाज को एक ऐसी माला में पिरोती है जिससे न केवल एक दूसरे को समझने में सरलता हो बल्कि एक समाज और एक देश के स्तर पर हम सभी को जुड़ाव महसूस हो, एकता महसूस हो।

अपरिचित और विदेशी जमीन पर अपनी भाषा बोलने वाला व्यक्ति जब मिलता है तो हम बिना उस व्यक्ति को जाने उसे अपना मान लेते हैं। भाषा का यही जादू है कि वह सबको जोड़ते हुए अपनाकर चलती है। मनुष्य के मूल भाव, उसके स्वप्न की जड़ें उसकी स्वभाषा में पाई जाती है और आने वाला समय जितनी तेजी से बदल रहा है उतना ही आवश्यक हो गया है मनुष्यों को अपनी जड़ों पर अपनी पकड़ बनाये रखना। स्वभाषा एक ही सूत्र में मनुष्यों की इच्छाएं, उसकी संस्कृति, उसकी परंपरा एवं उसके विचारों को पिरोती है।

जब हम 'स्वभाषा' की बात करते हैं, तो उसका तात्पर्य उस भाषा से होता है जिसमें कोई व्यक्ति जन्म से सोचता, समझता और अभिव्यक्त होता है। स्वभाषा हमारी मातृभाषा होती है – वह भाषा जिसमें हमारी भावनाएँ सबसे सहज रूप से व्यक्त होती हैं और जब यही भाषा शिक्षण, साहित्य, आधिकारिक रूप में प्रयोग में लायी जाने लगे तो सभी चीजें सुगम होने लगती हैं और इस सुगमता के तार से समाज एक साथ जुड़ता है। यह जुड़ाव भारत जैसे देश में, जहाँ दैनिक रूप से सैकड़ों भाषाएं बोली जाती हैं, एकता और समानता को अधिक सुदृढ़ करती है।

स्वभाषा की वैश्विक स्थितिः विश्व के कई बड़े देश जैसे रूस, फ्रांस, चीन, जापान आदि ने स्वभाषा के महत्वों को जाना और उसे खुले मन से बड़े पैमाने पर अपनाया है। आज शक्तिशाली देशों की संपन्नता का मुख्य कारण उनका स्वभाषा के प्रति लगाव व सम्मान है। आज बड़े से बड़ा देश अपनी शिक्षा, चिकित्सा, संसद, सरकार, अदालतों और अपने दैनिक व्यवहार में उच्चतम स्तर तक स्वभाषा का ही प्रयोग करते हैं। स्वभाषा को अपनाना विदेशी भाषाओं को अनुचित ठहराना नहीं है। विदेशी भाषाओं का ज्ञान होना तथा उन्हें अनुसंधान, व्यापार स्तर पर इस्तेमाल कर हमें विश्व के अन्य देशों से सामंजस्य बनाने का मौका मिलता है।

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं स्वभाषा

बहुभाषी देश भारत ने अपनी नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के अंतर्गत त्रिभाषा सूत्र को शिक्षा में सम्मिलित किया है जिससे हमारी सैकड़ों भाषाएँ न केवल संप्रेषण बल्कि वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक पहचान एवं सम्मान का भी विषय हो। इसमें कक्षा 5 तक शिक्षा मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा में देने की सिफारिश की गई है। इसका उद्देश्य छात्रों में भाषायी विविधता को बढ़ावा देना और उन्हें क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्षम बनाना है। सभी छात्रों को स्कूली शिक्षा के दौरान तीन भाषाएं सीखनी होंगी जिसमें कम से कम दो भारतीय भाषाएँ होंगी। भाषाओं का चुनाव राज्यों, क्षेत्रों और स्कूलों की सुविधा और प्राथमिकताओं के अनुसार किया जा सकेगा। छात्र, माता–पिता और राज्यों की सहमति से भाषाओं का

चयन किया जाएगा। आगे चलकर विद्यार्थियों के लिए कई विदेशी भाषाओं जैसे, चीनी, फ्रेंच, कोरियन, आदि को सीखने का प्रावधान भी किया गया है। यह किसी एक विशेष भाषा को अनिवार्य नहीं बनाता।

त्रिभाषा सूत्र न केवल भारतीय व स्थानीय भाषाओं को अनुकूल बनाता है बल्कि इस प्रकार विद्यार्थियों को अपने देश, अपने स्थानीयता से अधिक जुड़ने का मौका देता है। यह सूत्र विद्यार्थियों में विभिन्न भाषाओं के प्रति सम्मान, सहिष्णुता और सहयोग की भावना को बढ़ावा देता है। यह भाषा को केवल एक विषय न मानकर एक सांस्कृतिक और बौद्धिक माध्यम के रूप में स्वीकार करता है। इससे न केवल विद्यार्थियों की भाषायी दक्षता बढ़ेगी, बल्कि वे एक बहुभाषी और विविधतापूर्ण भारत के सक्रिय नागरिक बन सकेंगे।

शिक्षण एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्वभाषा को अपना उचित स्थान दिया जा सकता है। आज भूमंडलीकरण के कारण सभी नौकरियों के लिए अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य हो गया है और इसी के चलते आज अधिकतर शिक्षा का आधार अंग्रेजी बन गया है। परंतु समय के साथ हमें आज जरूरत है कि शिक्षा को हम अपनी स्वभाषा व स्थानीय भाषाओं में ग्रहण करें। इससे स्वभाषा दैनिक व्यवहार में आती जाएगी और सभी प्रांतों व व्यक्तियों के बीच समानता का भाव जागृत होगा। अपनी भाषा में पढ़ने–लिखने से संसार के तमाम विचार बेहतर तरह से समझ आने लगेंगे। शिक्षण एवं अनुसंधान जब स्वभाषा में होगा तो कोई भी आम व्यक्ति बड़े–से–बड़े विषय को बहुत ही आसानी से ग्रहण कर सकेगा। विभिन्न विषय अंग्रेजी माध्यम के बजाय भारतीय भाषाओं में होंगे, जिसके सरल उपयोग से उनका तार्किक विकास होगा और उनके मौलिक विचार विकसित होंगे। यूनेस्को ने भी मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा को बाल विकास के लिए आवश्यक माना है।

प्रशासनिक कार्यकलापों में स्वभाषा

प्रशासनिक कार्यों में स्वभाषा का प्रयोग किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। जब शासकीय तंत्र जनता की भाषा में कार्य करता है तो शासन अधिक पारदर्शी, प्रभावी और जनोन्मुखी बनता है। यदि सरकारी आदेश, परिपत्र, योजनाएँ, नियम, अधिनियम आदि स्वभाषा में जारी किए जाएँ, तो आम नागरिक उन्हें सरलता से समझ सकते हैं। इससे वे शासन की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभा सकते हैं।

स्वभाषा में काम करने से प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों को न केवल कार्य करने में सहजता मिलती है, बल्कि त्रुटियाँ भी कम होती हैं। जानकारी जल्दी ग्रहण होती है और समय की बचत होती है। जब प्रशासनिक जानकारी जनता की भाषा में उपलब्ध होती है तो निर्णय प्रक्रिया में पारदर्शिता आती है और अधिकारी अधिक उत्तरदायी बनते हैं। इससे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगता है। भारत जैसे बहुभाषी और विविधतापूर्ण देश में, जहाँ बड़ी संख्या में लोग अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाएँ नहीं जानते, वहाँ स्वभाषा में प्रशासनिक कार्यवाही से ग्रामीण और वंचित वर्ग भी सरकारी सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त राज्यों को अपनी–अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को प्रशासन में अपनाने का अधिकार भी दिया गया है। जब प्रशासनिक तंत्र स्वभाषा पर आधारित होता है तो यह बाह्य भाषा पर निर्भर नहीं रहता और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ता है। प्रशासनिक क्षेत्र में स्वभाषा का उपयोग केवल भाषाई सुविधा नहीं, बल्कि लोकतंत्र को मजबूत बनाने का माध्यम है। यह शासन को जनता के अधिक निकट लाता है और सुशासन को संभव बनाता है।

न्यायालयीन कार्यकलापों में स्वभाषा

न्यायिक क्षेत्र में स्वभाषा का प्रयोग एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है, जो न केवल विधिक प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाता है, बल्कि नागरिकों की न्याय तक सहज पहुँच को भी सुनिश्चित करता है। जब न्यायिक कार्यवाही, निर्णय और दस्तावेज जनता की भाषा में होंगे तो आम नागरिक बेहतर तरीके से अपने अधिकारों और न्याय प्रक्रिया को समझ सकेंगे। स्वभाषा में संवाद न्याय व्यवस्था में लोगों का विश्वास निर्माण करता है। स्वभाषाओं में विधिक शब्दावली का विकास और मानकीकरण करना होगा। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का प्रामाणिक अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में करना होगा। न्यायिक क्षेत्र में स्वभाषा का प्रयोग एक लोकतांत्रिक आवश्यकता है। यह न केवल नागरिकों को न्याय दिलाने की प्रक्रिया को सरल बनाता है, बल्कि भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषाई समावेशन और संवैधानिक मूल्यों को भी सुदृढ़ करता है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में स्वभाषा

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में स्वभाषा का प्रयोग एक ऐसा विषय है जो ज्ञान के लोकतंत्रीकरण, नवाचार के प्रसार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास से सीधे जुड़ा हुआ है। भारत जैसे बहुभाषी देश में, विज्ञान एवं तकनीक को आम जनता तक पहुँचाने के लिए स्वभाषा का प्रयोग अनिवार्य हो गया है। अधिकतर तकनीकी और वैज्ञानिक सामग्री अंग्रेजी में होती है जो बड़ी जनसंख्या के लिए

कठिन होती है। स्वभाषा में यह ज्ञान पहुँचाकर हम आमजन को भी विज्ञान से जोड़ सकते हैं। जब विद्यार्थी और आम नागरिक विज्ञान को अपनी भाषा में समझते हैं, तो जिज्ञासा और नवाचार की भावना बढ़ती है। एनसीईआरटी, सीएसआईआर और विज्ञान प्रसार जैसी संस्थाएँ हिंदी और अन्य भाषाओं में विज्ञान के प्रचार–प्रसार हेतु कार्य कर रही हैं। इंटरनेट और सोशल मीडिया पर कुछ वैज्ञानिक सामग्री अब क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध है। फिर भी, उच्च स्तरीय तकनीकी शिक्षा और अनुसंधान आज भी मुख्यतः अंग्रेजी तक सीमित है। विज्ञान लेखन को स्थानीय भाषाओं में प्रोत्साहित किया जाए, न केवल अनुवाद के माध्यम से, बल्कि मौलिक लेखन द्वारा। विद्यालयों में अंग्रेजी के साथ–साथ स्वभाषा का प्रयोग हो, तकनीकी प्रशिक्षण और वैज्ञानिक सोच जब स्थानीय भाषा में दी जाएगी तो ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के लोग भी विकास में सक्रिय भागीदारी कर सकते हैं।

व्यापार और उद्योग में स्वभाषा

व्यापार और उद्योग में स्वभाषा का प्रयोग न केवल संप्रेषण को सुलभ बनाता है, बल्कि ग्राहकों और कर्मचारियों के साथ बेहतर संबंध स्थापित कर, व्यावसायिक प्रभावशीलता को भी बढ़ाता है। भारत जैसे विविध भाषाओं वाले देश में, व्यापार और उद्योग क्षेत्र में स्वभाषा का प्रयोग रणनीतिक रूप से अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकता है। ग्राहक की अपनी भाषा में संवाद होता है तो वह ब्रांड के प्रति अधिक विश्वास और लगाव महसूस करता है। कर्मचारियों को निर्देश, प्रशिक्षण और सूचना उनकी अपनी भाषा में मिलने से वे कार्य को बेहतर समझते और निष्पादित करते हैं। ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में स्वभाषा में प्रचार–प्रसार करने से वहाँ के बाजारों तक पहुँचना आसान होता है। आज बड़े बड़े कॉर्पोरेट अब मल्टी–लैंग्वेज मार्केटिंग अपनाने लगे हैं। मसलन, टीवी विज्ञापनों, वेबसाइट्स और ऐप्स में हिंदी, मराठी, तमिल, तेलुगू आदि भाषाओं में सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है।

ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स जैसे अमेजॉन, फ्लिपकार्ट आदि अब कई भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। ग्राहक सेवा भी क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराई जा रही है। इन सबसे ब्रांड का सीधा संपर्क ग्राहक के साथ स्थापित होता है उसे किसी दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती उस वस्तु व बाजार को समझने के लिए जो ग्राहक को आत्मीय स्तर पर जोड़ती है और वैश्विक स्तर पर उसकी क्षमताओं को मान्यता प्राप्त होती है। व्यापार और उद्योग का मूल उद्देश्य है –लोगों तक पहुँचना और उन्हें जोड़ना। जब यह अपनी भाषा में होता है तो यह केवल लेन–देन नहीं रह जाता बल्कि विश्वास, सम्मान और सहभागिता का संबंध बन जाता है। स्वभाषा में व्यापारिक संवाद न केवल आर्थिक लाभ देता है बल्कि सांस्कृतिक समावेशिता और सामाजिक न्याय को भी बढ़ावा देता है।

संचार और मीडिया में स्वभाषा

संचार और मीडिया में स्वभाषा का प्रयोग आज के डिजिटल युग में अत्यंत महत्वपूर्ण, प्रभावशाली और प्रासंगिक हो गया है। जब संचार और मीडिया अपनी भाषा में होता है तो वह केवल जानकारी नहीं देता बल्कि जनमानस से गहराई से जुड़ता है, सोच को प्रभावित करता है और सामाजिक चेतना को जागृत करता है। अधिकतर जनता अंग्रेजी के स्थान पर अपनी स्थानीय भाषा में संदेश को बेहतर समझती है। स्वभाषा में समाचार और जानकारी देने से वह समाज के हर वर्ग तक पहुँचती है – विशेषकर ग्रामीण और कम शिक्षित वर्गों तक। जब समाचार, विज्ञापन या संवाद अपनी भाषा में होता है तो वह अधिक गहराई से असर करता है। देशभर में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के अखबारों की प्रसार संख्या अंग्रेजी से कहीं अधिक है (जैसे– दैनिक भास्कर, मलयाला मनोरमा, लोकसत्ता, गुजरात समाचार, आनंदबाजार पत्रिका)। क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार तथा मनोरंजन चैनल व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचे हैं। यूट्यूब, इंस्टाग्राम, फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म्स जो नयी पीढ़ी से अधिक जुड़े हैं उस पर क्षेत्रीय भाषाओं में कंटेंट की मांग और आपूर्ति दोनों तेजी से बढ़ी है।

साहित्य और संस्कृति में स्वभाषा

साहित्य और संस्कृति में स्वभाषा का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण और अपरिवर्तनीय है। स्वभाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है बल्कि वह उस समाज की संवेदनाओं, परंपराओं और पहचान का जीवंत दस्तावेज होती है। साहित्य और संस्कृति का विकास स्वभाषा में ही संभव है क्योंकि वही आत्मा से जुड़ती है। रचनाकार जब स्वभाषा में लिखता है तो उसकी रचना अधिक स्वाभाविक, जीवंत और प्रभावशाली होती है। स्वभाषा में रचा गया साहित्य समाज के आम लोगों से सीधा जुड़ता है, वे उसमें खुद को पहचानते हैं, उन्हें अपने जीवन की दृश्यता मिलती है। लोकगीत, लोककथाएँ, मुहावरे और कहावतें स्वभाषा के माध्यम से पीढ़ियों तक संरक्षित रहती हैं। संस्कृति का मौलिक रूप भाषा के माध्यम से ही पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता है। नृत्य, संगीत, रंगमंच, विवाह गीत, त्योहारों के मंत्र सबका आधार स्वभाषा होती है। वैश्वीकरण और अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव से युवा वर्ग में स्वभाषा की उपेक्षा की प्रवृत्ति देखी जा रही है। बावजूद इसके, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्यिक लेखन, कविता, ब्लॉग और डिजिटल कंटेंट का पुनरुत्थान हो रहा है।

उपसंहार

फ्रांत्ज फैनन का कहना है कि, "भाषा बोलना एक दुनिया और एक संस्कृति को अपनाना है।" जब भी मनुष्य भाषा का प्रयोग करता है वह सामने वाले मनुष्य से, अनजान विधा से, बेगानी संस्कृति से थोड़ा और परिचित होता जाता है। भाषा एक सशक्त माध्यम है जो एक जमीन के, एक देश के सभी रंग व छटाओं को उजागर करती है। संस्कृति से लेकर विज्ञान तक, प्रशासन से लेकर शिक्षा तक तथा स्थानीयता से लेकर वैश्विकता तक को जो एक धागे में पिरोती है, वह है स्वभाषा। यह एक बहुत विस्तृत और बहुआयामी क्षेत्र है जिसमें हर एक के लिए जगह सुनिश्चित है। स्वभाषा जन–जन को साथ में लेकर चलने की भाषा है जो न केवल आपको प्रगति के पथ पर ले जाएगी बल्कि इसका ध्यान भी रखेगी कि आप अपने इतिहास को, अपनी जड़ों को ना भूलें। बदलते समय के साथ स्वभाषा को भी मुख्य धारा में लाना है, उसे भी हमें डिजिटल दुनिया से जोड़कर सभी के लिए सुलभ बनाना होगा। डिजिटल मंच आज बहुत आसान जरिया है आम जन के जीवन का हिस्सा बनने का और नये ऑनलाइन कंटेंट तथा समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में स्थानीयता को वरीयता देकर अधिक से अधिक लोगों के साथ जुड़ा जा सकता है। आज जिस दुनिया में हर सेकंड के साथ एक नया ट्रेंड बाजार में जन्म ले रहा है, उस दुनिया में स्वभाषा की मजबूत और गहरी जड़ें ही हैं जो संसार में मौलिक एवं गतिशील विचारों तथा कृत्यों के लिए जगह सुनिश्चित रखती है।

समय आ गया है कि वैश्विक स्तर पर हमारा देश अपनी भाषाओं का जादू दिखाए और सारी दुनिया को इससे अवगत कराए। हर स्थानीय भाषा, हर मातृभाषा, हर स्वभाषा में कुछ नया और कुछ अपना करने का जादू है। स्वभाषा समाज में लोगों को एक साथ लाती है तथा इससे एकता के साथ–साथ अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी परम्पराओं पर आप गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह आम मानस मन के भीतर आत्मसम्मान का संचार करती है जिससे मनुष्य जीवन व संसार के किसी भी स्थिति को पार कर जाता है।

आज अवसर है कि हम स्वभाषा को हर जन–मन में बसा लें और इसे आत्मसात करते हुए प्रगति के पथ पर बढ़ते चले। आम जन के मन में जो अपनी स्वभाषा को लेकर पूर्वाग्रह हैं उन्हें हमें दूर करना होगा। शिक्षण में ही नहीं स्वभाषा को केंद्र में रखकर सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों में नौकरियां सृजित करनी होगी ताकि स्वभाषा लोगों के जीवकोपार्जन का भी सशक्त माध्यम बने। स्वभाषा के प्रति जो भी मानसिक अवरोध हैं उन्हें हम समाज के रूप में एक साथ कार्य कर दूर कर सकते हैं। सही मायनों में देखा जाए तो स्वभाषा स्वाभिमान का विषय है क्योंकि यह भाषा आपके दादी–नानी की कहानियों की थी और यही भाषा में आप स्वयं अपनी कहानी लिख सकते हैं।

महात्मा गांधी का कहना था कि, "देश–प्रेम हो और भाषा–प्रेम की चिंता न हो, यह असंभव है।" क्योंकि मातृभाषा से, स्वभाषा से जो ममता और स्नेह का नाता जुड़ा होता है वहीं मदद करता है एक मनुष्य के भावनात्मक पक्ष को विकसित करने का। कोई भी देश तभी तरक्की कर सकता जब उस देश के मनुष्य, उसके नागरिकों में एकता हो, उनके मन में करुणा के भाव हों जो दूसरों की पीड़ा को समझे और उसे दूर करने में अपना परिश्रम करें। स्वभाषा से प्राप्त सीख व ज्ञान ही मशीनों की दुनिया में मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं।

स्वभाषा की उन्नति की ओर हमें छोटे मगर ठोस कदम लेने होंगे। सबसे पहले हमें अपने दैनिक जीवन में अपनी स्वभाषा व मातृभाषा का प्रयोग पुनः लाना होगा। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी मददगार होंगी वो कहानियाँ, दंतकथाएँ, उपन्यास, कविताएँ जो अपनी स्वभाषा में रची जा चुकी हैं एवं जो वर्तमान में रची जा रही हैं। स्वभाषा को अपने दैनिक व्यवहार में लाने हेतु हमें साहित्य और कला की सहायता लेनी होगी तथा साथ ही हमें उन व्यक्तियों को सशक्त करना होगा जो आज स्वभाषा में साहित्य व कला का काम कर रहे हैं। जैसे ही हमारे दैनिक व्यवहार में स्वभाषा को उचित स्थान मिलेगा वैसे ही उसके प्रयोग के क्षेत्रों में वृद्धि होगी क्योंकि अपनी स्वभाषा को लेकर जो मानसिक अवरोध और पूर्वाग्रह हैं उनसे मन मुक्त हो जाएगा।

ISSN No. : 0970-9398

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में परस्पर समभाव

– डॉ. जुगनू खट्टर भाटिया
प्राचार्य, सतयुग दर्शन इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन एंड रिसर्च
फरीदाबाद

भारत बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ भाषाई विविधता न केवल सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि राष्ट्रीय एकता की आधारशिला भी है। हिंदी, संघ की आधिकारिक भाषा होने के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं के साथ परस्पर संवाद, आदान–प्रदान और सहअस्तित्व का माध्यम है। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति, पहचान और समुदाय की आत्मा है। भारत जैसे विविधता–भूषित राष्ट्र में भाषाएँ न केवल मर्यादित बोली के रूप में विद्यमान हैं, बल्कि वे मानवता के सम्पूर्ण अनुभव को संजोए हुए हैं। ऐसे में "परस्पर समभाव" और सहअस्तित्व की भावना का महत्त्व अत्यंत बढ़ जाता है।

भारत में भाषाओं की विविधता अद्वितीय है। 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में 122 प्रमुख भाषाएँ और 1599 उपभाषाएँ बोली जाती हैं (Registrar General & Census Commissioner, India, 2011)। 2011 के बाद के अनौपचारिक और शोध–आधारित अनुमान (जैसे पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, 2013–2020) बताते हैं कि भारत में भाषाओं की संख्या 780–850 के बीच सक्रिय उपयोग में है, और उपभाषाओं की संख्या 1700 से अधिक है। हिंदी, जो इंडो–आर्यन परिवार से संबंधित है, देश के लगभग 43% लोगों की मातृभाषा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार, देवनागरी लिपि में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। साथ ही, अंग्रेजी को सह–आधिकारिक भाषा के रूप में प्रयोग करने का प्रावधान रखा गया है, ताकि प्रशासनिक कार्यों और अंतर–राज्यीय संवाद में सुविधा बनी रहे। संविधान निर्माताओं ने यह व्यवस्था इसलिए की थी कि देश के विभिन्न भाषाई क्षेत्रों के बीच संवाद बाधित न हो और धीरे–धीरे हिंदी को एक साझा संपर्क भाषा के रूप में विकसित होने का अवसर मिले।

इसके अतिरिक्त, संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्तमान में 22 भाषाएँ शामिल हैं, जो भारत की भाषाई विविधता का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह प्रावधान न केवल भाषाओं की समानता को मान्यता देता है, बल्कि भाषाई समुदायों के सम्मान और सांस्कृतिक संरक्षण की गारंटी भी देता है। परस्पर समभाव का तात्पर्य है भाषाओं के बीच समानता, सम्मान और सह–अस्तित्व की भावना। यह भाव न केवल भाषाई संवाद को सरल बनाता है, बल्कि सांस्कृतिक आदान–प्रदान, सामाजिक एकता और आर्थिक सहयोग का भी आधार है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत की भाषाई विविधता का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। यहाँ की भाषाएँ विभिन्न भाषाई परिवारों से विकसित हुई हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति, साहित्य और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है।

भाषाओं की जड़ें: भारत की भाषाएँ कई भाषाई परिवारों से आती हैं:

1. **इंडो–आर्यन परिवार** – हिंदी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगाली, असमिया, उड़िया, कोंकणी आदि।
2. **द्रविड़ परिवार** – तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, तुलु आदि।
3. **ऑस्ट्रो–एशियाटिक परिवार** – संथाली, मुंडारी, खड़िया, हो आदि।
4. **तिब्बती–बर्मी परिवार** – मणिपुरी, बोडो, गारो, खासी, मिजो आदि।

मध्यकालीन काल: मध्यकालीन भारत में मुगल शासन, सूफी संतों और भक्ति आंदोलन ने भाषाई समभाव को गहरा किया।

- सूफी कवि और संत जैसे अमीर खुसरो ने फारसी, ब्रज, अवधी, खड़ी बोली को मिलाकर लोकभाषा को समृद्ध किया।
- तुलसीदास की रामचरितमानस (अवधी) और सूरदास की ब्रजभाषा रचनाएँ आज भी हिंदीभाषी और अन्य भारतीयों के बीच समान रूप से प्रिय हैं।

औपनिवेशिक काल: अंग्रेजों ने प्रशासन में अंग्रेजी को उच्च स्थान दिया, पर साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं को स्कूल–शिक्षा और स्थानीय प्रशासन में प्रयोग किया।

- ब्रिटिश शासन के दौरान भाषाई संपर्क नए रूप में हुआ। मिशनरी शिक्षा, मुद्रण यंत्र और समाचार पत्रों

ISSN No. : 0970-9398

ने विभिन्न भाषाओं में विचारों का प्रसार किया।

- हिंदी–उर्दू विवाद (19वीं सदी के अंत) ने भाषा–नीति को प्रभावित किया, लेकिन साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली।

स्वतंत्रता के बाद: 1950 के संविधान में हिंदी को देवनागरी लिपि में संघ की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया, साथ ही अंग्रेजी को भी सह–आधिकारिक भाषा का दर्जा मिला।

- **अनुच्छेद 343(1)** – "संघ की आधिकारिक भाषा हिंदी होगी और लिपि देवनागरी होगी।"
- **अनुच्छेद 351** – "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा के प्रसार, विकास और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसके संपर्क और समृद्धि के लिए प्रयास करे, जिससे यह भारत की मिश्रित संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।"
- संविधान में संशोधनों के माध्यम से आठवीं अनुसूची में 14 से बढ़ाकर 22 भाषाएँ शामिल की गईं, जिससे भाषाई समभाव की संवैधानिक पुष्टि हुई। यह संशोधन भाषाई विविधता को मान्यता देने और सभी भाषाओं को समान अवसर प्रदान करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थे।

भाषाई विविधता और समानता के आयाम

भारत भाषाओं की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ, बोलियाँ और लिपियाँ प्रचलित हैं, जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर को समृद्ध बनाती हैं। भाषाई विविधता के साथ–साथ भारतीय भाषाओं में अनेक समानताएँ भी देखने को मिलती हैं।

1. व्याकरणिक संरचना

- **इंडो–आर्यन भाषाएँ** (जैसे हिंदी, मराठी, बांग्ला) की जड़ें संस्कृत के व्याकरणीय मॉडल से जुड़ी हैं।
  - **मुख्य विशेषताएँ:**
    - ❖ संज्ञाओं में लिंग–जनक विभक्ति (जैसे पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग)।
    - ❖ काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) और वचन (एकवचन, बहुवचन) के स्पष्ट रूप।
    - ❖ क्रिया रूपों का समन्वित परिवर्तन।
- **द्रविड़ भाषाएँ** (जैसे तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम) की संरचना स्वभावतः भिन्न है।
  - **मुख्य विशेषताएँ:**
    - ❖ वाक्य संरचना: विषय–वस्तु–क्रिया (SOV) क्रम।
    - ❖ विभक्ति और पोस्टपोजिशन का अलग पैटर्न।
    - ❖ लिंग के बजाय प्रायः जीवित/अजीवित के आधार पर वर्गीकरण।
- **परस्पर सहयोग:**
  - ❖ समय के साथ हिंदी और द्रविड़ भाषाओं ने एक–दूसरे से व्याकरणिक और वाक्य संरचनाओं के कुछ तत्व ग्रहण किए हैं।
  - ❖ उदाहरण: बोलचाल में द्रविड़ भाषाओं से आए मुहावरे और ध्वनि पैटर्न का हिंदी में प्रयोग।

2. शब्द–भंडार

शब्द–भंडार: हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं ने सदियों से विभिन्न स्रोतों से शब्द अपनाए हैं।

- **विदेशी स्रोत:**
  - ❖ अंग्रेजी: स्कूल, स्टेशन, टीचर।
  - ❖ फारसी: किताब, सफर, रंग।
  - ❖ अरबी: इल्म, कलम, तारीख।
  - ❖ पुर्तगाली: कमीज, अलमारी, तोलिया।
- **भारतीय भाषाओं से आदान–प्रदान:**
  - ❖ दक्षिण भारतीय भाषाओं से हिंदी में आए शब्द: इडली, डोसा, साड़ी।
  - ❖ हिंदी से द्रविड़ भाषाओं में गए शब्द: बाजार, रास्ता, किताब।
- **क्षेत्रीय प्रभाव:**
  - पश्चिमी भारत में अंग्रेजी से आए शब्द सीधे स्थानीय भाषाओं में और फिर हिंदी में प्रवेश करते हैं।
  - दक्षिण भारत में अंग्रेजी शब्द पहले तमिल/तेलुगु/कन्नड़ में और फिर हिंदी में समाहित होते हैं।

3. आलंकारिक और सांस्कृतिक तत्व

- **साहित्यिक और कलात्मक आदान–प्रदान:**

- ❖ गीत–संगीत, लोककथाएँ, नाटक, गजल, लोक–गीत आदि के माध्यम से भाषाओं ने एक–दूसरे के शैलीगत और भावनात्मक तत्व ग्रहण किए हैं।
- **फिल्म और मीडिया का प्रभाव:**
  - ❖ हिंदी फिल्मों में पंजाबी गीत और संवाद का प्रयोग।
  - ❖ दक्षिण भारतीय फिल्मों में हिंदी गीतों का समावेश।
  - ❖ हिंदी कविताओं और गीतों में तमिल, तेलुगु या कन्नड़ पृष्ठभूमि के विषय और शब्द।
- **सांस्कृतिक एकता का प्रमाण:**
  - ❖ लोक कलाओं के मेलों, राष्ट्रीय नाट्य समारोहों और दूरदर्शन/रेडियो प्रसारणों ने भाषाई और सांस्कृतिक मिश्रण को बढ़ावा दिया।

भाषाई विविधता भारत की सबसे बड़ी सांस्कृतिक शक्तियों में से एक है। देश की विभिन्न भाषाएँ, बोलियाँ और लिपियाँ न केवल संचार का माध्यम हैं, बल्कि वे हमारी परंपराओं, लोकज्ञान, साहित्य और सांस्कृतिक विरासत की संवाहक भी हैं। विभिन्न भाषाओं के बीच समानता, सह–अस्तित्व और पारस्परिक सम्मान की भावना सामाजिक सौहार्द तथा राष्ट्रीय एकता को मजबूत करती है। यही समभाव भारतीय संस्कृति की "एकता में विविधता" की अवधारणा को जीवंत बनाता है और लोकतांत्रिक तथा समावेशी समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच संबंध

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच संबंध अत्यंत गहरे, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध रहे हैं। भारत की सभी भाषाएँ विभिन्न भाषाई परिवारों से संबंधित होने के बावजूद परस्पर संवाद, आदान–प्रदान और सहअस्तित्व की भावना से जुड़ी हुई हैं। हिंदी ने समय–समय पर अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द, शैली, साहित्यिक तत्व और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ ग्रहण की हैं, वहीं हिंदी का प्रभाव भी अनेक क्षेत्रीय भाषाओं पर देखा जा सकता है।

राज्यों–केन्द्र सरकारों की भाषा–नीतियाँ

- 'राष्ट्रभाषा' की अवधारणा संघ–भाषा से ज्यादा राष्ट्रीय संवाद का स्वाभाविक रूप था। हिंदी और अंग्रेजी को केंद्र में रखा गया, लेकिन राज्यों को उनकी क्षेत्रीय भाषाओं (जैसे तमिल, तेलुगु, मलयालम, बंगाली, मराठी) के प्रयोग की आजादी मिली।

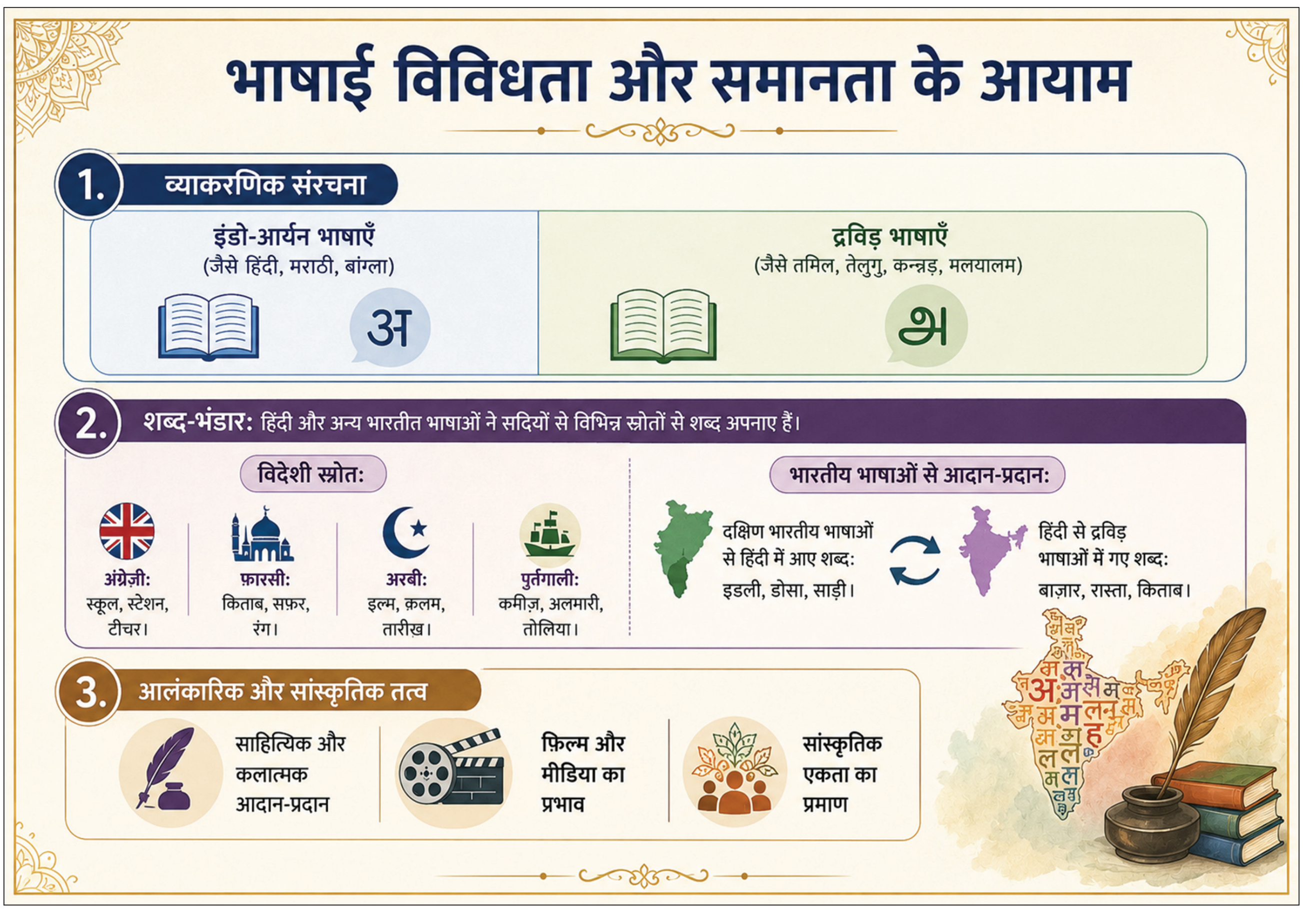

- "त्रिभाषा सूत्र" (three-language formula) ने हिंदी, अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा–नीति में स्थान दिया।

क्षेत्रीय तथा सामाजिक स्तर पर समभाव

- उत्तर और मध्य भारत में हिंदी–बोलने वाले अन्य क्षेत्रों के लोग आसानी से बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषा बोलने वालों से संवाद स्थापित कर पाएं, विशेषकर कारोबारी, सामाजिक या सांस्कृतिक मिलन स्थल पर।
- दक्षिण में हिंदी–बोलने वाले हिंदी–माध्यम स्कूलों या विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी स्थानीय भाषाओं (तमिल/तेलुगु) को सीखते रहे, जिससे समभाव बना।

साहित्यिक और संवादात्मक आदान–प्रदान

- हिंदी और बंगाली (मोहन राकेश, महादेवी वर्मा, निराला) में पूर्वी–पश्चिमी साहित्यिक आदान–प्रदान हुआ।
- मराठी साहित्यकारों जैसे पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे, बाल साने गोंडवले ने हिंदी में अनुवाद, मिश्रित लेखन किया।
- तमिल–हिंदी कविताएँ, लोक–गीत, संवादों में एक–दूसरे का आक्षेप, शब्द–पद्धतियाँ देखने को मिलीं।

हिंदी भाषा, भारतीय भाषाएँ और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020)

हिंदी भारत की संपर्क भाषा के रूप में विविध भाषाई समुदायों को जोड़ने का कार्य करती है। यह न केवल उत्तर भारत में बल्कि देश के अन्य भागों में भी शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, पत्रकारिता, मनोरंजन और डिजिटल माध्यमों की एक प्रमुख भाषा है। हिंदी की विशेषता इसकी लचीलापन और अन्य भाषाओं से शब्द व अभिव्यक्तियाँ ग्रहण करने की क्षमता है, जिसके कारण यह निरंतर विकसित होती रही है।

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है, जिनमें प्रत्येक का अपना सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व है। इसके अतिरिक्त, भारत में सैकड़ों उपभाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं, जो क्षेत्रीय पहचान, लोककथाओं, संगीत और परंपराओं का जीवंत भंडार हैं। हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं के बीच परस्पर समभाव से ही भाषाई विविधता का संरक्षण संभव है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) इस भाषाई धरोहर को सहेजने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने पर विशेष बल देती है। नीति के अनुसार, प्रारंभिक कक्षाओं में शिक्षा मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में दी जानी चाहिए, क्योंकि यह बच्चों के संज्ञानात्मक विकास, रचनात्मकता और आत्मविश्वास को बढ़ाती है। अनुसंधान से स्पष्ट है कि प्रारंभिक वर्षों में मातृभाषा में शिक्षा लेने वाले छात्र कठिन विषयों को भी

बेहतर समझ पाते हैं और जीवनभर सीखने की क्षमता विकसित करते हैं।

नीति में त्रिभाषा सूत्र का प्रावधान भी है, जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों को हिंदी, अंग्रेजी और एक अन्य क्षेत्रीय भाषा भारतीय भाषा सीखने का अवसर मिलता है। यह न केवल भाषाई दक्षता को बढ़ाता है बल्कि विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच आपसी सम्मान, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और राष्ट्रीय एकता को भी मजबूत करता है।

डिजिटल युग में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है। ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, मोबाइल एप्स और ऑनलाइन कोर्स अब क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध हैं, जिससे शिक्षा का दायरा बढ़ रहा है। NEP 2020 भी इस बात पर जोर देती है कि शैक्षिक सामग्री अधिक से अधिक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराई जाए, ताकि हर विद्यार्थी तक ज्ञान समान रूप से पहुँच सके।

इस प्रकार, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ मिलकर न केवल राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण करती हैं, बल्कि NEP 2020 के उद्देश्यों–सर्वांगीण शिक्षा, स्थानीय से वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा और सांस्कृतिक गौरव–को भी साकार करती हैं। भाषाओं के बीच यह परस्पर समभाव ही भारत की भाषाई लोकतंत्र की सबसे बड़ी ताकत है।

डिजिटल युग और भाषाई समभाव

डिजिटल युग में संचार, शिक्षा, व्यापार और मनोरंजन के साधनों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जैसी तकनीकों ने भाषाई दुनिया के स्वरूप को भी बदल दिया है। पहले जहाँ ज्ञान और सूचना तक पहुँच मुख्यतः अंग्रेजी जैसी कुछ चुनिंदा भाषाओं में ही संभव थी, वहीं आज तकनीक ने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को वैश्विक मंच पर स्थापित करने का अवसर दिया है।

डिजिटल माध्यमों ने भाषाई समभाव को बढ़ावा दिया है। अब हिंदी, तमिल, बांग्ला, मराठी, पंजाबी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम और अन्य भाषाओं में वेबसाइट, ब्लॉग, ई–बुक्स, वीडियो, पॉडकास्ट और ऑनलाइन कोर्स सहज उपलब्ध हैं। गूगल ट्रांसलेट, AI–आधारित अनुवाद टूल्स और वॉयस रिकग्निशन तकनीक ने भाषाओं के बीच संवाद को आसान बना दिया है, जिससे एक भाषाई समुदाय दूसरे समुदाय की संस्कृति और ज्ञान से जुड़ पा रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में, NEP 2020 के अनुरूप, डिजिटल कंटेंट अब मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में भी विकसित हो रहा है। डिजिटल पुस्तकालय, वर्चुअल क्लासरूम और MOOCs (Massive Open Online Courses) में भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दिए जाने से विद्यार्थी अपने सहज भाषाई परिवेश में सीख सकते हैं। यह न केवल सीखने की गुणवत्ता को बढ़ाता है बल्कि भाषाई विविधता को भी सशक्त करता है।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर भी भाषाई समभाव स्पष्ट दिखाई देता है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब और ट्विटर (X) पर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के उपयोगकर्ताओं की संख्या लगातार बढ़ रही है, जिससे स्थानीय विचार, रचनात्मकता और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति वैश्विक दर्शकों तक पहुँच रही है।

इस प्रकार, डिजिटल युग में तकनीक न केवल भाषाओं के बीच की दूरी कम कर रही है, बल्कि भाषाई लोकतंत्र को भी सशक्त बना रही है। यदि इस अवसर का सही उपयोग किया जाए, तो हिंदी और भारतीय भाषाएँ मिलकर न केवल भारत में बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सांस्कृतिक और बौद्धिक नेतृत्व प्रदान कर सकती हैं।

केस स्टडी

1. डिजिटल शिक्षा – DIKSHA प्लेटफॉर्म (राष्ट्रीय डिजिटल अवसंरचना)

DIKSHA (Digital Infrastructure for Knowledge Sharing) केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा विकसित इंटरफेस है जो स्कूल स्तर की शिक्षा के लिए ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज (OER), शिक्षकों का प्रशिक्षण और इंटरऑपरेबल डिजिटल सेवाएं अंग्रेजी और हिंदी, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि सहित विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध कराता है (18 भाषाएँ)। इसने कोविड–19 की चुनौतियों में ऑनलाइन शिक्षा को मातृभाषाओं में पहुंचाने का मार्ग प्रशस्त किया। इस पहल ने डिजिटल शिक्षा को क्षेत्रीय भाषाओं में सुलभ बनाकर भाषा–समभाव को मजबूत किया।

2. **ई–न्याय और बहुभाषीय ऐप–जीम e-Courts Services MobileApp**

सुप्रीम कोर्ट की ई–कमिटी ने e-Courts Services MobileApp को 14 भाषाओं–जैसे हिंदी, असमिया, बंगाली,

गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलुगु में लांच किया। इससे न्याय–प्रक्रियाएं उन नागरिकों के लिए अधिक समावेशी बन गईं जो हिंदी या अंग्रेजी में सहज नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, SUVAS नामक AI आधारित अनुवाद उपकरण ने सुप्रीम कोर्ट के आदेशों और निर्णयों को क्षेत्रीय भाषाओं में प्रदान किया–2023 तक लगभग 31,000 फैसलों का अनुवाद किया गया।

3. **क्षेत्रीय न्यायालय पहल – मद्रास हाई कोर्ट और अन्य**

मद्रास हाई कोर्ट ने e-Courts पोर्टल को तमिल में अनुवादित किया और "e-finder" सुविधा जोड़कर उपयोगकर्ताओं को अंग्रेजी और तमिल दोनों में केस खोजने की सुविधा दी। यह पहल न्याय तक पहुंच में भाषाई बाधा को कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

4. **ई–कॉमर्स में भाषा–उन्मुख डिजाइन – अमेजॉन और फ्लिपकार्ट**

अमेजॉन इंडिया ने हिंदी इंटरफेस के साथ एक पायलट प्रोजेक्ट शुरू किया है, जिससे गैर–अंग्रेजी भाषी उपयोगकर्ताओं को खरीदारी अधिक सहज लगी। अमेजॉन ने पाया कि "ग्राहकों के विश्वास में वृद्धि होती है जब वे अपनी भाषा में इंटरफेस देखते हैं।"

फ्लिपकार्ट ने भी तमिल, तेलुगु, कन्नड़ के इंटरफेस पेश किए और 5.4 मिलियन शब्दों का अनुवाद किया। इन्होंने देखा कि क्षेत्रीय भाषा में निहित उत्पाद विवरण ने उपयोगकर्ता अनुभव को काफी बेहतर बनाया।

5. **ग्राम–स्तर पर डिजिटल उद्यमिता – eSamudaay**

उडुपी (कर्नाटक) की सामाजिक–उद्यमी पहल eSamudaay ने "business inA box" सॉफ्टवेयर विकसित किया, जिससे छोटे व्यवसायी (जैसे चायवाले, किराना दुकानदार) अपनी स्थानीय भाषा में ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म चला सकें। यह मॉडल स्थानीय डिजिटल नियंत्रण (data sovereignty) और भाषा–समर्थन के साथ कार्य करता है। इसने डिजिटल समावेशिता और रोजगार सृजन दोनों को बढ़ावा दिया, जो भाषायी लोकतंत्र को आगे बढ़ाता है।

वास्तविक–दृष्टांत

1. **दिल्ली और मुंबई जैसे बहुभाषीय महानगरों में भाषाई समभाव**

भारत के सबसे बड़े महानगर, दिल्ली और मुंबई न केवल आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र हैं बल्कि भाषाई विविधता के जीवंत उदाहरण भी हैं। यहाँ हिंदी के साथ–साथ पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठी, तमिल और अन्य भाषाओं में संवाद आम है। बाजारों, सार्वजनिक परिवहन, कार्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों में बहुभाषीय संवाद से रोजमर्रा की जिंदगी में भाषाई समभाव स्वाभाविक रूप से विकसित होता है। यह स्थिति, संविधान के अनुच्छेद 343 एवं 351 के अंतर्गत 'राष्ट्रीय एकता में भाषाई विविधता' के सिद्धांत को मूर्त रूप देती है।

2. **शैक्षणिक मंचों और सम्मेलनों में बहुभाषीय अभिव्यक्ति**– भारतीय भाषा सम्मेलन (Indian Languages Conference) और भारतीय लोककला–सम्मेलन जैसे आयोजनों में प्रतिभागी हिंदी, अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं में कविता, कहानी, निबंध और व्याख्यान प्रस्तुत करते हैं। यह न केवल भाषाई विविधता का उत्सव है, बल्कि विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक और सांस्कृतिक मूल्यों को साझा करने का एक मंच भी है। बहुभाषीय प्रस्तुति से प्रतिभागियों में अंतरसांस्कृतिक संवेदनशीलता और भाषाई सम्मान की भावना विकसित होती है।

3. **साहित्यिक अनुवाद और सांस्कृतिक आदान–प्रदान** – पंत साहित्य–पीठ और अन्य संस्थाओं द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का अनुवाद कार्य किया जाता है–जैसे तमिल कविता का हिंदी में अनुवाद, मराठी उपन्यास का अंग्रेजी या हिंदी संस्करण और बांग्ला साहित्य का गुजराती में रूपांतरण। ये अनुवाद न केवल साहित्यिक धरोहर को नए पाठकों तक पहुँचाते हैं बल्कि विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच सांस्कृतिक सेतु का निर्माण भी करते हैं।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में समभाव के उपाय–

भारत जैसे बहुभाषीय देश में भाषा–नीति का उद्देश्य केवल प्रशासनिक सुविधा प्रदान करना नहीं, बल्कि विभिन्न भाषाओं के बीच संतुलन, सम्मान और समभाव स्थापित करना भी है। भाषाई समभाव राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक संरक्षण और लोकतांत्रिक मूल्यों की मजबूती के लिए अत्यंत आवश्यक है। भाषाई समभाव के लिए निम्नलिखित उपायों पर ठोस ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है–

- **त्रिभाषा–सूत्र का पालन** – राष्ट्रीय एकता को बल देने के लिए सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को स्कूली शिक्षा में त्रिभाषा–सूत्र को अपनाना चाहिए।

- **डिजिटल सामग्री एवं साहित्य का प्रसार** – क्षेत्रीय भाषाओं में भी इंटरनेट, ऐप, पुस्तकालयों में उपलब्धता सुनिश्चित करें।
- **मोबाइल और सरकारी सेवाओं में बहुभाषीय समर्थन** – हिंदी सहित सभी प्रमुख भाषाओं में नागरिकों को सरकारी योजानओं एवं सेवाओं के संबंध में जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
- **साहित्यिक अनुवाद, पुरस्कार और मंच** – साहित्य और कलाओं के आदान–प्रदान से सम्मानित बहुसांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- **शिक्षा–सामग्री का स्थानीयीकरण** – स्कूलों में क्षेत्रीय भाषा से हिंदी/अंग्रेजी तक पहुँच आसान बनाने के लिए पाठयक्रम स्तर पर सहयोग बढ़ाएँ।

शिक्षण और संवाद में समभाव

शिक्षण और संवाद में समभाव केवल शैक्षिक आवश्यकता नहीं, बल्कि मानवीय और सामाजिक मूल्य भी है। यह विद्यार्थियों को संवेदनशील, सहिष्णु और जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करता है।

स्कूल–स्तर पर भाषा

प्राथमिक शिक्षा क्षेत्रीय भाषा में होनी चाहिए (मातृभाषा), साथ ही अन्य दो भाषाओं (हिंदी–अंग्रेजी) का भी प्रारंभिक एक्सपोजर हो। उदाहरण के लिए तमिलनाडु में अंग्रेजी और तमिल शिक्षण प्राथमिक है, पर हिंदी का विकल्प भी बनाया जा सकता है और तदनुसार अन्य राज्यों में भी यहीं प्रकिया अपनाई जा सकती है।

विश्वविद्यालय और शोध–लेखन

विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषा साहित्य, काव्य, नाटक की पढ़ाई, शोध और प्रकाशन को महत्व देने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालय स्तर पर अनुवाद और भाषाई अनुसंधान पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

मीडिया और संवाद

समाचार चैनल, रेडियो, ऑनलाइन पोर्टल्स में अधिकाधिक बहुभाषीय कार्यक्रम और संवाद कार्यक्रम प्रसारित किए जाने चाहिए, जिससे भाषाई समभाव को प्रोत्साहन मिलेगा। राष्ट्रीय ब्रॉडकास्टर (जैसे All India Radio, Doordarshan) कई दशकों से बहुभाषीय सेवा प्रदान कर रहे हैं, इसे डिजिटल युग में और सशक्त किए जाना चाहिए।

भाषाई समभाव का सामाजिक एवं सांस्कृतिक लाभ

"समभाव" समाज में समानता, सम्मान, सहिष्णुता और सौहार्द की भावना को विकसित करता है। यह सामाजिक एकता और सांस्कृतिक समृद्धि का महत्वपूर्ण आधार है।

1. **सामाजिक एकता** – बहुभाषीय ज्ञान और एक–दूसरे की भाषा के प्रति सम्मान से समाज में पारस्परिक समझ और सौहार्द बढ़ता है। यह राष्ट्रीय बंधुता को मजबूत करता है और जातीय, क्षेत्रीय या भाषाई भेदभाव को कम करता है।
2. **आर्थिक सशक्तिकरण** – बहु–भाषी व्यक्तियों को रोजगार, व्यापार, पर्यटन, और सरकारी सेवाओं में अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। इससे अंतरराष्ट्रीय और अंतरराज्यीय स्तर पर आर्थिक सहयोग व विकास को बढ़ावा मिलता है।
3. **सांस्कृतिक समृद्धि** – विविध भाषाओं के आदान–प्रदान से संगीत, नाटक, फिल्म, साहित्य, लोककला और शैली में नए प्रयोग और रचनात्मकता को बल मिलता है। यह सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित और विस्तारित करने में सहायक होता है।
4. **मनोवैज्ञानिक लाभ** – पारस्परिक संवाद और सांस्कृतिक खुलेपन से व्यक्ति का आत्मविश्वास बढ़ता है। बहुभाषी वातावरण में रहकर व्यक्ति में लचीलापन, सहिष्णुता और सामाजिक जुड़ाव की भावना प्रबल होती है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

हिंदी और भारतीय भाषाओं में परस्पर समभाव केवल संवैधानिक दायित्व नहीं, बल्कि भारतीयता का सार है। यह हमारी सामाजिक एकता, सांस्कृतिक समृद्धि और लोकतांत्रिक परंपरा का मूल आधार है। भाषाओं के बीच सम्मान और सहयोग से ही भारत अपनी बहुभाषीय पहचान को संरक्षित रखते हुए आधुनिकता की ओर बढ़ सकता है। भारत में भाषाओं का मानवीय और सांस्कृतिक आदान–प्रदान, समभाव, सहअस्तित्व – ये सब भाषा नीति, समाज–संस्कृति, शिक्षा, और संवाद की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। हिंदी, जबकि संघ–भाषा या राष्ट्रीय संवाद की भाषा है, पर उससे बड़ा हित यह है कि अन्य सभी भारतीय भाषाएँ भी समान सम्मान, संसाधन, अवसर पाएं। इसके लिए आवश्यक है:

- नीति–निर्माण के दौरान बहुभाषीयता को प्राथमिकता दें।

- शिक्षा प्रणाली में तीन–भाषा सूत्र को सशक्त और व्यवहारिक रूप से लागू करें।
- डिजिटल, साहित्यिक, मीडिया क्षेत्र में सभी प्रमुख भाषाओं को समान रूप से समर्थन दें।
- सामाजिक संवाद और सांस्कृतिक आदान–प्रदान को मंच, पुरस्कार और अवसर प्रदान करें।

इस तरह, "हिंदी और भारतीय भाषाओं में परस्पर समभाव" के आदर्श को मात्र भाषाई दृष्टि से नहीं, बल्कि एक सामाजिक, सांस्कृतिक, लोकतांत्रिक और राष्ट्र–भावनात्मक दृष्टिकोण से अपनाना बेहद आवश्यक है। भारत की विविधता उसकी शक्ति है और भाषाएं इस शक्ति का आधार।

संदर्भ सूची:

- अग्रवाल, जे. सी. (2019), आधुनिक शिक्षा का विकास एवं नियोजन (13वाँ संस्करण), विकास पब्लिशिंग हाउस।
- अन्नामलाई, ई. (2001), भारत में बहुभाषिकता का प्रबंधनः राजनीतिक एवं भाषाई अभिव्यक्तियाँ, सेज पब्लिकेशन्स।
- भारत सरकार, (1950), भारतीय संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय। https://legislative.gov.in/constitution-of-india/
- शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
- रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त, भारत (2011), भारत की जनगणना 2011ः भाषा संबंधी आँकड़े, भारत सरकार। https://censusindia.gov.in
- साहित्य अकादेमी (2021), भारतीय साहित्य और बहुभाषिक परंपराएँ, साहित्य अकादेमी।
- स्कुटनैब–कांगस, टी. (2000), शिक्षा में भाषाई विविधता और मानवाधिकार, लॉरेंस अर्लबाम एसोसिएट्स।
- यूनेस्को (2003), बहुभाषीय विश्व में शिक्षा, यूनेस्को पब्लिशिंग। https://unesdoc.unesco.org
- यादव, आर. ए. (2018), हिंदी भाषा और भारतीय भाषाएँ, राजकमल प्रकाशन।
- पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, (2013–2020), पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (खंड 1–50), ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- क्रिस्टल, डेविड (2010), भाषा का कैम्ब्रिज विश्वकोश (तृतीय संस्करण), कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- कुमार, कृष्ण (2005), शिक्षा का राजनीतिक एजेंडाः औपनिवेशिक एवं राष्ट्रवादी विचारों का अध्ययन, सेज पब्लिकेशन्स।
- मोहंती, ए. के. (2019), बहुभाषिक वास्तविकताः भाषाओं के साथ जीवन, मल्टीलिंगुअल मैटर्स।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT), (2023), बहुभाषिकता एवं शिक्षा पर स्थिति पत्र, एनसीईआरटी।

ISSN No. : 0970-9398

तमिल और हिंदी का भाषिक अंतर्संबंध

– प्रो. पी. राजरत्नम
आचार्य, हिंदी विभाग
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय

सभी भाषाओं की अपनी विशेषता होती है और यह विशेषता ही भाषा को एक दूसरे से अलग पहचान प्रदान करती है। मनुष्य दूसरी भाषा सीखने के लिए पहले से सीखी हुई भाषा का सहारा लेता है। एक दूसरी भाषा सीखने में चुनौतियाँ, भाषा सीखने वाले की मातृभाषा के बीच के अंतर से उत्पन्न होती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास में भाषाई भिन्नता केवल प्रशासनिक सीमाओं का रेखांकन नहीं रहा है, बल्कि यह एक गहरी, जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया रही है जिसमें भाषा, संस्कृति, राजनीति और सामाजिक न्याय के तार आपस में गुंथे हुए हैं। दक्षिण भारत में तमिलनाडु का गठन भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की एक वैश्विक मिसाल पेश करता है, जो महज एक प्रशासनिक निर्णय नहीं था, बल्कि एक गहन सांस्कृतिक पुनर्जागरण और सामाजिक–राजनीतिक विद्रोह का प्रतिफल था। भाषाई आधार पर तमिलनाडु राज्य का पुर्नगठन 1 नवंबर 1956 को हुआ था (राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत)। उस समय इसे 'मद्रास' राज्य के नाम से जाना जाता था। बाद में 14 जनवरी, 1969 को मद्रास राज्य का अधिकारिक नाम बदलकर 'तमिलनाडु' कर दिया गया था। जो भाषाई क्षेत्र के निर्माण की प्रक्रिया का काम किए था। तमिल भाषा ने न केवल एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र की चेतना को आकार दिया, बल्कि उसे एक ऐसे राजनीतिक आधार में बदल दिया जिसने भारतीय संघवाद की प्रकृति को स्थायी रूप से प्रभावित किया है।

तमिल और हिंदी भारत की दो प्रमुख भाषाएँ हैं, जो दो अलग–अलग भाषा परिवारों द्रविड़ और भारोपीय से आती हैं। व्याकरणिक और लिपिगत अंतर के बावजूद, ये सदियों से सांस्कृतिक आदान–प्रदान, साझी शब्दावली और समान दार्शनिक विचारों के माध्यम से एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। दोनों भाषाओं के बीच सबसे बड़ा अंतर्संबंध संस्कृत है। तमिल जहाँ एक प्राचीन द्रविड़ भाषा है, वहीं हिंदी संस्कृत से विकसित हुई है। तमिल में संस्कृत के कई 'तत्सम' और 'तद्भव' शब्द शामिल हैं। इसी प्रकार हिंदी के बहुत से शब्द तमिल से भी प्रभावित हैं। आनुवंशिक रूप से अलग होने के बावजूद इनकी वाक्य संरचना काफी हद तक मेल खाती है। दोनों ही भाषाओं में क्रिया आमतौर पर वाक्य के अंत में आती है।

प्राचीन काल से ही उत्तर और दक्षिण के संतों, कवियों और दार्शनिकों ने दोनों भाषाओं के विचारों का आदान–प्रदान किया है। रामानुजाचार्य, शंकराचार्य और वल्लभाचार्य जैसे संतों के कार्य दोनों भाषाओं में समाहित हैं। दोनों भाषाओं के बीच शब्दों का आदान–प्रदान सदियों से हो रहा है। इसके अलावा, भक्ति आंदोलन के दौरान दक्षिण भारत के संतों आलवार और नायनमार के विचारों ने उत्तर भारत के साहित्य और हिंदी को गहराई से प्रभावित किया। तमिल के महान रचनाकार तिरुवल्लुवर की 'तिरुक्कुरल' जैसे महाकाव्यों के संदेश हिंदी भाषी क्षेत्रों में भी आदर के साथ पढ़े जाते हैं। हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है जो बाईं से दाईं ओर चलती है, जबकि तमिल की अपनी प्राचीन तमिल लिपि है। हालांकि, दोनों की वर्णमाला का वैज्ञानिक आधार और ध्वनियों का वर्गीकरण बहुत समान है।

दोनों भाषाओं के समृद्ध साहित्य का एक–दूसरे में अनुवाद हुआ है। वर्तमान समय में मीडिया, मनोरंजन और तकनीक के कारण दोनों भाषाओं की दूरियाँ और कम हुई हैं। तमिल सिनेमा की फिल्मों की हिंदी डबिंग और रीमेक ने हिंदी भाषी दर्शकों के बीच तमिल संस्कृति और शब्दों की लोकप्रियता बढ़ाई है। राष्ट्रीय स्तर पर भाषा शिक्षण, तकनीकी अनुवाद और प्रशासनिक कार्यों में हिंदी और तमिल के शब्दों को सरल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि दोनों संस्कृतियों के लोग एक–दूसरे को बेहतर ढंग से समझ सकें।

अगर तमिल और संस्कृत भाषा में संबंध का प्रश्न हो तो संस्कृत और तमिल में भी बहुत ही गहरा अंतर्संबंध है। प्राचीन तमिल ग्रंथों में विशेष रूप से तमिल काव्य में बहुत से संस्कृत के शब्द प्रयुक्त किये गए है। यहाँ तक कि तमिल की बोलचाल की भाषा तो संस्कृत–शब्दों से भरी पड़ी है। कम्ब रामायण में भी अपभ्रंश रूप से अनेक संस्कृत शब्द मिल जायेंगे। तमिल, संस्कृत और हिंदी के कुछ शब्दों में समानता–

ISSN No. : 0970-9398

तमिल	संस्कृत	हिंदी
जलम्	जलम्	जल
ग्रामम्	ग्राम	गाँव
दूरम्	दूरम्	दूर
वार्ते	वार्ता	बात
मात्रम्	मात्रम्	मात्र
शीग्रम	शीघ्रम	शीघ्र
समाचारम	समाचारः	समाचार

इसी प्रकार से तमिल के प्रामाणिक कोश को देखने से भी यही ज्ञात होता है कि तमिल भाषा में संस्कृत के अनेक शब्द विद्यमान है। तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध 'तिरुक्कुरल' के हिंदी संस्करण की भूमिका में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने लिखा है– 'इस पुस्तक को पढ़कर उत्तर भारतवासी जानेंगे कि उत्तरी सभ्यता और संस्कृति का तमिल जाति से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध और तादात्म्य हैं। इस ग्रन्थ में अनेक वाक्य वेदों के उपदेश का स्पष्ट अनुवाद प्रतीत होते हैं। तमिल के प्रसिद्ध कवि भारतियार के काव्य में भी संस्कृत शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। तमिलनाडु के प्रसिद्ध संगम काल के साहित्य पर भी संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों का प्रभाव देखने को मिलता है।

तमिल भाषा में एक शब्द है सहोदर, जिसका अर्थ होता है भाई। हिंदी में भी इस शब्द का अर्थ भाई ही होता है। यह शब्द आज भी तमिल संबोधन में ज्यादा प्रयोग होता है और हिंदी में भी इसका प्रयोग संबोधन और साहित्यिक हिंदी में होता है। सिनेमा के क्षेत्र में दोनों भाषाओं के बीच पारस्परिक संबंध दिखाई देते हैं। अतीत की बातों को परे रखते हुए यदि आज हम देखें तो हिंदी और तमिल के बीच यह सौहार्द खूब बढ़ा है। आज तमिल और हिंदी भाषा की फिल्में एक दूसरी भाषा में डब की जा रही हैं। यही नहीं तमिल की मूल फिल्में हिंदी में भी बन रही हैं। हिंदी सीरियल्स भी तमिल में डब होकर खूब लोकप्रिय हो रहे हैं। तमिल साहित्य प्रचुर मात्रा में अनुवाद के माध्यम से हिंदी में आ रहा है और हिंदी की चर्चित पुस्तकें भी तमिल में अनूदित हो रही हैं।

तमिल और हिंदी का भाषिक अंतर्संबंध पर बात करते हुए दोनों भाषाओं में भिन्नता पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। तमिल की अपनी जटिल व्याकरणिक संरचना है और हिंदी के व्याकरण नियमों से इसका तालमेल बिठाना एक बड़ी चुनौती है। हिंदी के व्याकरणिक नियमों का तमिल में अनुवाद करते समय कई बार उनके विपरीत नियम मिलते हैं, जिससे कठिनाई होती है। तमिल एक विभक्ति भाषा है, जिसमें शब्दों को बदलने के लिए प्रत्ययों और उपसर्गों का व्यापक रूप से उपयोग होता है, जबकि हिन्दी में वाक्य निर्माण की संरचना भिन्न है। तमिल भाषा में नपुंसक लिंग के लिए एकवचन और बहुवचन रूप में क्रियाओं में परिवर्तन नहीं होता, जबकि हिन्दी में क्रिया और सर्वनाम में लिंग और वचन का भेद स्पष्ट होता है। तमिल वाक्य संरचना में कर्ता, क्रिया और कर्म का एक निश्चित स्थान होता है, जो हिन्दी के वाक्य क्रम से अलग हो सकता है। तमिल के एक शब्द का हिंदी में अर्थ भिन्न हो सकता है और दोनों भाषाओं में लिंग भेद भी हो सकता है, जिससे सही शब्द चुनना कठिन होता है।

तमिल और हिंदी में सांस्कृतिक भिन्नताएँ हैं। तमिल भाषा को प्राचीन, द्रविड़ियन पहचान और संस्कृति का प्रतीक माना जाता है। तमिल और हिंदी दोनों की संस्कृति, रीति–रिवाज और सामाजिक संदर्भ अलग–अलग हैं, जिसके कारण सांस्कृतिक बारीकियों को समझना और व्यक्त करना मुश्किल हो जाता है।

कुछ तमिल शब्दों के लिए हिन्दी में सटीक और समान अर्थ वाले शब्द ढूँढना मुश्किल हो सकता है। कुछ तमिल शब्द और वाक्यांशों का हिंदी में सीधा और सटीक शब्द होना मुश्किल है। उदाहरण के रूप में सुब्रमण्य भारती की कविताओं में उद्धृत शब्द इस प्रकार हैं– नाचेंगे और पल्लु गाएँगे। तमिल में पल्लु शब्द का प्रयोग 'लोकगीत' के रूप में होता है, मगर पल्लु शब्द का प्रयोग हिंदी में आँचल के लिए होता है। दूसरे उदाहरण के लिए तमिल में 'पशु' का अर्थ 'गाय' है, हिन्दी की तरह 'जानवर' नहीं। इसलिए वहां 'गोवध' को 'पशुवध' कहते हैं। इन तथ्यों से अनभिज्ञ व्यक्ति 'पशुवध' का अर्थ 'जानवरों का वध' समझ सकता है। हिन्दी में प्रयुक्त होने पर यह पद 'पशुवध' का वह अर्थ नहीं दे पाएगा जो वह तमिल में देता है।

तमिल भाषा में एक ही शब्द भिन्न–भिन्न स्थलों पर भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के रूप में हम हिन्दी भाषा में प्रयोग होने वाले पद 'पानी' के लिए तमिल में होने वाले रूपिम पदों के प्रयोग में भिन्नताओं को स्पष्ट देख सकते हैं– जल– पीने का पानी, तण्णीर – ठंडा पानी, वेन्नीर– गर्म पानी, नीर– हाथ पैर धोने का पानी, तीर्थ– पवित्र जल जो मंदिरों में दिए जाते हैं, तण्णी पोडुवल– व्यंग्य में शराब पीना। इसी प्रकार हिन्दी भाषा में संज्ञा के अनुसार विशेषण में परिवर्तन होता है परंतु तमिल भाषा में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं होता है। उदाहरण– सीता अच्छी लड़की है– सीता नल्ल पैण। राम अच्छा

लड़का है— राम नल्ल पैथन। इसीलिए अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा में शब्दों के पर्याय रूप को प्रयोग करने में काफी सतर्कता बरतनी चाहिए।

तमिल में महाप्राण व्यंजनों का अभाव है, लेकिन हिंदी में उच्चारण और लेखन पर इसका प्रभाव पड़ता है, जिससे ध्वनि—शब्दावली का सटीक मिलान कठिन हो जाता है। हिन्दी में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग वाक्य के अर्थ और प्रभाव पर गहरा असर डालता है, जबकि तमिल में ऐसा भेद अक्सर नहीं होता है। हिन्दी भाषा में दो ही लिंग है— पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। जिस प्रकार हिन्दी में निर्जीव वस्तुओं के लिए भी पुल्लिंग या स्त्रीलिंग का ही प्रयोग होता है वैसे तमिल भाषा में नहीं होता है। इसके लिए हिन्दी व्याकरण में कई नियम है उन नियमों में भी कुछ अपवाद उपस्थित हैं, जैसे— 'खेत' पुल्लिंग है जबकि 'जमीन' स्त्रीलिंग और 'ग्रंथ' पुल्लिंग है और 'पुस्तक' स्त्रीलिंग परंतु तमिल में संस्कृत भाषा की तरह तीन लिंग होते हैं— 'आणपाल्'—'पुल्लिंग', 'पेणपाल्'—'स्त्रीलिंग' और 'पलविनपाल्'—'नपुंसकलिंग'। इसलिए तमिल से हिन्दी अथवा हिन्दी से तमिल भाषा में अनुवाद करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। कभी—कभी तमिल भाषा के शब्दों के लिए सटीक पर्यायवाची शब्द ढूंढना काफी नहीं होता है। उन शब्दों का लिंग निर्धारण भी आवश्यक होता है। जैसे तमिल में 'कडिदम्' शब्द के लिए हिन्दी में दो पर्यायवाची शब्द 'पत्र' और 'चिट्ठी' हैं। इनमें पहला शब्द 'पुल्लिंग' है और दूसरा 'स्त्रीलिंग'। हिन्दी भाषा के वाक्यों में इन शब्दों का प्रभाव पूरे वाक्य में दिखाई देता है।

तमिल से हिंदी में अनुवाद करते समय कई प्रकार की चुनौतियाँ सामने आती हैं, जिनमें शाब्दिक अनुवाद की कठिनाइयाँ, सांस्कृतिक भिन्नता, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, वाक्यांशों का अनुवाद शामिल है। इसके अलावा तमिल और हिंदी की वाक्य संरचना और व्याकरण में भी अंतर होता है। तमिल और हिंदी की वाक्य संरचना और व्याकरण में अंतर के कारण वाक्यों को सही ढंग से बनाने और अर्थ को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में समस्या होती है। तमिल भाषा का प्रभाव विशेष रूप से शास्त्रीय तमिल, बोली जाने वाली तमिल की शब्दावली और रूपों में परिलक्षित होता है।

संदर्भ सूचीः

1. डॉ. एन. चंद्रकांतः तमिल और हिंदी का भक्ति साहित्य, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नै, 1971
2. पा. बंगड़ाचारीः भारत के बारह आलवर, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नै, 1989
3. आचार्य रामचंद्र शुक्लः हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971
4. एम. जी.एस नारायणः भक्ति मोवमेंट इन साउथ इंडिया, संपा. डी.एन. झा, फ्यूडल फार्मेशन इन अर्ली इंडिया, नई दिल्ली, 1987

ISSN No. : 0970-9398

हिंदी और असमिया भाषा में समभाव

– डॉ. बिंद कुमार चौहान
बंगाईगाँव विश्वविद्यालय, बंगाईगाँव

भारत की भाषिक विविधता विश्वभर में अद्वितीय मानी जाती है। यहाँ सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ विद्यमान हैं, जो न केवल संवाद का माध्यम हैं बल्कि संस्कृतियों, परंपराओं और इतिहास की संवाहक भी हैं। हिंदी और असमिया भाषा भले ही भौगोलिक रूप से एक–दूसरे से दूर विकसित हुई हैं, लेकिन इनमें कई स्तरों पर समभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। चाहे वह व्याकरण हो, शब्दावली हो, साहित्यिक रचना हो अथवा सामाजिक भूमिका– दोनों भाषाएँ भारत की भाषिक एवं सांस्कृतिक एकता की मिसाल पेश करती हैं।

भाषिक परिवार और उद्गम

हिंदी और असमिया दोनों ही भाषाएँ इंडो–आर्यन (भारोपीय–आर्य) भाषा परिवार की सदस्य हैं। हिंदी जहाँ मुख्यतः भारत के उत्तर और मध्य भागों में बोली जाती है, वहीं असमिया भाषा भारत के उत्तर–पूर्वी राज्य असम की प्रमुख भाषा है। दोनों भाषाओं की जड़ें संस्कृत में हैं, जो उन्हें एक समान व्याकरणिक ढांचे, मूल शब्दावली और वाक्य संरचना प्रदान करती हैं।

उदाहरणस्वरूप – हिंदी में जल, अग्नि, वायु और असमिया में भी जल, अग्नि या अगनि, वायु ही कहा जाता है। इन शब्दों में से कुछ में जलवायु और भौगोलिक भिन्नता के कारण उच्चारण भिन्नता अवश्य होती है, परंतु मूलतः दोनों की ध्वनियाँ समान हैं। दोनों भाषाओं के भाषिक समभाव को निम्न रूप में देख सकते हैं–

लिपि और लेखन प्रणाली

हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है जबकि असमिया लिपि का विकास बंगला–असमिया लिपि से हुआ है। हालांकि ये दोनों लिपियाँ एक ही ब्राह्मी लिपि पर आधारित हैं और उनमें कई अक्षर एक समान स्वरूप रखते हैं। उदाहरण के लिए – हिंदी (क), असमिया (ক) और हिंदी (म), असमिया (ম) आंशिक अंतर के साथ दोनों भाषाओं में एक से ही दिखते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं में लेखन पद्धति भी ऐतिहासिक दृष्टि से परस्पर जुड़ी हुई हैं।

ध्वन्यात्मक समभाव

हिंदी और असमिया दोनों में स्वर और व्यंजन की संख्या लगभग समान है। ध्वनियों की अभिव्यक्ति में थोड़ी बहुत क्षेत्रीय विविधता अवश्य है, लेकिन उनकी मूल प्रकृति समान है। असमिया भाषा में कुछ विशेष ध्वनियाँ पाई जाती हैं, जैसे ক্ষ, परंतु इसकी संपूर्ण संरचना हिंदी की देवनागरी (क्ष)से काफी हद तक मेल खाती है।

व्याकरणिक समानता

दोनों भाषाओं में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि के प्रयोग के नियम तुलनीय हैं। उदाहरणस्वरूप–

हिंदी	असमिया
वह	সি (सी) (उच्चारण–ही)
बाजार	বজাৰ (बजार)
गया	গল (गल) (उच्चारण–गोल)

इस प्रकार भले ही शब्द भिन्न हों, लेकिन वाक्य विन्यास, क्रिया पद और काल–संकेतक प्रणाली में समभाव स्पष्ट है।

सांस्कृतिक और साहित्यिक समभाव

हिंदी और असमिया दोनों भाषाएँ समृद्ध साहित्यिक परंपराओं की वाहक हैं। इन भाषाओं के साहित्य ने सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक समरसता को सदैव प्रोत्साहित किया है। यह समरसता प्राचीन काल से देखने को मिलती है। यथा– महाभारत काल या कृष्ण काल से ही दोनों भाषाओं एवं संस्कृतियों में समभाव परिलक्षित होता है। रुक्मणी और भगवान कृष्ण के पुत्र प्रदुम्न का विवाह असुर राजा बाणासुर की पुत्री उषा से हुआ था। एक हिंदी संस्कृति से संबंध रखने वाले हैं तो दूसरे असमिया संस्कृति से। ऐसे और भी कई उदाहरण अन्यत्र मिलते हैं।

हिंदी में सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, प्रेमचंद, महादेवी वर्मा जैसे साहित्यकारों ने जनमानस को छुआ है। वहीं असमिया में शंकरदेव, माधवदेव, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, हेम बरुआ जैसे रचनाकारों ने धर्म, संस्कृति और लोक

जीवन को साहित्यिक स्वरूप दिया।

दोनों भाषाओं में भक्ति आंदोलन और राष्ट्रवादी चेतना की समान लहर देखी जा सकती है।

लोक साहित्य में समभाव

लोकगीत, कहावतें, कथाएँ– ये किसी भी भाषा की आत्मा होते हैं। हिंदी और असमिया लोक साहित्य में आश्चर्यजनक साम्यता देखने को मिलती है। मुहावरों और लोकोक्तियों में भी कई स्तरों पर समभाव देखने को मिलता है। यथा–

भाव–साम्यता वाले मुहावरे

हिंदी मुहावरे	अर्थ	असमिया समतुल्य	लिप्यांतरण
आँखें खुलना	ज्ञान होना	চকু মেল খোৱা	सकु मेल खोवा
आग बबूला होना	बहुत गुस्सा होना	গাত জুই জ্বলা	गात जुइ ज्वला (लिप्यांतरण)
नाक में दम करना	परेशान कर देना	নাকত বাহ দিব	नाकोत बाह दीब
पेट में चूहे कूदना	बहुत भूख लगना	ভোকত আত্মা উলাই আহে	भोकत आत्मा उलाइ आहे
होनहार बिरवान के होत चिकने पात (हिंदी)	যি মূলা বাঢ়িব তাৰ দুপাততে চিন		जि मूला बाढ़िब तार दूपातते चिन (लिप्यांतरण
पेड़ पर चढ़कर जड़ से काटना (हिंदी)	গছত তুলি গুৰি কটা (असमिया)		गछत तुलि गुरि कटा (लिप्यांतरण)

इन उदाहरणों से पता चलता है कि हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं में भावाभिव्यक्ति के लिए समान भावनाओं और दैनिक अनुभवों से जुड़े मुहावरों का समान रूप में प्रयोग होता है। कुछ लोक प्रचलित लोकोक्तियों को भी नीचे दर्शाया गया है–

लोकोक्ति	अर्थ
जैसा बोओगे वैसा काटोगे (हिंदी)	कर्म के अनुसार फल मिलता है
যি বপা, সি পাব (असमिया समतुल्य)	जी बोपा ही पाबा (लिप्यांतरण)
एक तीर से दो शिकार (हिंदी)	एक कार्य से दो लाभ
এটা গুলীত দুই পখি (असमिया)	एटा गुलीत दुइ पखि (लिप्यांतरण)
ऊँट के मुँह में जीरा (हिंदी)	बहुत कम देना
উটৰ মুখত জীৰা (असमिया)	उटर मुखत जीरा (लिप्यांतरण)
चोरी और सीनाजोरी (हिंदी)	अपराध कर अकड़ दिखाना
দোষ কৰি গজ গজ কৰা (असमिया)	दोष करि गज गज करा (लिप्यांतरण)
अथवा	
চুৰি কৰি উলটা দৰাই থকা	चुरि करि उलटा दराइ थका (लिप्यांतरण)
दूध का जला छाछ भी फूक कर पीता है (हिंदी)	अनुभव से सतर्क हो जाना
ভাতত জুলি লোৱাই দধিত ফুত্কাৰ মাৰে (असमिया)	भातत जोली लोवाइ दधित फुत्कार मारे (लिप्यांतरण)

दोनों भाषाओं में लोकोक्तियाँ जीवन की सच्चाइयों, अनुभवों, नैतिकताओं और सामाजिक आचरणों को चित्रित करती हैं, जिससे इनके बीच सांस्कृतिक और चिंतनात्मक समभाव स्पष्ट होता है।

पारिवारिक और सामाजिक जीवन से जुड़े कुछ मुहावरों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं–

मुहावरे	अर्थ
घी के दिये जलाना	आनंद का अवसर
ঘিউৰ দীপ জ্বলোৱা	घिउर दीप ज्वलुआ (लिप्यांतरण)।
घर का भेदी लंका ढाए	अपनों द्वारा नुकसान
নিজৰ মানুহে ঘৰ ভাঙে	निजर मानुहे घर भांगे (लिप्यांतरण)
चूल्हा–चौका सँभालना	गृहस्थी चलाना
ভাতৰ ডালি ধৰা	भातर डालि धरा (लिप्यांतरण)
बाप का माल समझना	बिना मूल्य का समझना
বাপেকৰ সম্পত্তি বুলি ভাবা	बापेकर संपति बुलि भबा (लिप्यंतरण)
हाथ पीले करना	विवाह करना
বিয়া দিব (असमिया)	बिया दिब (लिप्यांतरण)
दो नावों में पैर रखना	अस्थिर व्यवहार
দুই নাউত ভৰি দিয়া	दूइ नाउत भरि दिया (लिप्यांतरण)

दोनों भाषाओं में प्रकृति से जुड़ी उपमाओं का प्रयोग अधिक है।

प्रेम, त्याग, वीरता, नारी के गुणों, कृषि जीवन, ऋतु चक्र आदि विषयों पर आधारित लोकगीत दोनों भाषाओं में मिलते हैं। उदाहरण– हिंदी का "फूलों का तारों का"... जैसा भाव असमिया के बिहु गीतों में परिलक्षित होता है।

सामाजिक भूमिका में समभाव

हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं ने अपने–अपने क्षेत्र में सामाजिक एकता और जन जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जनमानस में हिंदी राष्ट्रभाषा होने के कारण देशभर के लोगों को जोड़ने का माध्यम बनी। असमिया भाषा ने असम की सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ किया और बांग्ला–असमिया विवाद जैसे आंदोलनों में जन भावना की अभिव्यक्ति बनी। यह समभाव दोनों भाषाओं की सामाजिक प्रासंगिकता को दर्शाता है।

शिक्षा और प्रशासन में समानता

भारत में शिक्षा व्यवस्था में हिंदी और असमिया दोनों को स्थान मिला है। असम राज्य में असमिया को प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है, जबकि हिंदी भी अनिवार्य विषय के रूप में प्रचलित है।

सीबीएसई और अन्य राष्ट्रीय बोर्डों में दोनों भाषाओं में पाठयक्रम विकसित किए गए हैं। प्रशासनिक कार्यों में क्षेत्रीय स्तर पर असमिया और केंद्रीय स्तर पर हिंदी का प्रयोग होता है।

समभाव की चुनौती और समाधान

यद्यपि भाषाओं में समभाव मौजूद है, फिर भी कई बार क्षेत्रीय अस्मिता, राजनैतिक मुद्दे और भाषायी वर्चस्व की प्रवृत्तियाँ बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इनका समाधान निम्नवत् हो सकता है–

(क) भाषाओं के पारस्परिक अध्ययन को बढ़ावा देना।

(ख) एक–दूसरे की साहित्यिक कृतियों का अनुवाद और प्रचार–प्रसार।

(ग) शिक्षा में द्विभाषिकता या त्रिभाषिक नीति को सक्रिय रूप देना।

समभाव का भविष्य

आधुनिक संचार माध्यम, अंतरजाल, सोशल मीडिया, अनुवाद तकनीक आदि के माध्यम से आज हिंदी और असमिया भाषा का संपर्क और सहयोग बढ़ा है। कई असमिया लेखकों की किताबें हिंदी में और हिंदी लेखकों की किताबें असमिया में अनूदित हो रही हैं। यह समभाव का विस्तार है। दोनों भाषाओं में समभाव के निम्न रूप भी परिलक्षित हो रहे हैं–

(क) हिंदी फिल्मों में असमिया कलाकारों की भागीदारी।

(ख) असम में हिंदी भाषियों की संख्या में वृद्धि।

(ग) असमिया न्यूज चैनलों में हिंदी समाचार और हिंदी चैनलों पर असमिया मुद्दों की उपस्थिति।

यह सब समभाव के उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करता है।

निष्कर्षतः हिंदी और असमिया भाषा के बीच समभाव मात्र व्याकरण या शब्दों तक सीमित नहीं है, यह भाषिक सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर एक दूसरे के साथ चलने की भावना है। भारत जैसे बहुभाषी देश में यह समभाव हमारी एकता, विविधता और लोकतांत्रिक चेतना की आधारशिला है। हिंदी और असमिया भाषा का आपसी समभाव देश के पूर्व और उत्तर के बीच सेतु का कार्य करता है। इस समभाव को बनाए रखना केवल भाषाविदों का ही नहीं, अपितु हर नागरिक का कार्तव्य है।

सहायक ग्रंथ सूची–

1. श्रीमद्भागवत् पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. डेका, धर्म सिंह : 'रचना विचित्रा', असम बुक डिपो, पानबजार, गुवाहाटी
3. महंत, महेश्वर : 'हिंदी–असमिया अभिधान', बीना लाइब्रेरी, गुवाहाटी, असम
4. दास, अजित कुमार : 'कमतारत्न', रत्नपीठ प्रकाशन, बंगाईगाँव, असम
5. Mahanta, Dr. Rumi Goswami : 'Towards Gender Equality', K.R.B. Girls' College, Guwahati, Assam

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत का योगदान

–डॉ. जगदीश व्योम
नोएडा

भारत के पूर्वोत्तर राज्य– असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम– अपनी विशिष्ट और बहुरंगी सांस्कृतिक पहचान के लिए जाने जाते हैं। यहाँ विविध जनजातियाँ, भाषाएँ, वेशभूषाएँ, लोकनृत्य, लोकगीत और धार्मिक परंपराएँ सह–अस्तित्व में मिलती हैं, जो इस क्षेत्र को सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध बनाती हैं। प्रकृति के साथ गहरे संबंध, सामुदायिक जीवन, पर्व–उत्सवों में सामूहिक सहभागिता और लोकविश्वासों की प्रधानता यहाँ की संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। बिहू, हॉर्नबिल, वांगला, चपचार कुट और लोसार जैसे उत्सव जीवन के उल्लास, कृषि परंपरा और सामाजिक एकता को अभिव्यक्त करते हैं। बाँस, लकड़ी और हस्तकरघा पर आधारित लोककलाएँ, पारंपरिक खान–पान तथा शांति और सहिष्णुता की भावना पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक विशिष्टता को राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिदृश्य में अलग पहचान प्रदान करती है।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत का योगदान एक ऐसी 'बलि–गाथा' है, जिसने राष्ट्र की आत्मा को सुदृढ़ करने में निर्णायक भूमिका निभाई। पूर्वोत्तर भारत के लोगों में अपनी मातृभूमि के प्रति त्याग, बलिदान और समर्पण की जैसी जीवंत भावना देखने को मिलती है, वह प्रशंसनीय है। यहाँ के लोगों में त्याग और बलिदान करने वालों के प्रति अगाध श्रद्धा देखने को मिलती है। यही कारण है कि यहाँ के लोग अपने देश के मान–सम्मान के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने तक को हमेशा तैयार रहते हैं। क्रांतिकारियों पर कई महाकाव्य लिखने वाले श्रीकृष्ण सरल की ये पंक्तियाँ कितनी सटीक हैं –

बलिदान जहाँ श्रद्धा का पुरस्कार पाते
तो वहाँ सदा बलिदानी पैदा होते हैं
बलि–गाथाएँ जिंदा रखती हैं देशों को
बलिदान, देश की कलुष–कालिमा धोते हैं।

ये पंक्ति स्वतंत्रता आंदोलन के उस नैतिक और ऐतिहासिक सत्य को उद्घाटित करती हैं, जिसके बिना किसी भी राष्ट्र की मुक्ति–यात्रा की कल्पना अधूरी है। पूर्वोत्तर भारत भौगोलिक दृष्टि से भले ही देश के दूरस्थ कोने में स्थित रहा हो, किंतु चेतना और संघर्ष की दृष्टि से वह स्वतंत्रता आंदोलन की मुख्यधारा से कभी अलग नहीं रहा। यहाँ की भूमि ने औपनिवेशिक शोषण को केवल राजनीतिक दमन के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आघात के रूप में अनुभव किया। इसी कारण यहाँ जन्मा प्रतिरोध सहज, तीव्र और आत्मसम्मान से भरा हुआ था। उपरोक्त पंक्तियों में जिस 'श्रद्धा के पुरस्कार' की बात है, वही श्रद्धा पूर्वोत्तर समाजों में बलिदान को केवल मृत्यु नहीं, बल्कि कर्तव्य और गौरव के रूप में प्रतिष्ठित करती रही।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एक दीर्घकालिक, बहुआयामी और जनसाधारण की सहभागिता से अनुप्राणित ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिसने औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना को क्रमशः सुदृढ़ किया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरंभ हुए असंतोष ने उन्नीसवीं शताब्दी में संगठित रूप लिया और बीसवीं शताब्दी में यह जनांदोलन में परिवर्तित हो गया, जहाँ संवैधानिक सुधारों की मांग, सशस्त्र संघर्ष, किसान–मजदूर आंदोलन, सामाजिक–सांस्कृतिक पुनर्जागरण और अहिंसक सत्याग्रह– सभी धाराएँ समानांतर रूप से सक्रिय रहीं।

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और बहुआयामी रहा। इस क्षेत्र ने राजनीतिक जागरूकता, जन आंदोलन, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और सामाजिक एकता के माध्यम से स्वतंत्रता संघर्ष को सशक्त बनाया। यहाँ के लोगों ने औपनिवेशिक शोषण, आर्थिक अन्याय और प्रशासनिक दमन के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध किया तथा सत्याग्रह, असहयोग और जनजागरण जैसे आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई। सीमावर्ती और भौगोलिक रूप से दुर्गम होने के बावजूद पूर्वोत्तर ने राष्ट्रवादी चेतना को जन–जन तक पहुँचाया और स्थानीय परंपराओं, भाषाओं व सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखते हुए राष्ट्रीय एकता के विचार को मजबूत किया।

असम, मणिपुर, नागालैंड, त्रिपुरा, मिजोरम और

अरुणाचल क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध जनजातीय एवं जनसाधारण स्तर पर निरंतर प्रतिरोध देखने को मिलता है। असम में गोपीनाथ बोरदोलोई, चंद्रनाथ शर्मा, तरुणराम फूकन जैसे नेताओं ने राष्ट्रीय आंदोलन को संगठित किया, वहीं 1944 में मणिपुर की महिलाओं द्वारा संचालित नुपी लान ने औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध सशक्त जन आंदोलन का रूप लिया। नागा और मिजो क्षेत्रों में पारंपरिक स्वशासन की रक्षा हेतु अंग्रेजों का विरोध हुआ, जबकि रानी गैडिन्ल्यू ने हेराका आंदोलन के माध्यम से स्वतंत्रता और सांस्कृतिक स्वाभिमान का संदेश दिया। त्रिपुरा में राजघराने के सदस्यों और जनता ने कांग्रेस आंदोलन से जुड़कर संघर्ष किया। इस प्रकार पूर्वोत्तर भारत ने सशस्त्र, अशस्त्र, सांस्कृतिक और सामाजिक सभी स्तरों पर स्वतंत्रता आंदोलन को ऊर्जा प्रदान की और राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया।

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत के स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान का फलक इतना व्यापक है कि उसको समेटने के लिए कई ग्रंथ भी कम पड़ जाएँगे। पूर्वोत्तर भारत के अल्पवय किशोरों के साहस और बलिदानों को देखकर आश्चर्य मिश्रित गौरव से सिर ऊँचा उठ जाता है।

कनकलता बरुआ और मुकुंद काबता–

कनकलता बरुआ असम की सबसे युवा और तेजस्वी महिला शहीदों में गिनी जाती हैं। उनका जन्म 1924 में सोनितपुर जिले के बोरांगाबाड़ी गाँव में हुआ। 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में उन्होंने सक्रिय भागीदारी की। 20 सितंबर 1942 को उन्होंने गहपुर थाना भवन पर तिरंगा फहराने का नेतृत्व किया। ब्रिटिश पुलिस द्वारा रोके जाने पर भी वे पीछे नहीं हटीं और गोली लगने से शहीद हो गईं। मात्र 17 वर्ष की आयु में उनका बलिदान असम ही नहीं, पूरे भारत की युवा शक्ति के लिए प्रेरणा बन गया।

मुकुंद कावता पूर्वोत्तर भारत के उन स्वतंत्रता सेनानियों में थे, जिनका योगदान स्थानीय स्तर पर अत्यंत प्रभावशाली रहा, किंतु जिनका नाम राष्ट्रीय इतिहास में अपेक्षित रूप से सामने नहीं आ सका। वे असम क्षेत्र में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सक्रिय रहे और जनसाधारण को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

20 सितंबर 1942 को असम के गहपुर थाना भवन पर तिरंगा फहराने के लिए एक जुलूस निकाला गया, जिसका नेतृत्व कनकलता बरुआ कर रही थीं। ब्रिटिश पुलिस ने जुलूस को रोकने की कोशिश की और चेतावनी दी कि आगे बढ़ने पर गोली चलाई जाएगी। किंतु कनकलता ने निर्भीक स्वर में कहा– "गोली चलाओ, पर झंडा नहीं रुकेगा।" जैसे ही वे तिरंगा लेकर आगे बढ़ीं, ब्रिटिश पुलिस ने गोली चला दी। कनकलता वहीं शहीद हो गईं।

उस समय उनकी आयु मात्र 17 वर्ष थी। कनकलता बरुआ के गोली लगते ही झंडा मुकुंद कावता ने थाम लिया. .. इनके साहस और बलिदान का जीवंत चित्रण श्रीकृष्ण सरल ने अपने महाकाव्य 'क्रांतिगंगा' में किया है, इसकी एक झलक इन पंक्तियों में देखें–

आसाम प्रान्त का वह गोपुर था ग्राम एक
दे रहे योग ग्रामीण लोग भी थे अपना,
यह देश हमारा, शासन यहाँ हमारा हो
स्वातंर्त्य रहा जन–जन की आँखों का सपना।

चल–समारोह थाने पर जाने निकल पड़ा
हम वहाँ तिरंगा थाने पर फहराएँगे,
प्रार्थना हमारी अगर मानता तो उत्तम
अन्यथा शक्ति से अपना काम बनाएँगे।
झण्डे को थामे एक बालिका थी छोटी
वह कनकलता बरुआ चलती आगे आगे,
भारत माता की जय के नारे गूँज रहे
सब में स्वराज्य के उत्कट मनोभाव जागे।

चल–समारोह थाने के सम्मुख जा पहुँचा
रोकने उसे अफसर झट से आगे आया,
झण्डे को थामे आगे थी जो कनकलता
उसने आगे बढ़ कर अफसर को समझाया –

हम भारतीय हैं, और आप भी भारतीय
भाई होने के नाते साथ हमारा दें,
हम मिल कर झण्डा फहराएँ इस थाने पर
मिल कर भारत माता की जय का नारा दें।

पर वह तो था नौकरशाही में पला हुआ
बालिका उसे शिक्षा दे, उसे नहीं भाया,
वापिस जाने का उसने फिर आदेश दिया
आँखें तरेर कर कनकलता को धमकाया।

फिर एक बार समझाया कनकलता ने भी
जन–सेवक होने के नाते कहना मानें,
कर्त्तव्य आपका भारत–माता के प्रति है
अपने विवेक से आप स्वयं यह पहचानें।

पर, अफसर पर तो थी नौकरशाही सवार
पीछे हटने का उसने फिर आदेश दिया,
पर कनकलता ने कदम बढ़ाए आगे ही
जो भीड़ साथ में थी, उसने अनुसरण किया।

क्रोधांध कुटिल अफसर ने भी गोली छोड़ी
गोली खाकर था कनकलता ने दम तोड़ा,
झट से मुकुन्द काबता बढ़ा झण्डा लेकर
उस वीर युवक को भी उस दुर्भद ने फोड़ा।

खागए ताव ग्रामीण लोग, वे झपट पड़े
गोलियाँ छूटती थीं, वे बढ़ते जाते थे,
अपने प्राणों का मोह छोड़ कर बढ़ते वे
वे युक्ति लगा, थाने पर चढ़ते जाते थे।

मर गए साठ से ऊपर, लेकिन सफल हुए
आखिर थाने पर अपना झण्डा फहराया,
भारत – माता की जय के नारे लगा–लगा
सबने मिल कर वन्देमातरम् गीत गाया।

–(श्रीकृष्ण सरल, क्रांतिगंगा, पृष्ठ–764)

पूर्वोत्तर भारत के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की बहुत बड़ी सूची है, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में अपना सर्वस्व न्यौछवर कर दिया। इनमें से कुछ की संक्षिप्त जानकारी इस लेख में दी जा रही है–

भोगेश्वरी फुकनानी (असम)–

भोगेश्वरी फुकनानी असम की एक साहसी महिला स्वतंत्रता सेनानी थीं। उन्होंने असहयोग आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने महिलाओं को आंदोलन से जोड़ने, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और खादी प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गतिविधियों के कारण उन्हें कारावास भी सहना पड़ा।

टीरोत सिंह (मेघालय)–

टीरोत सिंह (1802–1835) खासी जनजाति के महान योद्धा और राष्ट्रवादी नायक थे। उन्होंने 19वीं सदी में ही ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष किया। खासी पहाड़ियों में अंग्रेजों की घुसपैठ का विरोध करते हुए उन्होंने कई वर्षों तक प्रतिरोध किया। उनका संघर्ष स्वतंत्रता आंदोलन की प्रारंभिक चेतना का प्रतीक है।

पाओना ब्रजाबासी (मणिपुर)–

पाओना ब्रजाबासी (1830–1891) मणिपुर के वीर योद्धा और राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतीक थे। उन्होंने ब्रिटिश सेना के विरुद्ध युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुए। यद्यपि उनका संघर्ष औपनिवेशिक काल के प्रारंभिक दौर का था, फिर भी उनका बलिदान स्वतंत्रता आंदोलन की प्रेरणास्रोत गाथा बना।

गोपीनाथ बोरदोलोई (असम)–

गोपीनाथ बोरदोलोई (1890–1950) असम के महान स्वतंत्रता सेनानी, गांधीवादी नेता और स्वतंत्र भारत में असम के प्रथम मुख्यमंत्री थे। उनका जन्म नगांव जिले में हुआ। बोरदोलोई असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में अग्रणी रहे। वे कई बार जेल गए। 1942 के आंदोलन में उन्होंने असम में व्यापक जनजागरण किया। स्वतंत्रता के समय असम को भारत में बनाए रखने और विभाजन की विभीषिका से बचाने में उनकी भूमिका ऐतिहासिक रही।

चंद्रप्रभा सैकियानी (असम)–

चंद्रप्रभा सैकियानी का जन्म 1901 में असम के जोरहाट जिले में हुआ। वे स्वतंत्रता आंदोलन के साथ–साथ महिला अधिकारों और

ISSN No. : 0970-9398

सामाजिक सुधार की प्रबल समर्थक थीं। उन्होंने 'असम महिला समिति' की स्थापना कर महिलाओं को राजनीतिक चेतना से जोड़ा। असहयोग आंदोलन और नमक सत्याग्रह में उनकी सक्रिय भूमिका रही। कई बार गिरफ्तारी और सामाजिक विरोध सहते हुए भी उन्होंने स्वतंत्रता और समानता के आदर्शों से समझौता नहीं किया।

हाइपौ जादोनांग (नागालैंड–मणिपुर क्षेत्र)–

हाइपौ जादोनांग (1905–1931) जेलियांगरोंग जनजाति के महान नेता और स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनजातीय प्रतिरोध आंदोलन का नेतृत्व किया। उनका आंदोलन राजनीतिक के साथ–साथ सांस्कृतिक पुनर्जागरण से भी जुड़ा था। अंग्रेजों ने उन्हें फाँसी दे दी, जिससे वे पूर्वोत्तर भारत के पहले जनजातीय शहीदों में गिने जाते हैं।

कणकलाल बरुआ (असम)–

कणकलाल बरुआ (1875–1938) असम के राष्ट्रवादी चिंतक, लेखक और स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए लेखन और भाषणों का सहारा लिया। असम में कांग्रेस संगठन को मजबूत किया और ब्रिटिश नीतियों का खुलकर विरोध किया। वे स्वतंत्रता आंदोलन के वैचारिक स्तंभों में गिने जाते हैं।

तरुण राम फूकन (असम)–

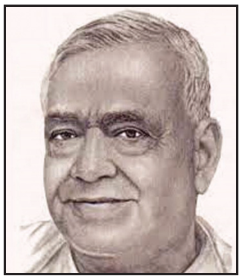

तरुण राम फूकन (1877–1939) असम के प्रसिद्ध समाज सुधारक, वकील और राष्ट्रवादी नेता थे। उन्हें "देशबंधु ऑफ असम" कहा जाता है। उन्होंने स्वदेशी आंदोलन को असम में व्यापक बनाया। खादी प्रचार, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वे असमिया समाज को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने वाले प्रमुख नेता बने।

पुष्पलता दास (असम)–

पुष्पलता दास का जन्म 1915 में हुआ। वे शिक्षित, प्रखर वक्ता और संगठक थीं। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्होंने भूमिगत गतिविधियों के माध्यम से संदेश, पर्चे और सूचनाएँ पहुँचाईं। उन्हें कई बार गिरफ्तार किया गया। स्वतंत्रता के बाद भी वे सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय रहीं। उनका योगदान यह दर्शाता है कि पूर्वोत्तर की महिलाएँ वैचारिक और रणनीतिक दोनों स्तरों पर आंदोलन का हिस्सा थीं।

मोइनुल हक चौधरी (असम)–

मोइनुल हक चौधरी (1904–1970) स्वतंत्रता सेनानी, शिक्षाविद और राजनेता थे। उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा मंत्री के रूप में उन्होंने उच्च शिक्षा के विस्तार में योगदान दिया।

रानी गैदिन्ल्यू (नागालैंड, मणिपुर)–

रानी गैदिन्ल्यू का जन्म 1915 में मणिपुर में नागा जनजाति के एक गाँव में हुआ। वे मात्र 13 वर्ष की आयु में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह में शामिल हो गईं। उन्होंने अपने गुरु हैपो जादोनांग के साथ मिलकर 'हेराका आंदोलन' का नेतृत्व किया, जो ब्रिटिश सत्ता और सामाजिक कुरीतियों दोनों के विरुद्ध था। 1932 में उन्हें गिरफ्तार कर आजीवन कारावास दिया गया। स्वतंत्रता के बाद उन्हें सम्मानपूर्वक 'रानी' की उपाधि दी गई। उनका जीवन जनजातीय चेतना और राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक है।

दुर्गा प्रसाद मजूमदार (त्रिपुरा)–

दुर्गा प्रसाद मजूमदार त्रिपुरा के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों में गिने जाते हैं। उन्होंने रियासती शासन और ब्रिटिश प्रभाव के विरुद्ध संघर्ष किया। जनसभाओं, संगठन निर्माण और राजनीतिक जागरूकता के माध्यम से त्रिपुरा को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा।

रानी लक्ष्मीबाई बोर्डोलोई (असम)–

रानी लक्ष्मीबाई बोर्डोलोई असम की उन महिलाओं में थीं जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को गाँव–गाँव तक पहुँचाया। उन्होंने चरखा आंदोलन, विदेशी वस्त्र बहिष्कार और सत्याग्रह में भाग लिया। वे महिलाओं को संगठित कर सभाएँ और जुलूस निकालती थीं। सामाजिक प्रतिबंधों के बावजूद उनका सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रहना असाधारण साहस का परिचायक था।

नोगेनबाला देवी (असम)–

नोगेनबाला देवी असम में महिला शिक्षा और स्वतंत्रता आंदोलन को जोड़ने वाली प्रमुख कार्यकर्ता थीं। उन्होंने

महिलाओं को राजनीतिक सभाओं में भाग लेने, सत्याग्रह में उतरने और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने के लिए प्रेरित किया। ब्रिटिश शासन द्वारा उन्हें गिरफ्तार भी किया गया।

हेलोइस दत्ता (असम)–

हेलोइस दत्ता ने युवतियों के बीच राष्ट्रवादी विचार फैलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने स्वदेशी आंदोलन के अंतर्गत विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और खादी प्रचार में भाग लिया। वे असम की उन महिलाओं में थीं जिन्होंने आंदोलन को सांस्कृतिक चेतना से जोड़ा।

पूर्वोत्तर के पुरुषों व महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया। पूर्वोत्तर भारत की अनेक जनजातीय महिलाएँ– नागा, मिजो, खासी, गारो, आदि समुदायों से, संगठित आंदोलनों, कर–विरोध, ब्रिटिश चौकियों के बहिष्कार और संदेशवाहक के रूप में सक्रिय रहीं। इनके नाम इतिहास में भले ही दर्ज नहीं हो पाए, किंतु इनका सामूहिक योगदान स्वतंत्रता संघर्ष की रीढ़ रहा।

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत का योगदान भारतीय इतिहास के उन उज्ज्वल अध्यायों में से है, जिनकी अनुगूँज दूर–दूर तक सुनाई देती है। यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से जितना दूरस्थ रहा, राष्ट्रीय चेतना के प्रवाह में उतना ही निकट और सक्रिय भी रहा। स्वतंत्रता संग्राम की वैचारिक, संगठनात्मक और संघर्षात्मक प्रक्रियाओं में पूर्वोत्तर भारत ने जिस निष्ठा, साहस और बलिदान का परिचय दिया, वह भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को संपूर्णता प्रदान करता है।

पूर्वोत्तर भारत का स्वतंत्रता आंदोलन केवल राजनीतिक सत्ता–परिवर्तन की आकांक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सांस्कृतिक स्वाभिमान, सामाजिक चेतना और आत्मसम्मान की गहरी भावना अंतर्निहित थी। इस क्षेत्र के लोगों ने अंग्रेजी शासन को केवल बाहरी सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि अपनी परंपराओं, जीवन–पद्धतियों और सामाजिक संरचनाओं पर आघात करने वाली शक्ति के रूप में देखा। इसलिए यहाँ प्रतिरोध का स्वर स्वाभाविक, व्यापक और जन–आधारित था। जनजातीय समाजों से लेकर नगरों और कस्बों तक, स्वतंत्रता की आकांक्षा ने हर स्तर पर अपनी अभिव्यक्ति पाई। विशेषता यह रही कि यहाँ स्वतंत्रता आंदोलन बहुधा स्थानीय परिस्थितियों और सामाजिक संरचनाओं के अनुरूप विकसित हुआ। कहीं यह आंदोलन पारंपरिक नेतृत्व और सामुदायिक संगठनों के माध्यम से आगे बढ़ा, तो कहीं आधुनिक राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़कर व्यापक स्वरूप ग्रहण करता गया। इस विविधता के बावजूद, लक्ष्य एक ही था, औपनिवेशिक दासता से मुक्ति। इस दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत का योगदान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को क्षेत्रीय विविधता के साथ राष्ट्रीय एकता का आदर्श उदाहरण प्रदान करता है।

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत की भागीदारी का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह रहा कि यहाँ की जनता ने केवल आह्वानों और विचारों तक सीमित न रहते हुए प्रत्यक्ष संघर्ष, त्याग और बलिदान का मार्ग अपनाया। दमन, अत्याचार, आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक हस्तक्षेप के विरुद्ध यहाँ की जनता ने साहसपूर्वक आवाज उठाई। अनेक बार संसाधनों की कमी, संचार के अभाव और भौगोलिक दुर्गमता के बावजूद आंदोलन की लौ बुझने नहीं दी गई। यह तथ्य इस क्षेत्र की जन–शक्ति और संकल्पशीलता को रेखांकित करता है।

पूर्वोत्तर भारत के स्वतंत्रता संग्राम की एक उल्लेखनीय विशेषता इसमें महिलाओं की सक्रिय और प्रभावी भागीदारी रही। सामाजिक रूप से अपेक्षाकृत सशक्त स्थिति में रही अनेक स्त्रियों ने आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई। उन्होंने न केवल आंदोलनों में भाग लिया, बल्कि संगठन, नेतृत्व और बलिदान के माध्यम से स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा दी। यह पक्ष भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के समग्र इतिहास में स्त्री–शक्ति के योगदान को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक चेतना की भूमिका भी यहाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही। लोकगीतों, लोककथाओं, परंपराओं और उत्सवों के माध्यम से स्वतंत्रता की भावना जनमानस में प्रवाहित होती रही। सांस्कृतिक प्रतीकों और स्थानीय भाषाओं के प्रयोग ने आंदोलन को जन–सुलभ बनाया और उसे समाज की जड़ों से जोड़ा। इस सांस्कृतिक प्रतिरोध ने औपनिवेशिक सत्ता की उस मानसिक गुलामी को चुनौती दी, जो किसी भी राजनीतिक दासता से अधिक गहरी होती है।

पूर्वोत्तर भारत का योगदान इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि उसने स्वतंत्रता आंदोलन को केवल उत्तर या पश्चिम भारत तक सीमित न रहने देकर अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। इस क्षेत्र की भागीदारी ने यह सिद्ध किया कि स्वतंत्रता की आकांक्षा देश के हर कोने में समान रूप से व्याप्त थी। इससे राष्ट्रीय आंदोलन को नैतिक बल मिला और ब्रिटिश शासन के इस दावे को चुनौती मिली कि भारत एकीकृत राष्ट्र नहीं है। पूर्वोत्तर की सक्रियता ने भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधता के बीच एकता को सशक्त रूप से स्थापित किया।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पूर्वोत्तर भारत ने अनेक कठिनाइयों का सामना किया। दमनात्मक नीतियाँ, कठोर प्रशासनिक नियंत्रण और सैन्य कार्रवाइयाँ इस क्षेत्र में आम थीं। इसके बावजूद आंदोलन की गति थमी नहीं। बल्कि

इन कठिन परिस्थितियों ने संघर्ष को और अधिक दृढ़ बनाया। यह तथ्य दर्शाता है कि स्वतंत्रता केवल एक राजनीतिक लक्ष्य नहीं थी, बल्कि आत्मसम्मान और अस्तित्व का प्रश्न बन चुकी थी।

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत का योगदान भारतीय स्वाधीनता संग्राम की आत्मा का अभिन्न अंग है। इसके बिना स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास अधूरा और एकांगी प्रतीत होता है। पूर्वोत्तर भारत ने अपने संघर्ष, बलिदान और सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से यह सिद्ध किया कि राष्ट्र की स्वतंत्रता केवल सीमाओं या केंद्रों से नहीं, बल्कि हर उस स्थान से जन्म लेती है जहाँ अन्याय के विरुद्ध आवाज उठती है। इस योगदान को समग्रता में स्वीकार करना और सम्मान देना ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। और अंत में यही कि–

बलिदान कभी कोई भी व्यर्थ नहीं जाता
जी उठता उसका देश, वीर यदि मरता है,
असफल रहती हैं सदियाँ उसे भुलाने में
वह सदियों की यादों से नहीं उतरता है।

प्रपत्र–4 (देखिए नियम–8)
प्रेस तथा पुस्तक पंजीकरण अधिनियम
समाचार पत्रों का पंजीकरण (केंद्रीय) नियम
''राजभाषा भारती'' के स्वामित्व तथा विवरणों की सूचना

पं.सं. 3246/77

1.	प्रकाशन का स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	वारिधि कार्ड्स एण्ड ग्राफिक्स
4.	क्या भारत का नागरिक है?	भारतीय नागरिक
5.	प्रकाशन का नाम व पता	राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, एन.डी.सी.सी.–2 भवन, चौथा तल, बी विंग, नई दिल्ली–110001
6.	संपादक का नाम व पता	श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव, संयुक्त निदेशक (पत्रिका), राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, एन.डी.सी.सी.–2 भवन, चौथा तल, बी विंग, नई दिल्ली–110001
7.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	अप्रयोज्य

मैं, राजेश कुमार श्रीवास्तव घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह./–
प्रकाशक का हस्ताक्षर

कवर डिजाइन एवं टाइपसेटिंग–वारिधि कार्ड्स एण्ड ग्राफिक्स, चावड़ी बाजार, दिल्ली–6

ISSN No. : 0970-9398

भाषाई समरसता से राष्ट्रीय समरसता

–डॉ.वी.वेंकटेश्वर राव
पूर्व सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा),
केनरा बैंक, हैदराबाद

रंगीन वेषभूषाओं, गौरवशाली संस्कृतियों, वैविध्यपूर्ण खान–पान, मनमोहक प्राकृतिक सौंदर्य, मौसमी विविधताओं से भरा भारत बहु भाषाओं का संगम है। भारत को अनेकता में एकता की धरा कहा जाता है। विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले लोगों के बीच आपसी तालमेल और सम्मान की भावना होने पर संपूर्ण राष्ट्र में एकता और सद्भाव का निर्माण अपने आप हो जाता है। विभिन्न भाषायी समुदायों का एक–दूसरे की भाषाओं को समझते हुए और उनका आदर करते हुए मिल–जुलकर रहने पर राष्ट्रीय एकता का व्यापक ताना–बाना मजबूत हो जाता है। भारत की आत्मा का यदि कोई सबसे मुखरित और स्पंदित स्वरूप है तो वह इसकी भाषाएँ हैं। गंगा की पवित्रता, हिमालय की ऊँचाई, सागर की गहराई और मरुस्थल की विशालता को अपने शब्दों में समेटे ये भाषाएँ राष्ट्रीय अस्मिता का गौरवशाली दर्पण हैं। भारतीय जन–गण–मन कोई प्रांत विशेष का नहीं है। उत्तर–दक्षिण और पूरब–पश्चिम में एक समान आदर के साथ तन–मन से इसे गाया जाता है। भाषाई समरसता का यह एक सुंदर उदाहरण है।

भाषायी समरसता, भाषायी पुनरुत्थान और भाषायी संवर्धन किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक एकता और राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने के महत्वपूर्ण आधार होते हैं। विश्व के अनेक देशों ने यह सिद्ध किया है कि अपनी भाषा का संरक्षण और विकास केवल सांस्कृतिक दायित्व नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य प्रक्रिया भी है। भारत की हिंदी, चीन की मंडारिन, इंडोनेशिया की बाहासा इंडोनेशिया, तुर्किए की तुर्की, तंजानिया की स्वाहिली तथा आयरलैंड की आयरिश भाषा इसके सशक्त उदाहरण हैं। इन भाषाओं ने विविध भाषायी और सांस्कृतिक समुदायों को एक सूत्र में बाँधते हुए राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक आत्मविश्वास और जनसहभागिता को नई ऊर्जा प्रदान की। साथ ही, इन्होंने अपनी–अपनी सभ्यताओं की ऐतिहासिक चेतना को संरक्षित रखते हुए आधुनिक राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को गति दी तथा वैश्विक स्तर पर अपने देशों की विशिष्ट और सशक्त राष्ट्रीय पहचान स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत की भाषायी विविधता

भारत की भाषायी विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि विश्व समुदाय के लिए अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है। यहाँ सहस्राब्दियों से चार प्रमुख भाषा परिवार–इंडो–आर्यन, द्रविड़, चीनी–तिब्बती और ऑस्ट्रो–एशियाटिककृसमानांतर रूप से विकसित होते रहे हैं, जिनसे सैकड़ों भाषाएँ और हजारों बोलियाँ पुष्पित–पल्लवित हुई हैं। यह बहुभाषिक परंपरा भारत की सांस्कृतिक बहुरूपता, सामाजिक सहअस्तित्व और सभ्यतागत निरंतरता की जीवंत अभिव्यक्ति है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाएँ इस विराट भाषायी वैभव के केवल प्रतिनिधि स्वरूप हैंय वास्तव में भारत की भाषिक धरोहर एक ऐसे विशाल उद्यान के समान है, जिसमें विविध भाषाएँ और बोलियाँ अपनी विशिष्ट सुगंध, सांस्कृतिक चेतना और लोकानुभव के साथ राष्ट्र की एकात्मता को समृद्ध करती हैं।

प्रत्येक भाषा अपने आप में एक विशिष्ट जीवन–दृष्टि, समृद्ध साहित्य, अनूठी परंपरा और गौरवशाली इतिहास का कोश होती है। संस्कृत के वेद और उपनिषद्, तमिल के 'तिरुक्कुरल,' तेलुगु के 'आंध्र महाभारतम्', हिंदी क्षेत्र की तुलसीदास कृत रामचरितमानस, कबीर के दोहे, पंजाब के वारिस शाह की 'हीर', महाराष्ट्र के संत तुकाराम के 'अभंग', पश्चिम बंगाल से शुरु रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' जैसी विभिन्न भाषाओं में सृजित रचनाओं ने विश्व साहित्य को अमूल्य योगदान दिया है। यह विविधता एक ओर हमारा सबसे बड़ा वैभव है, वहीं दूसरी ओर कभी–कभार यह एक संवेदनशील चुनौती भी बन जाती है। भाषा को अस्मिता और अस्तित्व के साथ गहराई से जोड़कर देखा जाता है तो भाषायी आग्रह क्षेत्रीयता और अलगाववाद की भावना को जन्म दे सकता है। यदि इस भाषायी विविधता को सम्मान और समन्वय के धागे में नहीं पिरोया गया, तो यह राष्ट्रीय एकता के ताने–बाने को कमजोर भी कर सकती है। अतः विविधता में एकता लाने के लिए भाषायी समरसता स्थापित करना जरूरी है। भारत की विविध भाषाओं के बीच एकता और सौहार्द की भावना को मजबूत करने एवं लोगों को अपनी मातृभाषा के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं को

सीखने के लिए प्रेरित करने के आदर्श आशय से स्वतंत्रता सेनानी एवं तमिल के महाकवि सुब्रमण्यम भारती की जयंती के उपलक्ष्य में वर्ष 2022 से 11 दिसंबर को 'भारतीय भाषा दिवस' मनाए जाने की प्रथा प्रारंभ कराई गई है। यह पहल केवल भाषायी उत्सव भर नहीं, बल्कि भारत की बहुभाषिक चेतना, सांस्कृतिक विविधता और सभ्यतागत विरासत के सम्मान का सशक्त प्रतीक है। इस अवसर के माध्यम से देशवासियों को भारतीय भाषाओं की समृद्ध परंपरा, साहित्यिक वैभव, लोकज्ञान और सांस्कृतिक मूल्यों को समझने तथा उन्हें नई पीढ़ी तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होता है। साथ ही, यह दिवस भाषायी समरसता, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक आत्मगौरव की भावना को भी सुदृढ़ करता है।

भाषा, संस्कृति और अस्मिता

भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं, वह हमारी संस्कृति की वाहक और हमारी अस्मिता की पहचान है। किसी भी व्यक्ति के लिए उसकी मातृभाषा केवल शब्द नहीं, बल्कि उसकी माँ की लोरी, उसके पूर्वजों के अनुभव और उसके समाज के संस्कार होती है। जब किसी की भाषा का सम्मान किया जाता है तो वास्तव में उसकी पूरी सांस्कृतिक विरासत और उसके अस्तित्व का सम्मान किया जाना माना जाता है। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम कहा करते थे कि "भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि संस्कार और संस्कृति की संवाहक है।"

तमिल के महान कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने अपनी भाषा के प्रति गौरव प्रकट करते हुए कहा था, ''मैंने जितनी भाषाएँ जानी हैं, उनमें तमिल जैसी मीठी भाषा कहीं नहीं पाई।'' उसी प्रकार तेलुगु के प्रसिद्ध कवि और समाज सुधारक गुरजाडा अप्पा राव ने तेलुगु भाषा को 'देश भाषलंदु तेलुगु लेस्सा' (अर्थात् देश की भाषाओं में तेलुगु श्रेष्ठ है) कहकर उसे गौरवान्वित किया। कन्नड़ के महान कवि कुवेंपु ने अपनी भाषा को 'कन्नड़ कस्तूरी' (कन्नड़ भाषा कस्तूरी की तरह सुगंधित है) कहा था। असमिया भाषा के पुनर्जागरण के प्रमुख स्तंभ लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ ने कहा "असमिया भाषा ही हमारी अस्मिता है।" विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी मातृभाषा बांग्ला के प्रति प्रेम व्यक्त करते हुए कहा "मेरी स्वर्णिम बांग्ला, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।" मलयालम के प्रमुख कवि वल्लथोल कहा करते थे कि "मेरी मलयालम, मेरा अभिमान"। अपनी-अपनी भाषा के प्रति यह गौरव भाव स्वाभाविक और वांछनीय है। भाषायी समरसता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि कोई अपनी भाषायी पहचान को त्याग दे। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि अपनी भाषा पर गर्व करते हुए, दूसरों की भाषाओं के प्रति भी वही सम्मान और आदर का भाव रखना है। राष्ट्रीय समरसता का वृक्ष तभी लहलहाएगा जब उसे प्रत्येक भाषायी संस्कृति के जल से सींचा जाएगा।

संपर्क भाषा की आवश्यकता

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की कूटनीति का प्रभावी प्रतिरोध करने के लिए पूरे राष्ट्र को भावनात्मक और वैचारिक रूप से एक सूत्र में बाँधना अत्यंत आवश्यक हो गया था। इसके लिए ऐसी संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की गई, जो देश के विशाल जनसमूह द्वारा सहज रूप से बोली और समझी जाती हो तथा किसी एक प्रांत, जाति या वर्ग तक सीमित न हो। हिंदी ने इस आवश्यकता को स्वाभाविक रूप से पूरा किया। यही कारण था कि महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल, सुभाष चंद्र बोस तथा अनेक राष्ट्रनायकों ने हिंदी के व्यापक जनाधार और उसकी एकात्मकारी शक्ति को पहचाना। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय चेतना, जनजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन के सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया, जिसने विविधताओं से भरे भारत को राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता के साझा लक्ष्य से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गांधी कहा करते थे ''राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।'' उनका आशय एक ऐसी भाषा से था जो जन-जन को जोड़ सके, जो उत्तर को दक्षिण से और पूरब को पश्चिम से संवाद करने में सक्षम बना सके। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी केवल एक भाषा नहीं थी, वह राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति और विदेशी शासन के विरुद्ध एकता का प्रतीक बन गई थी। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर संविधान सभा द्वारा हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।

राजभाषा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ

भारतीय संविधान के निर्माता भाषायी संवेदनशीलता से भली-भाँति परिचित थे। यही कारण था कि उनके द्वारा किसी भी भाषा को श्राष्ट्रभाषाश का दर्जा नहीं दिया गया, अपितु अनुच्छेद 343 (1) के तहत हिंदी को संघ की 'राजभाषा' के रूप में स्वीकारा गया। उनकी दृष्टि में सभी भारतीय भाषाएँ राष्ट्र की सम्माननीय भाषाएँ हैं। संविधान सभा का उद्देश्य हिंदी को अन्य भारतीय भाषाओं पर थोपना नहीं था, बल्कि संघ के प्रशासनिक कार्यों में सुगमता से राजभाषा हिंदी को प्रयोग में लाकर, ग्राहक संपर्क में उसे जोड़कर उसे एक समन्वयकारी भाषा के रूप में विकसित करना था और जन संपर्क मामलों में यथावश्यक स्थानीय भाषाओं के प्रयोग को स्थान देते हुए, धीरे-धीरे हिंदी के

माध्यम से व्यापक संप्रेषण स्थापित करना था जो राष्ट्रीय विकास में सहायक बनने के अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र की पहचान स्थापित कर सके। संविधान की अष्टम अनुसूची में प्रमुख भारतीय भाषाओं को समाविष्ट करना इस बात का प्रमाण है कि संविधान सभी भाषाओं के विकास और संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध है। अतः, राजभाषा हिंदी का दायित्व केवल अपने स्वयं का विकास करना नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ मिलकर एक समृद्ध भाषायी परिवेश का निर्माण करना है। उपनिषदों में कहा गया है, 'सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै।'' (हम साथ–साथ चलें, साथ–साथ आगे बढ़ें और साथ–साथ ऊर्जावान बनें)। यही भावना भाषायी संदर्भ में भी अपेक्षित है।

संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का सहज प्रसार

संविधान की अपेक्षाओं के अनुरूप, हिंदी ने पिछले सात दशकों में एक संपर्क भाषा के रूप में अपना स्वाभाविक विकास किया है। यह विकास किसी सरकारी आदेश या दबाव से उतना नहीं हुआ, जितना सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारणों से हुआ है। बॉलीवुड सिनेमा और हिंदी संगीत ने भाषा की सीमाओं को तोड़ते हुए हिंदी को देश के कोने–कोने में, यहाँ तक कि हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के घरों में भी पहुँचा दिया है। देवकी नंदन खत्री की तिलस्मी, अय्यारी उपन्यासों, रामानंद सागर का रामायण सीरियल, बी.आर.चोपड़ा के महाभारत सीरियल और आर.के. नारायण की मालगुडी डेज की हिंदी डबिंग ने हिंदीतर भाषियों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया है। यह प्रवाह एक–तरफा नहीं है। एक तमिल गीत जब पंजाबी युवाओं की धड़कन बन जाता है या एक बंगाली लेखक की कहानी हिंदी में अनूदित होकर राजस्थान में पढ़ी जाती है तो यह सांस्कृतिक समरसता का जादू है जो भाषायी दीवारों को गिरा देता है। आज एक कश्मीरी व्यक्ति कन्याकुमारी के एक व्यापारी से या गुजरात का एक पर्यटक अरुणाचल प्रदेश के एक स्थानीय नागरिक से संवाद करने के लिए जिस भाषा का सबसे सहजता से प्रयोग करता है, वह हिंदी है। अब हिंदी व्याकरणनिष्ठ हिंदी नहीं रहकर कामचलाऊ, सरल और अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करने वाली जीवंत 'बाजार की हिंदी' बन गई है। संविधान के अनुच्छेद 351 के आदर्श विचारों का पालन करते हुए अब हिंदी समावेशी प्रकृति की हिंदी बनती जा रही है।

भाषायी समरसता के मार्ग में आने वाली समस्याएं और चुनौतियाँ

भाषायी समरसता की स्थापना के मार्ग में आने वाली समस्याओं और चुनौतियों को गंभीरता से समझना, उन पर संवेदनशीलतापूर्वक विचार करना तथा उनके समाधान हेतु सार्थक और दूरदर्शी प्रयास करना अत्यंत आवश्यक है। भाषायी विविधता तभी राष्ट्रीय शक्ति में परिवर्तित हो सकती है, जब समाज में स्व–चेतना, उदार दृष्टिकोण, पारस्परिक सम्मान और 'हम सब एक हैं' की समावेशी भावना विकसित हो। किसी भी भाषा को श्रेष्ठ या हीन मानने की प्रवृत्ति सामाजिक विभाजन को जन्म देती है, जबकि सभी भाषाओं के समान आदर और संतुलित विकास की नीति राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करती है। इसलिए यह सरकार का प्रमुख दायित्व है कि वह सभी भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और सम–विकास के लिए न्यायसंगत एवं संवेदनशील प्रयास सुनिश्चित करे। साथ ही, स्वैच्छिक भाषा–विकास संस्थाओं, भाषा संरक्षण संगठनों और सांस्कृतिक मंचों की भूमिका भी निष्पक्ष, निरूस्वार्थ तथा राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्रहित और भाषायी समरसता के मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए।

चुनौतियाँ

- आज के वैश्वीकरण के दौर में अंग्रेजी का बढ़ता वर्चस्व भारतीय भाषाओं के लिए एक बड़ी चुनौती बन गई है। विकसित सूचना प्रौद्योगिकी, तकनीकी शिक्षा को प्राथमिकता, विदेशों में विद्याभ्यास व नौकरी करने की अभिलाषा और कॉर्पोरेट जगत में अंग्रेजी के प्रभुत्व के कारण युवा पीढ़ी में अपनी मातृभाषा के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है।
- भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण तकनीकी सामग्री और उपकरणों का अभाव एक समस्या है। यह डिजिटल दुनिया में भारतीय भाषाओं के प्रयोग को सीमित करता है।
- बढ़ते शहरीकरण में लोग अपनी मातृभाषा और बोली से दूर होते जा रहे हैं। महानगरों में पली–बढ़ी नई पीढ़ी अपनी भाषिक और सांस्कृतिक जड़ों से कटती जा रही है, जो भाषायी विविधता के लिए बड़ा खतरा है।
- सरकार द्वारा बनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रमुख अंश जैसे त्रि–भाषा सूत्र इत्यादि का उनकी मूल भावना के साथ ईमानदारी से राज्य सरकारों द्वारा लागू नहीं किया जाना।

समाधान

भाषायी समरसता केवल एक सैद्धांतिक विचार नहीं है, इसे यथार्थता के धरातल पर उतारने के लिए ठोस और समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। इसके समाधान बहुआयामी होने चाहिए।

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित त्रि–भाषा सूत्र को उसकी मूल भावना के साथ अनिवार्यतः लागू करना अति आवश्यक है। केवल सरकार का ही दायित्व नहीं, माता–पिता पर अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा, एक और अन्य भारतीय भाषा सिखाने पर विशेष ध्यान देने का अधिक दायित्व है।

- आज के डिजिटल युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर आधारित अनुवाद, टंकण, वाचन, लिप्यंतरण आदि औजार भाषागत खाई को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा पाने में सक्षम हो पा रहे हैं। सरकार द्वारा स्थापित 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' और इसके अतिरिक्त 'ई–भाषा उपकरण', 'भाषिणी' जैसे विविध भाषा प्रोन्नति प्लेटफॉर्म भारतीय भाषाओं के सुलभ व त्वरित प्रयोग में मील के पत्थर साबित हो रहे हैं। सरकार के प्रोत्साहन से एआईसीटीई (All India Council for Technical Education), सी–डैक जैसी कई संस्थाएँ भाषा के प्रौद्योगिकी प्रयोग पर अचंभित शोध कार्य करते हुए आश्चर्यजनक सकारात्मक परिणाम हासिल कर रही हैं। एआईसीटीई द्वारा विकसित किए गए 'अनुवादिनी' टूल ने अनुवाद के क्षेत्र में क्रांतिकारी इतिहास रचा है। इसके द्वारा अब तक अष्टम अनुसूची की 22 भाषाओं के अतिरिक्त 34 विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य संपन्न करना संभव हो पा रहा है।

- राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रयोग पर ही नहीं, अब बहुभाषा प्रयोग पर भी बल दिया जा रहा है। इस आशय की पूर्ति के लिए 14 सितंबर, 2024 को राजभाषा विभाग, दिल्ली के पर्यवेक्षण में ही 'भारतीय भाषा अनुभाग' खोला गया है।

- विभिन्न भाषाओं के साहित्य, सिनेमा और कला को बड़े पैमाने पर अभी भी अनूदित और प्रचारित करने की आवश्यकता है। 'एक भारत–श्रेष्ठ भारत' जैसी योजनाओं के माध्यम से राज्यों के बीच भाषायी और सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा देने के अतिरिक्त, अनेक नवोन्मेषी उपाय अपनाने होंगे। इससे आपसी सद्भाव और सम्मान की भावना निरंतर विकसित होती रहेगी।

- सरकारी सेवाओं, वेबसाइटों और तकनीकी प्लेटफॉर्मों पर बहुभाषिक पहुँच सुनिश्चित की जानी होगी। न्यायालयों और प्रशासनिक कार्यों में स्थानीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देना भाषायी समरसता की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण है।

- भाषा को श्रेष्ठता या हीनता के पैमाने पर नहीं, बल्कि सम्मान के दृष्टिकोण से देखना होगा। हिंदी भाषियों का यह कर्तव्य हो कि वे अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति सम्मान और सीखने की जिज्ञासा का भाव रखें और हिंदीतर भाषी हिंदी को एक सहयोगी संपर्क भाषा के रूप में देखें न कि प्रतियोगी के रूप में। ''सर्वभाषा समभाव ही सच्ची राष्ट्रीयता है''– आचार्य विनोबा भावे के इस कथन का सभी को अनुसरण करना होगा।

उपसंहार

जैसे विविध स्वरों के मेल से एक मधुर राग उपजता है, वैसे ही विविध भाषाओं के मेल–मिलाप से राष्ट्रीय एकता का गान गूँजता है। सभी भाषाओं की गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए संपर्क सेतु हिंदी के सहारे राष्ट्रीय एकता को निरंतर सुदृढ़ करते रहना होगा। भाषाएँ समाज को जोड़ती हैं और समन्वित संस्कृति का विकास करती हैं। भाषायी ज्ञान को बांटने में बादलों की तरह बरसने का स्वभाव हो। स्वांतरू सुखाय और परजन हिताय की भावना से अपनी मातृभाषा के विकास के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में भी साथ देते हुए, भाषायी समरसता को स्थापित कर राष्ट्र के समग्र विकास में सम्मानजनक सहयोग देना समय की आवश्यकता है।

ISSN No. : 0970-9398

हिंदी के प्रचार-प्रसार में दक्षिण भारतीय हिंदी शिक्षकों का योगदान

– डॉ. मिलन बिश्नोई
सहायक आचार्य
खाजा बंदानवाज विश्वविद्यालय, कलबुर्गी

भारत की सांस्कृतिक और भाषायी संरचना विश्व में अद्वितीय है। यहाँ सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ, विविध साहित्यिक परंपराएँ तथा अनगिनत सांस्कृतिक रूपायन एक साथ विद्यमान हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार हिंदी को देवनागरी लिपि में संघ की राजभाषा का दर्जा प्राप्त है, जबकि अष्टम अनुसूची में अन्य 21 भाषाओं को समान रूप से संवैधानिक मान्यता दी गई है। यह संवैधानिक व्यवस्था न केवल भाषायी विविधता के संरक्षण का प्रमाण है, बल्कि राष्ट्रीय एकता के संवर्धन का भी आधार है। हिंदी, अपने व्यापक प्रयोग और लचीलेपन के कारण, उत्तर भारत से लेकर पूर्वोत्तर, पश्चिम और दक्षिण भारत तक संपर्क–भाषा (Link Language) के रूप में विकसित हुई है।

दक्षिण भारत में हिंदी का प्रवेश और उसका प्रचार–प्रसार कोई हाल का घटनाक्रम नहीं है। इसके सूत्र आदिकाल तक पहुँचते हैं, जब संत कवियों और महापुरुषों ने हिंदी या हिंदी–संबंधी अपभ्रंश भाषाओं में रचनाएँ करके सांस्कृतिक संवाद स्थापित किया। उदाहरणार्थ, संत कबीर, तुलसी,गुरु नानक, मीरा बाई जैसे उत्तर भारतीय संत कवियों की रचनाएँ दक्षिण भारत तक पहुँचीं और वहीं की भाषाओं में अनूदित होकर जनमानस में लोकप्रिय हुईं। मध्यकाल में महाराष्ट्र, आँध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक के अनेक संतों ने हिंदी या ब्रजभाषा के पदों का प्रयोग कर भक्ति–आंदोलन की अखिल भारतीय एकता को सुदृढ़ किया। इस प्रकार हिंदी साहित्य का प्रभाव केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि दक्षिण भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना में भी स्थायी स्थान बनाया।

आधुनिक काल में, विशेषकर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में, हिंदी प्रचार का कार्य अधिक संगठित रूप से प्रारंभ हुआ। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (मद्रास), जिसे महात्मा गांधी ने 1918 में स्थापित करने में विशेष भूमिका निभाई, दक्षिण में हिंदी शिक्षण के संस्थानीकरण की दिशा में मील का पत्थर सिद्ध हुई। इस संस्था के माध्यम से हजारों शिक्षकों, प्राध्यापकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने विद्यालयों, महाविद्यालयों और जनजागरण आंदोलनों में हिंदी को प्रोत्साहित किया।

यद्यपि स्वतंत्रता–उपरांत काल में हिंदी को लेकर दक्षिण भारत में भाषायी पहचान और क्षेत्रीय स्वाभिमान के कारण समय–समय पर विरोध और तनाव के स्वर उभरे विशेषतः 1965 के राजभाषा आंदोलन के दौरान तथापि यह भी सत्य है कि शिक्षा, साहित्य, मीडिया, फिल्म, पर्यटन और व्यापार के क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ता रहा। इस वृद्धि में दक्षिण भारतीय हिंदी शिक्षकों की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है। उन्होंने न केवल भाषा–शिक्षण की परंपरा को विकसित किया, बल्कि अपनी मौलिक रचनाओं, अनुवादों, पाठयक्रम–निर्माण, शोध–निर्देशन और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से हिंदी को समाज के व्यापक वर्ग तक पहुँचाया।

वर्तमान युग में, जब डिजिटल मीडिया, ऑनलाइन शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अंतर–राज्यीय संवाद का दायरा निरंतर विस्तृत हो रहा है, दक्षिण भारतीय शिक्षकों का योगदान केवल कक्षागत शिक्षण तक सीमित नहीं रह गया है। वे ई–कंटेंट निर्माण, ऑनलाइन व्याख्यानों, शोधपरक लेखन, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, अंतरविश्वविद्यालयी संवादों तथा बहुभाषी सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से हिंदी को एक जीवंत, गतिशील और समकालीन अभिव्यक्ति–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर रहे हैं। दक्षिण भारत के ये शिक्षाविद् हिंदी को केवल भाषा के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रीय समन्वय और ज्ञान–विनिमय के सशक्त माध्यम के रूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

इस प्रकार, आदिकालीन संतों और भक्त कवियों से आरंभ हुई यह गौरवशाली परंपरा आज के प्राध्यापकों, शोधकर्ताओं और डिजिटल युग के शिक्षकों तक सतत प्रवाहित हो रही है। यह परंपरा न केवल हिंदी के भाषायी एवं सांस्कृतिक क्षितिज को व्यापक और समृद्ध बनाती है, बल्कि भारत की 'एकता में विविधता' की भावना को भी सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार का क्रम किसी आकस्मिक या सीमित अवधि का परिणाम नहीं,

बल्कि एक दीर्घकालिक सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया का अंग है। यद्यपि हिंदी के साहित्यिक और सांस्कृतिक सूत्र मध्यकाल में ही भक्ति आंदोलन के माध्यम से दक्षिण भारत तक पहुँच चुके थे, परंतु व्यवस्थित रूप से हिंदी शिक्षण और प्रचार–प्रसार का संगठित स्वरूप औपनिवेशिक काल में उभरकर सामने आया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, जब भारत में राष्ट्रीय चेतना का पुनर्जागरण हो रहा था, हिंदी को अखिल भारतीय संचार की भाषा के रूप में स्थापित करने की दिशा में अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रयास हुए। दक्षिण भारत में यह विचार विशेष रूप से महात्मा गांधी, राजगोपालाचारी (राजाजी), काका कालेलकर, पी. सुंदरैया जैसे नेताओं के माध्यम से व्यापक हुआ। महात्मा गांधी ने हिंदी को "भारतीय जनमानस की संपर्क भाषा" मानते हुए, इसे दक्षिण के प्रांतों में अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु 1918 में मद्रास (वर्तमान चेन्नै) में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हुई, जो आगे चलकर हिंदी शिक्षण, परीक्षाओं और प्रकाशन कार्य का प्रमुख केंद्र बनी। यह संस्था न केवल हिंदी को दक्षिण भारत के विद्यालयों और महाविद्यालयों के पाठयक्रम में स्थान दिलाने में सफल रही, बल्कि इसने स्थानीय शिक्षकों को प्रशिक्षित कर एक मजबूत मानव संसाधन भी तैयार किया।

हिंदी प्रचार–प्रसार की यह प्रक्रिया केवल राजनीतिक नीतियों अथवा संस्थागत प्रयासों तक सीमित नहीं रही, बल्कि समय के साथ उसने एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। इस आंदोलन को जन–जन तक पहुँचाने में दक्षिण भारतीय हिंदी–सेवी शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणास्पद रही है। उन्होंने केवल कक्षाओं में हिंदी का अध्यापन ही नहीं किया, बल्कि सांस्कृतिक आयोजनों, नाट्य मंचनों, कवि सम्मेलनों, साहित्यिक गोष्ठियों, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं तथा लोक–संवाद के विविध माध्यमों के द्वारा हिंदी के प्रति आत्मीयता, जागरूकता और जन–चेतना का व्यापक वातावरण निर्मित किया।

इन शिक्षकों ने हिंदी को केवल एक भाषा के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रीय समन्वय और भावनात्मक जुड़ाव के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित करने का सतत प्रयास किया। उनके समर्पण, श्रम और सांस्कृतिक प्रतिबद्धता ने हिंदी को दक्षिण भारत की धरती पर सम्मान, स्वीकार्यता और व्यापक जनाधार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

औपनिवेशिक काल के अंतिम चरण में और स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, दक्षिण भारत के विभिन्न शहरों जैसे मद्रास, बैंगलोर, मैसूर, तिरुवनंतपुरम और हैदराबाद, गुलबर्गा, धारवाड़ में हिंदी शिक्षण केंद्रों की स्थापना हुई, जिनके संचालन में स्थानीय शिक्षक अग्रणी भूमिका निभा रहे थे। इन शिक्षकों ने हिंदी को केवल एक भाषा के रूप में नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक समरसता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया।

शैक्षणिक संस्थानों में दक्षिण भारतीय शिक्षकों की भूमिका

दक्षिण भारत के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और विद्यालयों में हिंदी विषय के अध्यापन में स्थानीय शिक्षकों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। अनेक दक्षिण भारतीय विद्वानों ने हिंदी में स्नातकोत्तर एवं शोध स्तर की शिक्षा प्राप्त कर स्वयं को हिंदी साहित्य, भाषा–विज्ञान, व्याकरण तथा अनुवाद–अध्ययन के उन्नयन हेतु समर्पित किया। इन शिक्षकों ने न केवल हिंदी को एक भाषा के रूप में लोकप्रिय बनाया, बल्कि इसे एक सशक्त सांस्कृतिक और बौद्धिक माध्यम के रूप में स्थापित किया। उन्होंने विद्यार्थियों को हिंदी में शोध, सृजनात्मक लेखन और आलोचनात्मक अध्ययन के लिए प्रेरित किया, जिससे दक्षिण भारत में हिंदी अध्ययन की शैक्षणिक परंपरा सुदृढ़ हुई।

संस्थागत स्तर पर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, कर्नाटक विश्वविद्यालय, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद, हैदराबाद विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, बैंगलोर विश्वविद्यालय, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, पांडिचेरी विश्वविद्यालय, खाजा बंदानवाज विश्वविद्यालय, गुलबर्गा तथा वी.जी. वीमेंस कॉलेज, गुलबर्गा जैसे संस्थानों ने हिंदी के पाठयक्रम, अनुसंधान और प्रशिक्षण में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इसके साथ ही बैंगलोर स्थित प्रमुख निजी विश्वविद्यालय क्राइस्ट (डीम्ड–टू–बी) यूनिवर्सिटी, जैन (डीम्ड–टू–बी) यूनिवर्सिटी, अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी और गार्डन सिटी यूनिवर्सिटी ने भी हिंदी भाषा के अध्ययन–अध्यापन में सक्रिय भूमिका निभाई है। इन संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों ने कक्षा शिक्षण के साथ–साथ सेमिनार, कार्यशालाओं, साहित्यिक गोष्ठियों और शोध–परियोजनाओं के माध्यम से विद्यार्थियों में हिंदी भाषा के प्रति रुचि और आत्मविश्वास जगाया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP–2020) के लागू होने के पश्चात हिंदी भाषा के अध्ययन–अध्यापन के क्षेत्र में नए आयाम और व्यापक संभावनाएँ उभरकर सामने आई हैं। त्रिभाषा सूत्र, कौशल–आधारित भाषा शिक्षण, मातृभाषा–केंद्रित

शिक्षा तथा अंतर्विषयक दृष्टिकोण जैसी अवधारणाओं ने हिंदी को केवल एक शैक्षणिक विषय नहीं, बल्कि राष्ट्रीय संवाद, सांस्कृतिक समन्वय और ज्ञान–विनिमय की सशक्त भाषा के रूप में नई प्रतिष्ठा प्रदान की है।

इस परिवर्तित शैक्षिक परिदृश्य में दक्षिण भारतीय शिक्षकों की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय रही है। उन्होंने नई शिक्षा नीति की भावना के अनुरूप अभिनव एवं विद्यार्थी–केंद्रित शिक्षण पद्धतियों को अपनाते हुए हिंदी शिक्षण को अधिक प्रभावी, व्यावहारिक और तकनीक–संपन्न बनाया है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों, ई–लर्निंग सामग्री, स्मार्ट कक्षाओं, बहुभाषी संसाधनों और संवादात्मक शिक्षण तकनीकों के माध्यम से उन्होंने हिंदी अध्ययन को नई पीढ़ी के लिए अधिक सुगम, आकर्षक और उपयोगी बनाया है।

इसके साथ ही, दक्षिण भारतीय शिक्षकों ने हिंदी को वैश्विक परिप्रेक्ष्य से जोड़ने की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण पहल की है। अंतरराष्ट्रीय हिंदी अध्ययन, ऑनलाइन व्याख्यानमालाओं, शोधपरक गतिविधियों तथा बहुसांस्कृतिक शैक्षणिक संवादों के माध्यम से वे हिंदी को विश्व–पटल पर एक आधुनिक, ज्ञानपरक और समकालीन भाषा के रूप में स्थापित करने में सक्रिय योगदान दे रहे हैं।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी प्रचार–प्रसार की यात्रा सदैव सरल और निर्विघ्न नहीं रही है। विशेषतः दक्षिण भारत के कुछ राज्यों में बदलते राजनीतिक समीकरणों तथा क्षेत्रीय भाषा–आधारित विमर्शों के कारण समय–समय पर हिंदी शिक्षण को अनेक चुनौतियों और प्रशासनिक जटिलताओं का सामना करना पड़ा है। कुछ अवसरों पर राज्य विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थानों में भाषा–नीति संबंधी मतभेदों, अप्रत्यक्ष दबावों तथा हिंदी के प्रति संकोचपूर्ण दृष्टिकोण ने हिंदी अध्यापन के वातावरण को प्रभावित भी किया है।

तथापि इन परिस्थितियों के बीच भी हिंदी के प्रति समर्पित दक्षिण भारतीय शिक्षकों ने अद्भुत धैर्य, शैक्षणिक निष्ठा और सांस्कृतिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। उन्होंने हिंदी को किसी राजनीतिक आग्रह के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय एकता, सांस्कृतिक संवाद और भावनात्मक समरसता के सशक्त माध्यम के रूप में देखा और उसी भावना के साथ उसके प्रचार–प्रसार का कार्य निरंतर जारी रखा। अपने अध्यापन, साहित्यिक गतिविधियों, शोधपरक प्रयासों और सांस्कृतिक संवादों के माध्यम से इन शिक्षकों ने उत्तर और दक्षिण के मध्य भाषाई एवं सांस्कृतिक सेतु को न केवल सुरक्षित रखा, बल्कि उसे और अधिक सुदृढ़ एवं जीवंत बनाया है।

सामाजिक और सांस्कृतिक समरसता के संवाहक

दक्षिण भारतीय शिक्षकों ने हिंदी को केवल एक शैक्षिक विषय अथवा औपचारिक भाषा के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सामाजिक–सांस्कृतिक संवाद, राष्ट्रीय एकात्मता और सामुदायिक समरसता के सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके प्रयासों ने हिंदी शिक्षण को कक्षा–कक्ष की सीमाओं से बाहर निकालकर जनजीवन, सांस्कृतिक चेतना और अंतरभाषिक सहभागिता से गहराई से जोड़ा है।

इन शिक्षकों का योगदान बहुआयामी और दूरगामी रहा है। उन्होंने पाठयपुस्तक–आधारित शिक्षण से आगे बढ़कर सांस्कृतिक कार्यक्रमों, नाट्य मंचनों, लोक–परंपराओं पर आधारित संवादों, साहित्यिक गोष्ठियों, अनुवाद–परियोजनाओं तथा बहुभाषिक संयुक्त पहलों के माध्यम से हिंदी को जनसामान्य के अनुभव और अभिव्यक्ति की भाषा बनाने का सतत प्रयास किया है। विशेष रूप से, हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के मध्य अनुवाद एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान की गतिविधियों ने विभिन्न भाषायी समुदायों के बीच पारस्परिक सम्मान, आत्मीयता और समझ को सुदृढ़ किया है।

उनके इन प्रयासों का प्रभाव केवल शैक्षणिक संस्थानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि क्षेत्रीय सामुदायिक जीवन, सांस्कृतिक वातावरण और अंतरभाषिक संवाद की व्यापक प्रक्रिया में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वस्तुतः, दक्षिण भारतीय शिक्षकों ने हिंदी को विविध भारतीय भाषाओं और संस्कृतियों के मध्य सेतु के रूप में विकसित कर राष्ट्रीय सांस्कृतिक समन्वय की भावना को नई ऊर्जा प्रदान की है। दक्षिण भारतीय शिक्षकों के सुप्रयासों की एक बानगी निम्नलिखित हैः

1. शिक्षण–संस्थानों द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम (हिंदी दिवस, हिंदी–सप्ताह, कवि सम्मेलन, नाटय–प्रस्तुति, कहानी–पाठ, निबंध एवं भाषण प्रतियोगिताएँ) ने विद्यार्थियों और स्थानीय समाज को हिंदी से भाविक और व्यावहारिक रूप से जोड़ने का कार्य किया। इन आयोजनों में शिक्षकों की भूमिका न केवल आयोजक की रही, बल्कि वे मार्गदर्शक, समस्या–समाधानकर्ता और प्रेरक के रूप में सक्रिय रहे हैं, उन्होंने स्थानीय विषयों को हिंदी माध्यम में प्रस्तुत करने के अवसर दिए, स्थानीय लोककथाओं और रीति–रिवाजों का हिंदी अनुवाद कर सामुदायिक स्मृति को संग्रहित किया तथा बहुभाषिक मंचों पर पारस्परिक संवाद सक्षम किया।
2. नाट्य और साहित्यिक सक्रियता ने भाषा–जानकारी

को सजीव कर दिया। शिक्षक–निर्देशित नाटय समूहों ने स्थानीय विषयों पर हिंदी नाटय मंचन कर भाषा के भावनात्मक और सामाजिक पक्ष को उजागर किया, कवि–सम्मेलनों व कहानी–पाठ ने भाषा–रुचि को बढ़ाया तथा साहित्यिक कार्यशालाओं ने रचनात्मक लेखन हेतु मंच उपलब्ध कराया। इन गतिविधियों से विद्यार्थियों में अभिव्यक्ति कौशल, आत्मविश्वास तथा सांस्कृतिक सहानुभूति विकसित हुई है। परिणामतः हिंदी का स्वीकार्य स्वरूप भीतर से बाह्य समाज तक विस्तृत हुआ।

3. अनुवाद और तुलनात्मक साहित्य पर शिक्षकों का कार्य सांस्कृतिक सेतु बनाने में निर्णायक रहा है। दक्षिण भारतीय भाषाओं के प्रमुख ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद तथा हिंदी साहित्य का द्रविड़ भाषाओं में अनुवाद सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ाते हैं। शिक्षकों द्वारा निर्देशित अनुवाद परियोजनाएँ, द्विभाषिक पाठयपुस्तकें और शब्दकोश–परियोजनाएँ भाषायी अवरोध घटाकर ज्ञान–सामूहिकता को बढ़ाती हैं और शोध के लिए समृद्ध स्रोत उपलब्ध कराती हैं।

4. सामुदायिक सहभागिता और आउटरीच गतिविधियाँ जैसे ग्राम स्तर पर हिंदी कक्षाएँ, स्वयंसेवी शिक्षण शिविर, रेडियो/स्थानीय टीवी कार्यक्रमों में भाषण–सत्र तथा डिजिटल माध्यमों (यूटयूब चैनल, पॉडकास्ट, वेबिनार) द्वारा प्रकाशित शिक्षण–सामग्री ने हिंदी को शहरी अकादमी से निकाल कर ग्राम–नगर के संवाद में स्थापित किया। विशेषकर बहुभाषिक एवं अल्पसंख्यक पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के लिए ऐसे कार्यक्रम सहज प्रवेशद्वार बने, जिससे सामाजिक समावेशिता को बल मिला।

NEP–2020 के अनुप्रयोग के संदर्भ में शिक्षकों ने सांस्कृतिक गतिविधियों को पाठयक्रम के साथ जोड़कर परियोजना–आधारित शिक्षण, अंतर्विषयक कार्य और अनुभवात्मक शिक्षण के माध्यम से भाषा–अधिगम को व्यावहारिक बनाया गया। इस नीति के बहुभाषिक सिद्धांतों ने शिक्षकों को स्थानीय सामग्री, अनुवाद तथा क्षेत्रीय–सांस्कृतिक विषयों को पाठय में समाहित करने हेतु वैधता प्रदान की, जिससे भाषा–संवर्धन और सांस्कृतिक आत्म–सम्मान दोनों को प्रोत्साहन मिला।

फिर भी, इस प्रयत्न में चुनौतियाँ भी रही है भाषाई मामलों का राजनीतिकरण, संसाधन–अभाव, अनुवाद एवं प्रकाशन के लिए वित्तीय सीमाएँ, शिक्षकों पर प्रशासनिक भार और कभी–कभी शैक्षणिक कार्यभार के कारण सामुदायिक गतिविधियों के लिए सीमित समय। कुछ प्रदेशों में भाषा–नीति संबंधी संवेदनशीलताओं के चलते सार्वजनिक कार्यक्रमों को स्वीकृति प्राप्त करने में देरी या व्यवधान का सामना भी करना पड़ा। इन बाधाओं के बावजूद, शिक्षकों की समर्पित पहल ने अक्सर पारस्परिक समझ और सामाजिक जुड़ाव को बनाए रखा।

अंततः दक्षिण भारतीय शिक्षकों द्वारा संचालित सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यक्रम न केवल भाषा–ज्ञान बढ़ाने में सहायक रहे, बल्कि उन्होंने उत्तर–दक्षिण भाषिक दूरी को घटाकर एक व्यावहारिक भाषा–सेतु का निर्माण किया। सुझाव के रूप में, इन पहलों को दीर्घकालिक प्रभावशीलता देने हेतु संस्थागत पूँजी, अनुदान आधारित अनुवाद परियोजनाएँ, डिजिटल आर्काइविंग, शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यशालाएँ तथा नीति–स्तर पर NEP–2020 के अनुरूप वित्तीय व प्रशासनिक सहयोग आवश्यक है तभी यह सांस्कृतिक समरसता के संवाहक और अधिक प्रभावी एवं सतत बनकर रहेंगे।

प्रेरणास्पद शिक्षकों के उदाहरण

प्रो. एस. वी. एस. नारायण राजू तमिलनाडु के अकादमिक और सांस्कृतिक जगत में एक प्रतिष्ठित नाम हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा को केवल एक संचार माध्यम के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत अनुभव एवं सांस्कृतिक सेतु के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी बहुभाषिक दक्षता हिंदी, तमिल, तेलुगु एवं अंग्रेजी में समान रूप से निहित है। शिक्षण एवं शोध में उन्होंने स्थानीय सांस्कृतिक तत्वों को हिंदी भाषा के माध्यम से इस प्रकार आत्मसात कराया कि तमिल और तेलुगु लोककथाएँ, ऐतिहासिक गाथाएँ एवं सामाजिक मुद्दे विद्यार्थियों एवं साहित्य प्रेमियों के लिए न केवल सहजगम्य बने, बल्कि भारतीय संस्कृति की समग्रता और गहनता को भी सशक्त रूप से प्रदर्शित किया।

शोध और मार्गदर्शन के क्षेत्र में प्रो. नारायण राजू की भूमिका प्रेरणादायक रही है। उनके निर्देशन में लगभग 94 शोधार्थियों ने M.Phil. और Ph.D. की डिग्रियाँ प्राप्त की हैं। कोविड–19 के दौरान उन्होंने शिक्षा के डिजिटल रूपांतरण को तीव्रता से अपनाया और यूट्यूब पर लगभग 1,200 शैक्षणिक वीडियो उपलब्ध कराए, जिनमें भारतीय ज्ञानपरंपरा, रामचरितमानस, सूरदास, बिहारी, कबीर, घनानंद, कामायनी तथा समकालीन साहित्य के विविध पहलुओं पर गहन व्याख्यान सम्मिलित हैं। इन वीडियो ने न केवल विद्यार्थियों के लिए अध्ययन सामग्री का अमूल्य स्रोत प्रदान किया, बल्कि हिंदी शिक्षा को वैश्विक स्तर पर सुलभ बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राष्ट्रीय स्तर पर वे अनेक पाठयक्रम–निर्माण समितियों

के सक्रिय सदस्य रहे हैं तथा विभिन्न संस्थानों में पद पर सेवाएँ प्रदान कर चुके हैं। अंतरराष्ट्रीय मंच पर भी उनका योगदान उल्लेखनीय है, जब भारत सरकार ने उन्हें विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में बुल्गारिया भेजा, वहाँ उन्होंने हिंदी भाषा और संस्कृति के प्रसार में अपना बखूबी योगदान दिया।

वर्तमान में प्रो. नारायण राजू तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत हैं। उनका व्यक्तित्व परंपरा और आधुनिकता, क्षेत्रीयता और वैश्विकता तथा भाषा और संस्कृति के मध्य एक सेतु का प्रतीक है। उनके कार्यों ने दक्षिण भारत ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी हिंदी भाषा की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ किया है। उनका जीवन और कार्य यह प्रमाणित करता है कि जब दृष्टि व्यापक और उद्देश्य स्पष्ट हो, तो भाषा सीमाओं को पार कर, लोगों के हृदयों को जोड़ने का माध्यम बन सकती है।

प्रोफेसर ऋषभदेव शर्मा हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित विद्वान, कवि, लेखक, समीक्षक और संपादक हैं, जिनका योगदान दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार तथा शिक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा से जुड़े रहे और वहाँ से सम्मानपूर्वक सेवानिवृत्त हुए। वर्तमान में वे मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद में मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता के रूप में सक्रिय हैं। उनकी शैक्षणिक यात्रा हिंदी साहित्य, भाषा–शास्त्र, आलोचना तथा अनुवाद के क्षेत्र में गहन शोध और प्रभावशाली शिक्षण से युक्त है।

प्रो. शर्मा की रचनात्मकता कविताओं, आलोचनात्मक लेखों, संपादन कार्यों तथा भाषाविज्ञान के अध्ययन तक फैली हुई है। उन्होंने हिंदी साहित्य के अध्ययन को केवल शैक्षणिक सन्दर्भ तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक–सांस्कृतिक विमर्श से जोड़ते हुए आधुनिक संदर्भों में भी प्रभावी बनाया। उनका मानना है कि भाषा और साहित्य सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक समरसता के संवाहक हैं। इसी दृष्टिकोण के कारण वे तुलनात्मक साहित्य, भाषाई सांस्कृतिक अध्ययन और अनुवाद कार्यों में भी सक्रिय रहे हैं।

वे अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, कार्यशालाओं और शोध परियोजनाओं में प्रमुख भूमिका निभा चुके हैं। साहित्यिक संपादन के क्षेत्र में भी उन्होंने हिंदी साहित्य की समृद्धि के लिए कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं और विशेषांकों का संपादन किया है, जिससे हिंदी साहित्य की नयी दिशाओं को मजबूती मिली। उनकी संपादकीय योग्यता और आलोचनात्मक दृष्टि ने हिंदी साहित्य में नवाचार और शोध को प्रोत्साहित किया।

डिजिटल युग के आगमन के साथ, प्रो. शर्मा ने हिंदी साहित्य को नवाचार की ओर ले जाने का कार्य भी किया है। कोविड–19 महामारी के दौरान उन्होंने हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों पर शैक्षणिक ई–कंटेंट तैयार किया, जिससे देश–विदेश के विद्यार्थी और शोधार्थी लाभान्वित हुए। वे हिंदी साहित्य के कवि, कहानीकार, आलोचक और प्रमुख साहित्यिक आंदोलनों की व्यापक व्याख्या डिजिटल माध्यमों के जरिए उपलब्ध कराते हैं, जो शैक्षणिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

उनके मार्गदर्शन में अनेक शोधार्थियों ने सफलतापूर्वक लघु शोध एवं पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच बहुभाषिक संवाद को सशक्त किया है, जिससे क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर भाषाई एकता और सांस्कृतिक समरसता को बल मिला है।

प्रोफेसर सी. जयशंकर बाबू, पांडिचेरी विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष, समकालीन हिंदी अध्यापन, तुलनात्मक साहित्य, भाषिक–सांस्कृतिक विमर्श एवं अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान रखते हैं। उन्होंने दक्षिण भारतीय भाषाओं में विशेषतः तमिल और तेलुगु के साथ हिंदी के अंतर्संबंधों पर केंद्रित शोध–परंपरा को न केवल सुदृढ़ किया, बल्कि बहुभाषिक संदर्भ में साहित्य की नई व्याख्याओं को भी अकादमिक विमर्श में स्थापित किया। उनके मार्गदर्शन में शोधार्थियों ने बहुभाषी साहित्यिक संवाद, अनुवाद के विविध आयाम तथा भाषा–प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया है। उन्होंने यूजीसी की 'स्वयं' (SWAYAM) योजना के अंतर्गत भाषा–प्रौद्योगिकी का परिचय तथा अन्य रोजगारोन्मुख पाठयक्रम विकसित कर हिंदी के ई–कंटेंट को समृद्ध बनाया है। प्रो. बाबू के शैक्षिक योगदान को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है, जिसका प्रमाण भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय शिक्षक सम्मान (2024) है। इसके अतिरिक्त, वे गृह मंत्रालय, भारत सरकार की हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में हिंदी भाषा नीति और कार्यान्वयन में भी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। उन्होंने तकनीक–आधारित शिक्षण, बहुभाषिक संगणन, न्यू मीडिया अध्ययन और डिजिटल ह्यूमैनिटीज के क्षेत्र में 30 से अधिक विशिष्ट पाठयक्रमों का निर्माण किया है तथा सैकड़ों कार्यशालाओं के माध्यम से विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं को नवीन शैक्षणिक प्रवृत्तियों से परिचित कराया है। इस प्रकार, प्रो. जयशंकर बाबू न केवल हिंदी के विद्वान अध्येता हैं, बल्कि वे हिंदी के अकादमिक और डिजिटल भविष्य को आकार देने वाले दूरदर्शी शिक्षाविद् है।

प्रोफेसर आर. एस. सर्राजु हिंदी भाषा और साहित्य

ISSN No. : 0970-9398

के क्षेत्र में एक सम्मानित विद्वान एवं शिक्षाविद् हैं, जिन्होंने तुलनात्मक साहित्य, कार्यात्मक हिंदी, अनुवाद अध्ययन और तकनीकी शब्दावली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व प्रमुख के रूप में न केवल शोध एवं शिक्षण को प्रोत्साहित किया, बल्कि दलित, आदिवासी एवं अनुवाद अध्ययन जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में भी नई दिशाएँ प्रदान कीं। उनके निर्देशन में अनेक शोधार्थियों ने पी.एच.डी. तथा एम.फिल. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं, जिनके शोध विषय हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के अंतःसंबंधों से जुड़े रहे।

तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में प्रो. सर्राजु का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। वे भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अधीन 'भारतीय भाषा समिति' में वरिष्ठ विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत हैं, जहाँ उन्होंने हिंदी भाषा के तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली के विकास एवं मानकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस कार्य से हिंदी को समकालीन तकनीकी और व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रभावी बनाने में सहायता मिली है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP–2020) के क्रियान्वयन में भी प्रो. सर्राजु की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने हिंदी शिक्षा को बहुभाषीय, प्रयोजनमूलक और अनुभवात्मक बनाने हेतु विभिन्न केंद्रीय हिंदी संस्थानों जैसे केंद्रीय हिंदी निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के शैक्षणिक मंडलों में सक्रिय भागीदारी दी है। इनके मार्गदर्शन में हिंदी शिक्षण और अनुसंधान के लिए रणनीतिक रूपरेखा विकसित हुई है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उन्होंने हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा दिया है। वे अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण और अनुवाद कार्यों में सक्रिय रहे हैं तथा राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में हिंदी भाषा, साहित्य और अनुवाद के विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करते रहे हैं।

साहित्यिक एवं शोध कार्यों के माध्यम से उन्होंने हिंदी भाषा विज्ञान, तुलनात्मक साहित्य, अनुवाद, और भाषा नीति के क्षेत्रों में अमूल्य योगदान दिया है। उनकी प्रकाशित पुस्तकें और शोध–पत्र हिंदी के समकालीन विमर्श को समृद्ध करते हैं और भाषा के बहुआयामी विकास का परिचायक हैं।

अतः प्रो. आर. एस. सर्राजु ने हिंदी भाषा को केवल एक शैक्षणिक विषय के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक–सांस्कृतिक, तकनीकी और बहुभाषीय संवाद के माध्यम के रूप में विकसित करने में अद्वितीय भूमिका निभाई है। उनका कार्य हिंदी के समकालीन विकास, अनुसंधान और तकनीकी शब्दावली के मानकीकरण में मील का पत्थर साबित हुआ है।

दक्षिण भारत में हिंदी शिक्षकों के समक्ष अनेक गंभीर चुनौतियाँ हैं, जो हिंदी शिक्षा के प्रचार–प्रसार में बाधक बनी हुई हैं। सबसे बड़ी समस्या भाषिक विरोध की है, क्योंकि दक्षिण भारत की क्षेत्रीय भाषाएँ जैसे तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम स्थानीय लोगों की पहचान और गर्व का स्रोत हैं। ऐसे में हिंदी को बाहरी भाषा के रूप में देखा जाता है, जिससे हिंदी को स्वीकार्यता मिलने में कठिनाई होती है। इसके अलावा, हिंदी शिक्षण के लिए आवश्यक संसाधनों की भारी कमी भी एक बड़ी बाधा है। विद्यालयों और संस्थानों में पर्याप्त पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री, आधुनिक तकनीकी उपकरण और समर्पित प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाने से शिक्षकों का कार्यभार बढ़ जाता है और शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसके साथ ही, पत्र–पत्रिकाएँ, अखबार और मीडिया संस्थान भी हिंदी को अपेक्षित प्राथमिकता नहीं देते, जिससे हिंदी के प्रति जनता का रुझान कम होता है। क्षेत्रीय भाषाओं के साथ–साथ अंग्रेजी की बढ़ती महत्ता ने हिंदी को सीखने में छात्रों की रुचि को और सीमित कर दिया है। रोजगार के अवसरों में कमी भी हिंदी के प्रचार–प्रसार को प्रभावित करती है क्योंकि हिंदी से जुड़े नौकरी के अवसर दक्षिण भारत में सीमित हैं, जिससे छात्र और युवा हिंदी सीखने से कतराते हैं। प्रशासनिक स्तर पर भी हिंदी शिक्षकों को उचित सम्मान, प्रोत्साहन और पदोन्नति के अवसर नहीं मिलते, जो उनकी कार्यक्षमता और मनोबल को प्रभावित करता है। इन तमाम कठिनाइयों के बावजूद, हिंदी शिक्षक अपनी लगन, धैर्य और रचनात्मकता से हिंदी को दक्षिण भारत में एक स्थायी स्थान दिलाने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। उन्होंने स्थानीय भाषा–परिसर और छात्रों की मानसिकता को समझते हुए शिक्षण के नए–नए तरीके अपनाए हैं, जिससे हिंदी शिक्षा की जड़ों को मजबूत किया जा सका है।

संदर्भः

1. हिंदी प्रचार सभा, मद्रास – प्रकाशित इतिहास एवं वार्षिक प्रतिवेदन।
2. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय – भाषा नीति दस्तावेज, 2020।
3. https://shodhganga.inflibnet.ac.in
4. https://india.gov.in/topics/hindi-language
5. https://sahityakunj-net/हिंदी के प्रचार प्रसार में दक्षिण का योगदान – पद्मावती। साहित्य कुंज।

ISSN No. : 0970-9398

आधुनिक भारतीय भाषाओं की लिपि, ध्वनि एवं रूपगत एकता का विश्लेषण

– संजय कुमार पाण्डेय
मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
एचएएल मुख्यालय, बेंगलूरु

भारतीय संस्कृति की एकता को बनाए रखने में, भारतीय भाषाओं की भूमिका निस्संदेह ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। भाषायी आधार पर राज्यों का निर्धारण भले ही भारत को विभिन्न भागों में क्यों न बाँटता हो, परंतु राष्ट्रीय एकता का स्वर इनकी भारतीयता को अलग नहीं कर पाता। किसी भी देश की भाषायी समानता ही उसकी संस्कृति की अमिट पहचान बनती है। इस तथ्य से कोई भी इंकार नहीं कर सकता है। आज भी संपूर्ण देश भाषायी भिन्नता होने के बावजूद हिंदी की एकसूत्र में विभिन्न भारतीय भाषाओं को पिरोने की विशेषता से कभी भी मुख मोड़ नहीं सकता। हिंदी भाषा राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा करते हुए सभी भारतीय भाषाओं के मूल में रच–पच गई है। आज यह भारत की सभी भारतीय भाषाओं से पुष्पित–पल्लवित होती चली जा रही है। भारतीयता की इसी भाषायी एकता की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर यह विषय भारत की एकता और अखंडता का मूल आधार सिद्ध होगा।

यदि हम खगोलवेत्ताओं की मानें, तो उनके शोध के आधार पर विश्व की आयु लगभग 15 अरब वर्ष मानी जाती है। आज से लगभग 50 करोड़ से एक अरब वर्ष पहले इस धरती पर साधारण जीवों का आविर्भाव हुआ। आज जिसे हम मानव की संज्ञा देते हैं, ऐसे प्राणी का विचरण मात्र 600,000 वर्ष पहले प्रारंभ हुआ। लेकिन जब हम 'सभ्य मानव' की बात करते हैं, तो पाते हैं कि सभ्य मानव का विकास लगभग दस हजार वर्ष पहले से ही देखा गया है।

मानव के विकास में वाणी के बाद सबसे बड़ा विकास लेखन का रहा है। मानव का बहुमुखी विकास अपनी वाणी को लिपिबद्ध करने के बाद ही हुआ। कभी भी बोले हुए भाव स्थायी नहीं होते, जब तक कि वे लिपिबद्ध न हुए हों, तब जाकर वह चिरस्थायी हो पाते हैं। हम सभी जानते हैं कि भाषा का आधार ध्वनि है। भाषा श्रव्य होती है। उन्नीसवीं शताब्दी तक भी भाषा को लिपिबद्ध करने के अलावा कोई अन्य स्थायी रूप नहीं था। सन् 1877 में जब फोनोग्राम का आविष्कार हुआ और आगे चलकर टेप रिकार्डरों, अब तो कंप्यूटर का भी इस्तेमाल भाषा को स्थायी रूप देने में सहायक साधन के रूप में कारगर सिद्ध हो चुका है।

उपर्युक्त के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि लिपि श्रव्य भाषा को दृष्टिगोचर बनाने का प्रतीक चिह्नों का एक अद्भुत संयोजन है। जिस किसी साहित्य को लिपिबद्ध रूप प्राप्त हो चुका है, आज के समय में मात्र उनका ही अस्तित्व अक्षुण्ण है। अन्य तो लुप्त प्राय भाषा, बोली की श्रेणी में आती जा रही हैं। ऐसा कहा जाता है कि लगभग दस हजार वर्ष पूर्व नव पाषाण युग की शुरुआत हुई, जिसमें पत्थर के औजार बने, कृषि कार्य का प्रारंभ हुआ और गाँवों की स्थापना होने लगी। किंतु इस युग में लेखन कार्य की शुरुआत नहीं हो पाई, परंतु कुछ सरल रूप में अंक–संकेत एवं भावों से संबंधित संकेत अस्तित्व आने लगे थे। छह हजार वर्ष पूर्व का युग ताम्रयुग कहलाया। इस युग में ताँबे और काँसे के औजार बनने लगे। इसी युग में नगरों की स्थापना होने लगी। पुरोहित–राजाओं का केंद्रीय शासन भी शुरू हो गया। अब राजकाज को चलाने के लिए आदेश देने के लिए 'लिपि' की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसी कारण, ताम्रयुग में बहुत सी लिपियों ने जन्म लिया। सिंधु सभ्यता, मेसोपोटामिया और मिश्र तथा चीन की प्राचीन सभ्यताएँ ताम्र–युग की ही सभ्यताएँ थीं। इन सभी प्राचीन मान्यताओं ने लिपियों को जन्म दिया। लेकिन ताम्रयुग की ये लिपियाँ आज की अधिकांश लिपियों की भाँति वर्णमालात्मक नहीं थीं। लिपियों का प्रारंभ तो चित्र–संकेतों, भाव–चित्रों के माध्यम से हुआ।

इतिहास के पन्नों में अशोक द्वारा अपने लेखों को धम्म लिपि का नाम दिया गया है। लेकिन बौद्धों, जैनों तथा ब्राह्मण–धर्म के ग्रंथों के अनेक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' लिपि ही रहा होगा। हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में प्रत्येक प्राचीन या अज्ञेय तथ्यों की उत्पत्ति को 'ब्रह्मा' द्वारा की गई उत्पत्ति के रूप में मान लिया जाता है। संसार की अन्य पुरालिपियों की उत्पत्ति के बारे में भी यही देखने को मिलता है कि प्रायः उनके जनक कोई न कोई दैवी पुरुष ही माने गए हैं हमारे यहाँ भी 'ब्रह्मा' को 'ब्राह्मी' लिपि का जन्मदाता माना जाता रहा है और इसीलिए हमारे देश की इस प्राचीन लिपि का नाम 'ब्राह्मी' पड़ा है।

आज के भारत की सारी लिपियाँ ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। द्रविण भाषा–परिवार की दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं की लिपियाँ भी ब्राह्मी लिपि से ही विकसित हुई हैं। देश, भाषा और धर्म

की सीमाओं को लाँघकर ब्राह्मी लिपि विदेशों में भी पहुँची। श्रीलंका की वर्तमान सिंहल लिपि, ब्राह्मी लिपि से निर्मित है। वर्तमान तिब्बती लिपि का निर्माण ब्राह्मी लिपि से हुआ है। पूर्वी मध्य एशिया में ब्राह्मी लिपि का खूब प्रयोग हुआ है। दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों की अनेक वर्तमान लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से निर्मित हैं। जापान की दो अक्षर मालाएँ–काताकाना और हिराकाना–ब्राह्मी वर्णमाला के प्रभाव के अंतर्गत ही अस्तित्व में आई हैं। चूँकि भारत की सारी लिपियाँ और कुछ पड़ोसी देशों की लिपियों भी, ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई हैं, इसलिए लिपि की दृष्टि से सारा देश एक सूत्र में बँधा हुआ है। आज के भारत की सारी लिपियाँ ब्राह्मी से व्युत्पन्न होने पर भी हमारे देश के पंडित, सदियों पहले प्राचीन ब्राह्मी को भूल चुके थे। दिल्ली के सुलतान फिरोजशाह तुगलक ने 1356 में अशोक स्तंभ टोपरा एवं मेरठ से मंगवाकर दिल्ली में स्थापित करवाये थे। इन स्तंभों पर उत्कीर्ण लेखों को पढ़ने के लिए फिरोज तुगलक ने पंडितों को आमंत्रित किया था, किंतु उस समय एक भी ऐसा पंडित नहीं मिला, जो अशोक के इन ब्राह्मी लेखों को पढ़ सके। अकबर भी इन स्तंभों में लिखे को जानने के लिए अत्यंत उत्सुक था, किंतु उसके भी समय कोई ऐसा पंडित नहीं मिला, जो इन उत्कीर्ण लेखों को पढ़ सके। इससे एक बात तो स्पष्ट होती है कि पुरानी ब्राह्मी लिपि का ज्ञान भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना के पूर्व ही लुप्त हो गया था। अट्ठारहवीं सदी के उत्तराद्ध में अंग्रेजों के पैर भारत में जम गए, तो उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति के अध्ययन की ओर भी कुछ ध्यान दिया।

सर विलियम जोन्स (1746–1794 ई.) के प्रयासों के फलस्वरूप एशिया के इतिहास, पुरातत्व, कला, विज्ञान, साहित्य आदि के अनुशीलन के लिए 1784 ई. में 'कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना हुई। तब से यूरोप के कई विद्वान भारतीय पुरातत्त्व के अनुशीलन में जुट गए और पुरालेखों की खोज तथा उनके अध्ययन का काम भी शुरु हो गया। विलियम जोन्स के बाद चार्ल्स विल्किन्स 'पहले विदेशी विद्वान हैं, जिन्होंने संस्कृत का गहन अध्ययन किया था। विल्किन्स को दसवीं सदी के आसपास के कुछ लेखों को पढ़ने में सफलता मिली और उन्होंने गुप्त काल के लेखों की लगभग आधी वर्णमाला को भी पहचान लिया। लेकिन अशोक के अभिलेख करीब छह सौ साल अधिक पुराने थे, इसलिए उन्हें आसानी से पढ़ पाना संभव नहीं था। आरंभ में यूरोप के पुरालिपि विदों की कल्पना थी कि अशोक के लेखों की भाषा संस्कृत है। इसलिए भी अशोक की ब्राह्मी लिपि का उद्‌घाटन होने में कुछ देरी हुई।

अंत में जेम्स प्रिन्सेप (1799–1840 ई.) ने ब्राह्मी लिपि की वर्णमाला का उद्‌घाटन किया। प्रिन्सेप कलकत्ता की टकसाल के अधिकारी थे और एशियाटिक सोसायटी के सेक्रेटरी भी। उन्होंने गुप्त लिपि की वर्णमाला को पढ़ने में भी सहयोग दिया था। अब वे अधिक पुराने लेखों को पढ़ने में लग गए। उन्होंने कई स्थानों के शिलालेखों के छापे मँगवाए और अक्षरों को भी पहचान लिया। इस प्रकार जेम्स प्रिन्सेप ने पालि लिपि की लगभग पूरी वर्णमाला का उघ्द्‌घाटन किया।

लगभग 1000 ई. से लिपि के विकास में प्रादेशिक भाषाएँ भी योगदान देने लगीं। ऐसा देखा गया है कि 1000 ई. तक के प्रायः सारे लेख संस्कृत या प्राकृत भाषाओं में हैं। संस्कृत भाषा व्याकरण के नियमों में कसकर बंधी हुई भाषा है। उस समय से ही सारे देश में इस भाषा का पठन–पाठन जारी रहा। इसलिए इस स्थिर ब्राह्मी भाषा ने लिपि की विभिन्न शैलियों को एक–दूसरे से अधिक दूर नहीं जाने दिया। सारे देश में जन–जन की भाषाएँ प्राकृतों से काफी आगे बढ़ गई थीं। अब प्रादेशिक भाषाएँ जन्म ले रही थीं। दक्षिण भारत में भी शक्तिशाली राज्यों का उदय हो चुका था और वहाँ अपनी स्वतंत्र भाषाएँ थीं, जो द्रविड़ भाषा–परिवार की थीं। भाषाओं की इस विविधता का अब लिपियों पर भी असर पड़ता स्वाभाविक ही था। एक बात और भी गौरतलब है कि नौवीं–दसवीं सदी में नागरी लिपि लगभग एक सार्वदेशिक लिपि बन चुकी थी। साथ ही साथ प्रादेशिक लिपियों ने भी बनना प्रारंभ कर दिया था। फिर इन प्रादेशिक लिपियों को प्रादेशिक भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों के अनुरूप बनाया गया। भारत के कई प्रदेशों में संस्कृत के लिए कुछ विशेष वर्णमालाओं का अस्तित्व बना रहा। इन प्रादेशिक लिपियों के बारे में प्रमुख बात यह है कि एक तरफ इनके अक्षर प्राचीन ब्राह्मी की शैलियों के अक्षरों से मिलते हैं और दूसरी तरफ आजकल की प्रादेशिक लिपियों के अक्षरों से भी मिलते हैं। उनमें से कुछ प्रमुख प्रादेशिक लिपियों के बारे में निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

जैसे–

(i) शारदा लिपि
(ii) बंगला–असमिया लिपि
(iii) कलिंग लिपि
(iv) पल्लव ग्रंथ लिपि
(v) तेलुगु – कन्नड लिपि
(vi) तमिल लिपि
(vii) मराठी भाषा–लिपि और मोड़ी लिपि
(viii) गुजराती लिपि

(i) **शारदा लिपि** – इस लिपि का जन्म कश्मीर में हुआ। शारदा को कश्मीर की आराध्य देवी माना जाता है, इसलिए कश्मीर को 'शारदा देश' या

'शारदा मेडल' भी कहते हैं। शारदा देश की लिपि होने से इसका नाम शारदा लिपि पड़ा।

ईसा की दसवीं सदी में सिद्धमातृका लिपि से कश्मीर की इस शारदा लिपि का जन्म हुआ। इस बात की पुष्टि अल्बेरुनी अपने ग्रंथ (1030 ई.) में करते हैं। वाराणसी की भाँति कश्मीर भी संस्कृत विद्या का एक प्रमुख केंद्र रहा। वाराणसी और कश्मीर के पंडित अपने ग्रंथ में एक ही लिपि का प्रयोग करते होंगे, शायद इसीलिए अल्बेरुनी ने कश्मीर और वाराणसी की लिपि के एक होने की पुष्टि की। यही थी सिद्धमातृका लिपि, जिससे कश्मीर में शारदा लिपि ने जन्म लिया। इसी शारदा लिपि को घसीटकर लिखने के कारण एक नई लिपि बनी, जिसे टाकरी लिपि कहते हैं। पंजाब, जम्मू और पहाड़ी प्रदेश में इस लिपि का प्रचार रहा है। यह एक प्रकार की महाजनी लिपि है, जिसमें स्वर–मात्राओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

आज सिक्ख लोग जिस गुरुमुखी लिपि का प्रयोग करते हैं, इसका प्रयोग सोलहवीं शताब्दी में देखा गया। पंजाब में पहले लंडा नामक एक प्रकार की महाजनी लिपि का प्रचलन था। जब इस लिपि में लिखे गए सिक्खों के धर्म ग्रंथ को शुद्ध पढ़ पाना संभव नहीं हो सका, तब जाकर इस गुरुमुखी लिपि ने जन्म लिया। ऐसा कहा जाता है कि सिक्खों के गुरु अंगद (1538–1582 ई) ने शारदा लिपि के आधार पर इसे जन्म दिया। अब यह पंजाबी भाषा की प्रमुख लिपि बन चुकी है।

(ii) **बंगला–असमिया लिपि** – बंगला और असमिया लिपियाँ लगभग एक–सी हैं। इनका विकास साथ–साथ ही हुआ है। बंगला में 'व' तथा 'ब' में कोई भेद नहीं है, परंतु असमिया में 'व' के नीचे एक लकीर रहती है। असम की इस लिपि को 'असमाक्षर' कहते हैं।

बंगला लिपि का आरंभ दसवीं सदी के पूर्वी भारत के लेखों से उजागर होता है। बारहवी सदी से बंगला लिपि अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना लेती है। कामरूप के शासकों के लेख पूर्ण रूप मे बंगला लिपि में ही हैं। कामरूप के राजा वैद्यदेव का राजपत्र बारहवीं शताब्दी का ही है। इस दानपत्र के लेखक कवि उमापति धर हैं।

चौदहवीं शताब्दी तक उड़िया लिपि का भी विकास 'बंगला लिपि' के साथ–साथ होता गया। परंतु उड़िया लिपि के अक्षरों में गोलाकार सिरे होने के कारण यह बंगला के अक्षरों से भिन्न लगती है। उड़ीसा में लिखने के लिए अधिकतर ताड़पत्रों का प्रयोग हुआ, अतः उड़िया अक्षर अधिक गोलाकार बने हैं। इस लिपि का दक्षिण भारत की प्रादेशिक लिपियों पर भी प्रभाव पड़ा है।

मिथिला (बिहार) में संस्कृत के ग्रंथ लिखने के लिए बंगला से मिलती–जुलती जिस लिपि का प्रचलन रहा, उसे मैथिली लिपि कहते हैं। यह मुख्यतः मैथिली ब्राह्मणों की लिपि थी। अब इसका स्थान नागरी लिपि ने ले लिया है।

बिहार में एक काम चलाऊ कैथी लिपि का भी प्रचलन रहा है। कायस्थों की लिपि होने से इसे कैथी लिपि कहते थे। ये भी लिपि नागरी से बनी थी।

(iii) **कलिंग लिपि** – कलिंग नगर के राजपत्रों की लिपि को पुराविदों ने कलिंग लिपि का नाम दिया। इस लिपि के अक्षरों के सिरे वर्गाकार होते हैं। नलवेश का पोड़ागढ़ से जो लेख प्राप्त हुआ, उसके अक्षरों के सिरे वर्गाकार हैं। जबकि गंगराज हस्तिवर्धन के दानपत्र की भाषा संस्कृत रही है। ग्यारहवीं सदी से कलिंग प्रदेश के लेख नागरी लिपि में लिखे हुए मिलते हैं।

(iv) **पल्लव–ग्रंथ लिपि** – कांचीपुरम के पल्लवों की जानकारी हमें दक्षिण भारत में इनके लगभग 300 ई. से प्रारंभ हुए शासन से मिलती है। इनके आरंभिक दानपत्र प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि की दक्षिण शैली में हैं। पल्लवों के दानपत्र संस्कृत भाषा में भी मिलते हैं।

ईसा की पाँचवी सदी के पल्लव अभिलेख जिस ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं, उसका भारतीय पुरालिपि के इतिहास में बड़ा महत्त्व है। लगभग इसी प्रकार की लिपि हमें दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक अभिलेखों में देखने को मिलती है। इस लिपि को हम 'पल्लव लिपि' कहते हैं।

दक्षिण भारत में द्रविड भाषा–परिवार की भाषाओं के लिए जब तेलुगु–कन्नड़ और तमिल–मलयालम लिपियाँ अस्तित्त्व में आईं, तो संस्कृत के ग्रंथ लिखने के लिए एक स्वतंत्र लिपि की जरूरत थी। संस्कृत–ग्रंथों की लिपि को ही ग्रंथ लिपि कहते हैं।

अभी पिछली सदी तक दक्षिण भारत में संस्कृत के ग्रंथ इसी ग्रंथ लिपि में लिखे जाते रहे हैं। इस ग्रंथ लिपि का विकास पल्लव लिपि से हुआ, इसीलिए आरंभिक पल्लव लेखों की लिपि को पल्लव–ग्रंथ

लिपि नाम दिया गया है। पल्लव–ग्रंथ लिपि के लेख ईसा की सातवीं सदी से मिलते हैं। नरसिंह वर्मन के समय के मामल्लपुरम् के लघुलेख, कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर के शिलालेख तथा परमेश्वर वर्मन के कूरम दानपत्र पल्लव–ग्रंथ लिपि में हैं। केरल प्रदेश की मलयालम लिपि का जन्म ग्रंथ लिपि से हुआ है।

साथ ही, तुलु लिपि का विकास भी ग्रंथ लिपि से हुआ है। दक्षिण कर्णाटक कुछ तुलु भाषा के लिए इस भाषा का इस्तेमाल हुआ है और तुलु भाषियों ने इस लिपि में संस्कृत के ग्रंथ भी लिखे हैं।

(v) **तेलुगु–कन्नड़ लिपि** – वर्तमान तेलुगु और कन्नड लिपियों में विशेष अंतर नहीं है और दक्षिण में इनका उद्‌गम एक साथ हुआ है, इसलिए चालुक्य राजाओं के अभिलेखों में इन लिपियों के रूप देखने को मिलते हैं।

ईसा की छठी–सातवीं सदी से कन्नड़ और तेलुगु भाषा के लेख मिलने लगे थे। कन्नड़ भाषा का सबसे पुराना लेख बादामी की वैष्णवी गुफा के बाहर चालुक्य राजा मंगलेश (598–610 ई.) का है। काकुस्थ वर्मन का हलेबीद लेख कन्नड़ में है। कन्नड़ भाषा की सबसे पुरानी उपलब्ध हस्तलिपि कविराज मार्ग 877 ई की है।

ईसा की छठी सदी से तेलुगु भाषा के भी लेख मिलने लग जाते हैं। ईसा की आठवीं सदी के बाद तेलुगु लिपि कन्नड़ लिपि से कुछ स्वतंत्र होती जाती है। तेरहवीं सदी में ये दोनों लिपियां एक–दूसरे से स्पष्ट रूप से भिन्न हो जाती हैं। बारहवीं सदी के तेलुगु कवि मंचन अपनी लिपि को 'आंध्र लिपि' का नाम देते हैं।

इसके बाद इन दोनों लिपियों का अलग–अलग विकास हुआ। कन्नड़ में स्वरों की मात्राएँ लंबी होकर व्यंजनों के दायीं ओर रखी जाने लगीं। अक्षर अधिकाधिक गोलाकार होते गए। विजय नगर राज्यकाल में ये दोनों लिपियां पूर्ण रूप से एक दूसरे से अलग हो गई थीं। पिछली सदी में जब इन लिपियों के टाइप रूप बने, तो इन्हें वर्तमान स्थायी रूप प्राप्त हुआ। फिर भी इन दोनों लिपियों में बड़ी समानता है। कन्नड़ जानने वाला व्यक्ति तेलुगु अक्षरों को सहज ही पढ़–लिख सकता है।

(vi) **तमिल लिपि** – दक्षिण भारत की तमिल, मलयालम, तेलुगु सब भाषाओं की वर्तमान लिपियां और कन्नड़ भाषा, द्रविड़ भाषा परिवार, ब्राह्मी लिपि से ही बनी हैं। इनमें तमिल भाषा और इसकी लिपि की अपनी कुछ विशेषताएँ है। तमिल भाषा बहुत पुरानी है। ईसा की आरंभिक सदियों से तमिल साहित्य मिलने लग जाता है। तमिल के अभिलेख भी लगभग इतने ही पुराने हैं। सुदूर दक्षिण भारत की कुछ गुफाओं से तमिल भाषा के कुछ लेख मिले हैं, जो दो हजार साल पुराने हैं। परंतु इनकी लिपि ब्राहमी है। अंतर केवल इतना है कि तमिल लेखों की इस ब्राह्मी लिपि में कुछ अक्षर विशेष हैं, जो तमिल भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों के लिए बनाए गए थे।

ईसा की सातवीं सदी में ब्राह्मी की एक शैली पल्लव–ग्रंथ लिपि अस्तित्व में आ चुकी थी। इसी पल्लव–ग्रंथ लिपि से आधुनिक तमिल लिपि अस्तित्व में आई है। वर्तमान तमिल लिपि में 12 स्वराक्षर है। इनमें भी ए और ओ के लिए, उच्चारण–भेद के कारण, दो–दो अक्षर हैं। तमिल लिपि में व्यंजनाक्षर 18 हैं, जिसमें से 14 व्यंजनाक्षर ये हैं – क, ङ चं, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, वा। इससे स्पष्ट है कि क, च, ट, त तथा प से कवर्ग,चवर्ग, वर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के व्यंजनों का काम लिया जाता है। इन 14 व्यंजनाक्षरों के अलावा, तमिल लिपि में 4 व्यंजनाक्षर और भी हैं। ये तमिल भाषा की चार विशिष्ट ध्वनियों के विशेष व्यंजनाक्षर हैं।

तमिल भाषा में ग, ज, उ, द तथा ब की ध्वनियाँ तो है, परंतु इन्हें क्रमशः का य, र, त तथा प से ही व्यक्त किया जाता है। तमिल में श्री, क्ष, इ, स, ष जैसी कुछ ध्वनियों के लिए ग्रंथ लिपि के अक्षरों का इस्तेमाल होता है।

वर्तमान तमिल लिपि पल्लव ग्रंथ लिपि से विकसित हुई है। इसलिए आरंभिक तमिल लिपि को पल्लव–तमिल या ग्रंथ–तमिल लिपि का भी नाम लिया जा सकता है। पंद्रहवीं सदी से तमिल लिपि लगभग वर्तमान रूप धारण करती है। पिछली सदी में इस लिपि के मुद्रणाक्षरों को स्थायी रूप मिला। दक्षिण भारत में संस्कृत के ग्रंथ 'ग्रंथ लिपि' में लिखे जाते रहे। अब ग्रंथ लिपि का स्थान 'नागरी लिपि' ने ले लिया है।

(vii) **मराठी भाषा** की लिपि देवनागरी है। लेकिन महाराष्ट्र में एक और लिपि–मोड़ी लिपि का भी प्रचलन रहा है। शिवाजी और पेशवाओं के शासनकाल में घसीट मोड़ी लिपि का खूब प्रयोग हुआ है। इस लिपि में मराठी भाषा के कुछ लेख भी मिलते हैं।

(viii) **गुजराती लिपि** – वर्तमान गुजराती लिपि नागरी से बनी है। इस लिपि के सिरों पर रेखाएँ नहीं है, इसलिए यह आज थोड़ा भिन्न दिखाई देती है। लेकिन पहले इस लिपि के सिरों पर रेखाएँ थीं और व्यापारी लोग गुजराती में अपने बही–खातों में अब भी लंबी शिरोरेखा का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार हमने देखा कि अरबी–फारसी लिपि को छोड़कर, वर्तमान भारत की सभी लिपियाँ प्राचीन ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई हैं। लिपि की दृष्टि से भारत की सारी भाषाएँ एक सूत्र में बँधी हुई हैं।

पालि भारतीय आर्य भाषा परिवार के मध्यकाल की भाषाओं (प्राकृत) के समूह में गण्य प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। यह प्राकृत के द्वितीय स्तर की प्रथम युगीन भाषा है। चूँकि प्राकृत समूह के प्रथम स्तर का कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है, अतः इन द्वितीय स्तरीय प्राकृतों से ही मध्य मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा परिवार का प्रारंभ होता है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य–भाषा पूर्व परंपरा प्राचीन–भारतीय आर्य–भाषा से जुड़ती है, जिसके अंतर्गत वैदिक ग्रंथों तथा उपनिषद आदि में प्रयुक्त छांदस व संस्कृत भाषाएँ आती हैं। वैदिक भाषा के काल में अर्थात भारतीय आर्य–भाषा परिवार के प्राचीनतम ज्ञात कालखण्ड में भाषा का एक विस्तृत स्वरूप स्थापित हो चुका था, जिसमें ध्वनि, रूप, अर्थ, वाक्य, व्युत्पत्ति तथा शैली अर्थात् आधुनिक भाषा–विज्ञान के सभी तत्वों का समुचित समावेश सुव्याख्यायित रूप से प्राप्त था। इस प्राचीन आर्य भाषा से मध्यकालीन आर्य–भाषा तक जो परिवर्तन लक्ष्य किए जाते हैं, वे मुख्यतः ध्वनि तथा रूप तत्त्वों पर ही आश्रित हैं। इसमें ध्वनि–तत्त्व मुख्यतः स्वर तथा व्यंजन के अंतर्गत विभाजित हैं तथा रूप तत्त्व का प्रमुख विभाजन शब्द रूप (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) एवं धातुरूप (क्रिया रूप व नाम रूप) में किया जाता है।

किसी भी भाषा के ध्वनि तत्त्व तथा रूप तत्त्व के अंतर्गत विभिन्न चरणों को देखा जाना आवश्यक होता है। ध्वनि तत्त्व के अंतर्गत स्वर एवं व्यंजन में होने वाले ध्वनि परिवर्तनों को देखा जा सकता है। साथ ही, मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तनों को विस्तार से देखा जा सकता है और उनके अंतर को विश्लेषण द्वारा समझा जा सकता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पहुँच सकते हैं कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाएँ मूल रूप से ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई हैं। जहाँ तक इनमें जो भी अंतर लिखने और बोलने में दिखाई पड़ता है, वह केवल प्रादेशिक छाया मात्र है। जिस प्रकार से हर प्रदेश के रहन–सहन और उनकी अपनी संस्कृति की छाप उनमें दिखाई पड़ती है। ठीक उसी प्रकार भाषा और लिपि पर भी समान प्रभाव दीख पड़ता है। विदेशी आक्रमण के कारण इनकी सांस्कृतिक अखण्डता कहीं न कहीं प्रभावित हुई नजर आती है, परंतु भारतीय संस्कृति की छाप प्रत्येक भारतीय भाषा–भाषी में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इस विषय पर अपना विचार प्रस्तुत करने के पीछे भारत की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण रखना ही मेरा पहला उद्देश्य रहा। आज देश में राजभाषा के रूप में हिंदी प्रतिस्थापित है। जबकि हमारे भारत की अष्टम अनुसूची की सभी भारतीय भाषाएं अपने–अपने प्रांत या क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा के रूप में पूरे राज्य में बोलचाल एवं समस्त राजकाज की राजभाषा के रूप में प्रचलित हो चुकी हैं। हर मातृभाषा, प्रांतीय भाषा का विकास उनके भाषा भाषियों के प्रेम को दर्शाता है। चूँकि जो भाषा जितनी अधिक बोली जाएगी, उस भाषा का भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा।

अंततः सभी भारतीय भाषाओं के उत्थान एवं पारस्परिक रूप से एक–दूसरे का पूरक बनकर भारतीय संस्कृति को बनाए रखने में हम सभी को सकारात्मक रूप से अपना योगदान देना होगा।

तब हम कहेंगे–

सभी भारतीय भाषाएँ बढ़ेंगी तभी,
जब हम सब एकजुट होकर चलेंगे सभी।।

ISSN No. : 0970-9398

भाषाई विरासत का संरक्षण – भारत की लुप्त एवं लघु भाषाओं का वाचन और रक्षण

– रश्मि
शोधार्थी एवं कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी, विद्युत मंत्रालय

हमारा देश भारत अपनी भाषाई विरासत में एक अमूल्य संगीत–धारा जैसा है, हर भाषा उसकी सांस्कृतिक आत्मा की प्रतिध्वनि है, वह ध्वनि जो समय के प्रवाह में अनुवाद, लोककथा, पीढ़ियों की यादों को संजोकर रखती है। इस सांस्कृतिक आत्मा की भाषा से अभिव्यक्ति बनी रहती है–वह भाषा जो हमें हमारी जड़ों से जोड़े, हमारी पहचान को संभारती रहे।

भारत की 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत में 122 प्रमुख भाषाएँ और 599 अन्य भाषाएँ हैं। हालाँकि, अन्य स्रोतों के आंकड़े मुख्यतः 'भाषा' और 'बोली' शब्दों की परिभाषा में अंतर के कारण भिन्न होते हैं। वर्ष 2001 की जनगणना में 30 भाषाएँ दर्ज की गईं, जिन्हें दस लाख से अधिक मूल वक्ताओं द्वारा बोला गया था और 122 भाषाएँ, जिन्हें 10,000 से अधिक लोगों द्वारा बोला गया था।[1] कालानुक्रमिक क्रम में तीन संपर्क भाषाओं ने भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है– संस्कृत,[2] फारसी[3] और अंग्रेजी।[4] भारत में इंडो–मुस्लिम काल के दौरान फारसी दरबारी भाषा थी और ब्रिटिश उपनिवेश के युग तक कई शताब्दियों तक एक प्रशासनिक भाषा के रूप में राज करती रही।[5] अंग्रेजी भारत में एक महत्वपूर्ण भाषा बनी हुई है। इसका उपयोग उच्च शिक्षा और भारतीय सरकार के कुछ क्षेत्रों में किया जाता है।

भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार, हिंदी भारत की सबसे तेजी से बढ़ती भाषा है, दूसरे स्थान पर कश्मीरी, तीसरे स्थान पर मेइती (आधिकारिक तौर पर मणिपुरी कहा जाता है) और गुजराती और चौथे स्थान पर बंगाली है।[6]

एथनोलॉग के अनुसार, भारत में 148 चीनी–तिब्बती, 140 इंडो–यूरोपीय, 84 द्रविड़, 32 ऑस्ट्रो–एशियाई, 14 अंडमानी और 5 क्रा–दाई भाषाएं हैं।[7]

वर्ष 2010 से वर्ष 2013 के बीच भाषा संरक्षण विशेषज्ञ गणेश देवी की देखरेख में किए गए भारतीय जन भाषाई सर्वेक्षण (पीएलएसआई) ने 780 भाषाओं की पहचान की और कहा कि 100 और भाषाएँ विलुप्त हो सकती हैं। गणेश देवी ने वर्ष 2013 में कहा था कि वर्ष 1961 से भारत में 220 भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं। उस वर्ष उन्होंने जनगणना के आंकड़ों के आधार पर 1,652 मातृभाषाओं के आधार पर 1,100 भाषाएँ होने की बात कही थी। अगले 50 वर्षों में 150 और भाषाएँ विलुप्त हो सकती हैं, हालाँकि इस

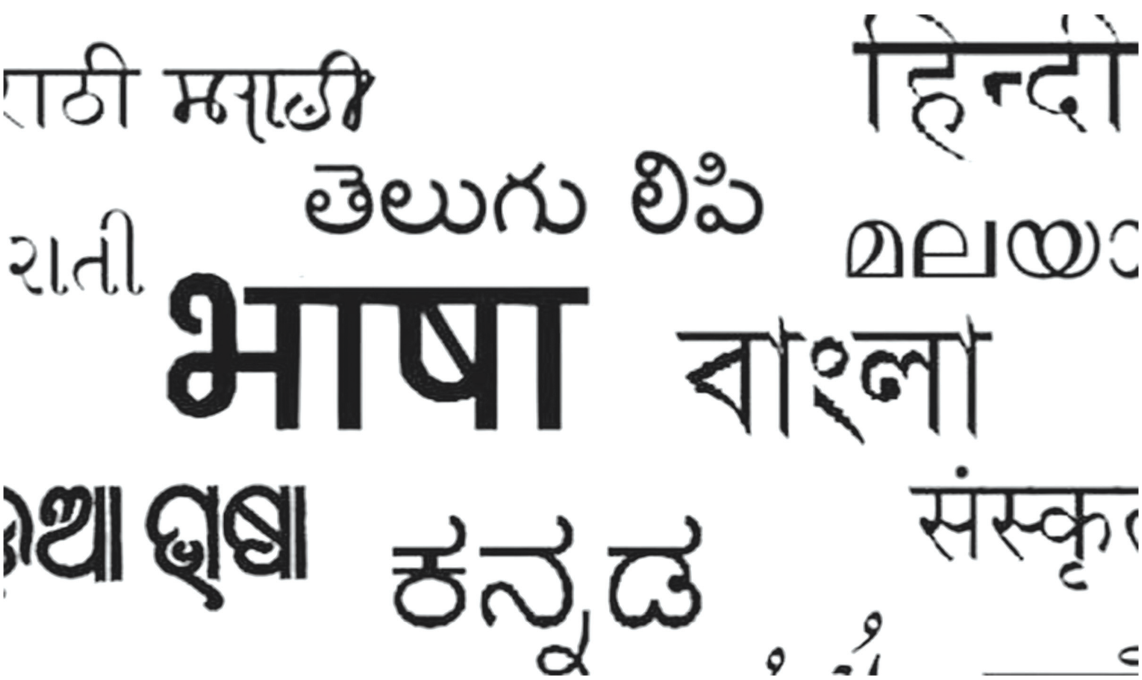

पर कोई सहमति नहीं है। यूनेस्को एटलस में 1950 के बाद से केवल पाँच भारतीय भाषाओं को विलुप्त बताया गया है। (कुछ भाषाविदों ने इस सर्वेक्षण की आलोचना की है और इसके तरीकों पर सवाल उठाए हैं।) 1971 से जनगणना में केवल 10,000 या उससे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं के आंकड़े जारी किए जाते रहे हैं।

इसी भावना को यूनेस्को और अन्य सर्वेक्षणों ने भी प्रतिध्वनित किया है–भारत में अनुमानित 197 भाषाएँ लुप्तप्राय, संकटग्रस्त या फिर पूरी तरह लुप्त हो चुकी हैं, जो किसी मिश्र ध्वनि से कम नहीं है, बल्कि हमारे बहुआयामी भाषाई परिदृश्य की चिंता से भरी चेतावनी है।

भारत की लुप्त एवं लघु भाषाएँ

भारत की भाषाई विविधता एक सूक्ष्म ध्वनि–संग्रहालय है–जहां हर बोली, हर सामुदायिक स्वर, उसके सांस्कृतिक आत्मा की अनमोल गूंज है। फिर भी, यूनेस्को की चेतावनी मानो किसी मूक पुकार की तरह हैः भारत में लगभग 42 भाषाएँ ऐसी हैं जिनके वक्ता 10,000 से भी कम हैं, और ये अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत प्रतीत होती हैं। इन भाषाओं की भौगोलिक धरोहर है–आइलैंड जैसे अंडमान और निकोबार में ग्रेट अंडमानीज भाषा, जारवा, ओंगे, शोम्पेन, मणिपुर की हरी–भरी घाटियों में ऐमोल, अका, पुरुम, तराओय हिमाचल की ऊँचाइयों में नाद बुनते हुए बागती, हंडूरी, पंगवाली, सिरमौर और फिर तमिलनाडु की कोटा और टोडा, महाराष्ट्र की निहाली, पश्चिम बंगाल की टोटो, ये सभी भाषाएं इंसान–जनित ध्वनियों से कम, लेकिन हमारी सांस्कृतिक आत्माओं से जुड़ी जीवंत ध्वनियाँ हैं और जब हम उनके निज स्वरूपों में गहराई से जाते हैं, तो एक और दिल को चीरने वाला दृश्य उभरता है–गोरुम (परेंगी), जो मुण्डा भाषा–वंश की एक कोमल शाखा है, अब मात्र लगभग 20 वक्ताओं की गुफ्तगू में अस्तित्व की आहट बनकर बची है (वर्ष 2011 का आंकड़ा)। निहाली, महाराष्ट्र के सीमांत गाँवों में बोली जाने वाली एक अलग–थलग भाषा–निशान, जिसका भाषाई अस्तित्व केवल लगभग 2,500 वक्ताओं पर टिका है। टोटो भाषा, जो पश्चिम बंगाल के टोटोपारा और आसपास के क्षेत्रों में गूँजती है, यूनेस्को ने उसे "गंभीर रूप से संकटग्रस्त" वर्ग में रखा है और यहां लगभग 1,000–1,400 वक्ता हैं, जबकि एडमस विश्वविद्यालय एक एआई–आधारित त्रिमाध्य ऐप विकास परियोजना के जरिये इसे डिजिटल रूप से पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रही है और फिर हमार, जो उत्तर–पूर्व की पहाड़ियों में शिक्षा संस्थानों में पढ़ाई जाती है, पाठयपुस्तकें तैयार हो चुकी हैं, और इससे जुड़ी डिजिटल संसाधन सामग्री भी उपलब्ध है।

संरक्षण के प्रयास

लुप्तप्राय भाषाओं के लिए वैश्विक संस्था की फाउंडेशन के अध्यक्ष निकोलस ओस्टलर के अनुसार, भाषाओं के लिए सरकार से मान्यता और समर्थन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यूनेस्को के अनुसार, दुनिया की लगभग 7,000 भाषाओं में से आधी से अधिक अगले सौ वर्षों में विलुप्त होने के खतरे में हैं। भारत जैसे भाषाई विविधता वाले देश में भी कई जनजातीय और अल्पसंख्यक भाषाएँ–जैसे ग्रेट अंडमानी, बोडो या टोटो–संख्या घटने के कारण नष्ट होने की कगार पर हैं। भाषाओं के लुप्त होने के प्रमुख कारणों में आर्थिक और शैक्षिक दबाव, वैश्वीकरण और एक ही 'प्रधान भाषा' की ओर झुकाव, शहरीकरण और प्रवास, तथा भाषा सिखाने–सीखने की पीढ़ीगत निरंतरता का टूटना शामिल है।

भाषाविद स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर व्याकरण, शब्दकोश और लोककथाएँ तैयार करते हैं। यूनेस्को का "Atlas of the World*s Languages in Danger" संकटग्रस्त भाषाओं का डिजिटल रिकॉर्ड रखता है। इसके अनुसार भारत के हर राज्य में लुप्तप्राय भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन वे दो मुख्य क्षेत्रों–उत्तर–पूर्व और मध्य–पूर्व भारत में समूहबद्ध हैं, जहाँ आदिवासी आबादी का प्रभुत्व है। संकटग्रस्त लगभग 170 भाषाओं में से आधे से ज्यादा उत्तर–पूर्व भारत (ज्यादातर अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड में) की तिब्बती–बर्मी भाषाएँ हैं, जिनका इस एटलस में पहली बार उल्लेख किया गया है।

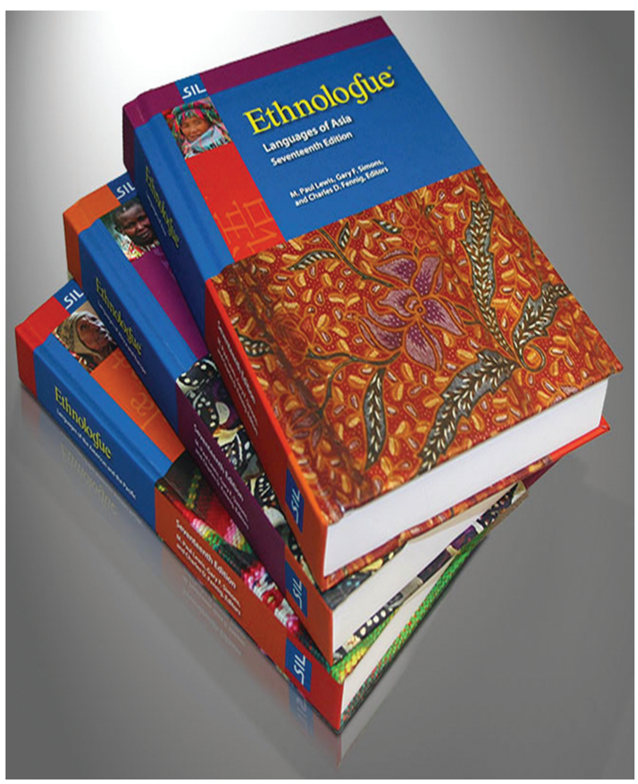

भारत में सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन लैंग्वेजेज (सीआईआईएल) द्वारा लुप्तप्राय भाषाओं के शब्दकोश और व्याकरण बनाए जा रहे हैं। शिक्षा में मातृभाषा का समावेश भी भाषा संरक्षण का एक सशक्त माध्यम है। मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा बच्चों को न केवल अपनी भाषा से जोड़े रखती है, बल्कि उनकी सीखने की क्षमता भी बढ़ाती है। भारत की नई शिक्षा नीति, 2020 ने प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा या स्थानीय भाषा में पढ़ाई पर बल दिया है। डिजिटल तकनीक भी इस दिशा में एक नया आयाम जोड़ रही है। मोबाइल ऐप, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया पर भाषा सीखने के कोर्स उपलब्ध हैं। गूगल और माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियाँ संकटग्रस्त भाषाओं में टाइपिंग टूल और अनुवाद सुविधाएँ विकसित कर रही हैं। विकिपीडिया के इंडिक लैंग्वेज प्रोजेक्ट से कई भारतीय भाषाओं में सामग्री का संग्रह बढ़ रहा है। सांस्कृतिक पुनर्जीवन कार्यक्रमों के माध्यम से भी भाषाओं को जीवन्त रखा जा सकता है। लोकगीत, नाटक, कहानी–कथन और त्योहारों के जरिए भाषा का सामाजिक उपयोग बढ़ता है। युवाओं को लोक कला और साहित्य में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। कई समुदाय 'भाषा क्लब' या 'कहानी मंडल' चलाकर अपनी भाषा को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ा रहे हैं।

भारत में कुछ मूल्यवान परियोजनाएँ हैं जैसे:

एसपीपीईएल (लुप्तप्राय भाषाओं के संरक्षण और संरक्षण के लिए योजना) – यह केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय का दस्तावेजीकरण कार्यक्रम है, जो सीआईआईएल (केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान) द्वारा मॉनिटर किया जाता है। वर्तमान में लगभग 117 भाषाओं का चयन, दस्तावेजीकरण (व्याकरण, शब्दकोष, लोककथाएँ) जारी है।

माडिया भाषा परियोजना, महाराष्ट्र – 35.73 लाख रु की अनुदान राशि से रिद्धपुर मराठी भाषा विश्वविद्यालय द्वारा कार्यालय शब्दावली, शब्दकोश, ग्रंथों का संकलन और प्रकाशित करना इसका कार्य है। यह मॉडल अन्य आदिवासी बोलियों हेतु मार्गदर्शक हो सकता है।

झारखंड में भाषाई विद्यालयी प्रयास – टीआरएल संस्था और द्विभाषीकरण पुस्तकों के माध्यम से आदिवासी भाषाओं को स्कूलों में सुदृढ़ करने का प्रयास, लेकिन संसाधनों और शिक्षण सहायता की कमी बनी हुई है।

एआई के माध्यम से संरक्षण – यह यूनेस्को से जुड़े सोनझरिया मिंज की आईकेआरजी पहल है, इसमें एआई आधारित डेटा भंडारण व प्रसार के माध्यम से आदिवासी ज्ञान और भाषाओं को संरक्षित करने की योजना है।

पर्यावरणीय कारक का प्रभाव – ब्रिटिश काल में बिहार के अध्ययन में बताया गया कि पर्यावरणीय अस्थिरता जैसे बाढ़, सूखा, जलवायु असंतुलन भी आदिवासी भाषाओं (अंगिका, बज्जिका, सुरजापुरी, थारू) को विशेष रूप से प्रभावित कर रहे हैं, क्योंकि पारंपरिक पर्यावास और जीवनशैली में बदलाव भाषा प्रवाह को बाधित कर रहे हैं।

भाषा संसाधन और तकनीक

- **भाषा संसाधन (एलआर) विकास की चुनौतियाँ** – मगही जैसी गैर–अनुसूचित भाषाओं हेतु एनोटेटेड कॉर्पस का निर्माण कठिन रहा है।
- **कांगड़ी भाषा पर कॉर्पस निर्माण** – हिमाचली कम संसाधन वाली कांगड़ी भाषा की मोनोलिंगुअल और हिंदी– कांगड़ी समानांतर डाटाबेस उपलब्ध किए गए, शब्द एम्बेडिंग तथा एसएमटी/एनएमटी परिणाम प्रकाशित किए गए।
- **सर्वेक्षण और दिशा दिशानिर्देश** – रितेश कुमार एवं बोर्निनी लाहिड़ी द्वारा 22 गैर – अनुसूचित व संकटग्रस्त भाषा संसाधनों की समीक्षा–तकनीकियों और उपलब्ध संसाधनों का सारांश प्रस्तुत किया गया।
- **म्यूरिल मॉडल** – भारत की बहुभाषिकता को ध्यान में रखते हुए, बहुभाषी एलएम में भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने हेतु म्यूरिल जैसे मॉडल प्रस्तुत किए गए।

5. समालोचनात्मक विमर्श

भाषाओं की मौनता केवल शब्दों के न होने भर की कहानी नहीं – ज्ञान, पहचान, पारिस्थितिकी और सामूहिक स्मृति का क्षरण भी है।

- संरक्षण–तकनीक, शिक्षा और नीति के संगम से संभव होगा। एआई, समुदाय आधारित शिक्षण, स्कूलों में भाषाओं का समावेश और सरकारी योजनाएं (एसपीपीईएल, राज्य परियोजनाएँ) मिलकर इस उदात्त यात्रा की धुरी बन सकती हैं।
- **जलवायु परिवर्तनों की भूमिका** – जैव विविधता की तरह भाषिक विविधता भी पर्यावरण से गहरा जुड़ी है। जैसेकृ'चिरिया', 'गछ' जैसे शब्दों का क्षय हमें चेतावनी देता है कि जब धरती बदलती है, तो भाषाएँ भी म्लान हो जाती हैं।

निष्कर्ष

भारत में बहुत–सी भाषाएँ लुप्तप्राय हैं। जी.एन. देवी एक साक्षात्कार में कहते हैं कि अधिकांश भाषाएँ पहले ही रूपक निर्माण की अपनी क्षमता काफी हद तक खो चुकी हैं। भविष्य की भाषाएँ कम 'श्रवणात्मक' और ज्यादा 'चित्रात्मक' होंगी। वे ध्वनि से ज्यादा ग्राफिक्स का इस्तेमाल करेंगी। उन भाषाओं की अमूर्तन–क्षमताओं की प्रकृति, प्राकृतिक भाषाओं द्वारा विकसित अमूर्तन–संचालन से बहुत अलग होगी। हम सभी एक नए और आभासी ब्रह्मांड की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। इसके बदले में, हम उन भाषाओं का त्याग कर रहे हैं जिन्हें हमारे पूर्वजों ने रचा और हमें विरासत में दिया। यह नितांत आवश्यक है कि हम अपनी लुप्त प्राय भाषाओं को सहेजें, उनका प्रयोग रोजमर्रा की दिनचर्या में करें। सरकार के स्तर पर गंभीर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भः

1. 'जनगणना डेटा 2001ः सामान्य नोट'। भारत की जनगणना 11 दिसंबर 2014 को लिया गया।
2. ईटन, रिचर्ड एम. (14 अक्टूबर 2020)। 'भारत के इतिहास को आकार देने वाली दो भाषाएँ'। लिटरेरी हब। 24 अक्टूबर 2024 को लिया गया।
3. आबिदी, एसएएचय गर्गेश, रविंदर (2008)।'4. दक्षिण एशिया में फारसी'। कचः में, ब्रज बी. (सं.). दक्षिण एशिया में भाषा. कचः, यमुना और श्रीधर, एसएन कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। पीपी. 103–120. आईएसबीएन 978–0–521–78141–1.
4. भाटिया, तेज के और विलियम सी. रिची (2006) दक्षिण एशिया में द्विभाषिकता। हैंडबुक ऑफ बाइलिंगुअलिज्म में, पृष्ठ 780–807। ऑक्सफोर्डः ब्लैकवेल पब्लिशिंग
5. 'फारसी भाषा का पतन – द टाइम्स ऑफ इंडिया'. द टाइम्स ऑफ इंडिया। 7 जनवरी 2012, 26 अक्टूबर 2015 को लिया गया।
6. 'जनगणना' के आंकड़े भारतीय भाषाओं के उपयोग के बारे में क्या बताते हैं'। डेक्कन हेराल्ड। 16 नवंबर 2023 को लिया गया।
   - 'हिंदी ने एक दशक में 100 मिलियन वक्ता जोड़ेय कश्मीरी दूसरी सबसे तेजी से बढ़ती भाषा'। 28 जून 2018। 16 नवंबर 2023 को पुनःप्राप्त।
   - 'हिंदी भारत में सबसे तेजी से बढ़ती भाषा, 100 मिलियन नए वक्ता मिले'।
   - 'बिना आधिकारिक आदेश के भी गैर–हिंदी राज्यों में हिंदी का तेजी से विकास हुआ'। इंडिया टुडे। 11 अप्रैल 2022। 16 नवंबर 2023 को पुनःप्राप्त।
7. 'भारत'. एथनोलॉग (सभी मुफ्त), 26 नवंबर 2023 को लिया गया.
8. देवी, गणेश एन.ः भारत में 780 भाषाएँ–600 लुप्तप्राय (The Indian Express)
9. यूनेस्को/सर्वेक्षणः भारत में 197 भाषाएँ लुप्त या संकटग्रस्त (The Economic Times)
10. 42 भाषाएँ जो 10,000 से कम वक्ता रखती हैं (The Hindu Trans Asia News Service Outlook India Jagranjosh-comDawn)
11. गोरम भाषा विवरण (Wikipedia)
12. निहाली भाषा विवरण (Wikipedia)
13. टोटो भाषा और संरक्षण परियोजना (Wikipedia)
14. हमार भाषा और डिजिटल समुदायों में संरक्षण
15. एसपीपीईएल योजना विवरण (sppel-org)
16. माडिया परियोजना और अनुदान (The Times of India)
17. झारखंड में आदिवासी भाषाओं का प्रयास (The Times of India)
18. सोनझारिया मिंजः AI–आधारित संरक्षण पहल (The Times of India)
19. जलवायु परिवर्तन का भाषायी प्रभाव (बिहार अध्ययन) (The Times of India)
20. मगही एल आर विकास चुनौतियाँ
21. कंगडी कॉर्पस निर्माण
22. संसाधन एवं तकनीकी समीक्षा (रितेश कुमार, Bornini Lahiri)
23. म्यूरिल मॉडल विवरण

ISSN No. : 0970-9398

लोकतंत्र में सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा की भूमिका

– हितेन्द्र धूमाल
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई

लोकतंत्र में सरकारें नागरिकों के कल्याण और सर्वांगीण विकास के लिए अनेकों योजनाएँ बनाती हैं, लेकिन ये योजनाएँ तभी सफल हो सकती हैं जब उनका क्रियान्वयन व्यापक स्तर पर, प्रत्येक नागरिक तक पहुँचे। इसमें 'भाषा' की भूमिका निर्णायक है– क्योंकि भाषा ही संवाद, सूचना, समझ और सहभागिता का सबसे प्रभावी माध्यम है। सरकारी योजनाओं के हर चरण योजना निर्माण, भ्रांतियों का निवारण, जन–जागरूकता, क्रियान्वयन और लाभार्थियों तक पहुँच में भाषा सेतु का कार्य करती है।

लोकतंत्र में सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाषा वह माध्यम होती है जिसके द्वारा सरकार और जनता के बीच संवाद स्थापित होता है। जब तक जनता को उनकी अपनी भाषा में योजनाओं की पूरी जानकारी नहीं मिलती, तब तक उनकी भागीदारी सीमित रहती है और योजनाओं का उद्देश्य पूरी तरह से पूरा नहीं हो पाता। भारत जैसे बहुभाषी देश में विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न भाषाओं और बोलियों के लोगों तक योजना की जानकारी पहुँचाना एक चुनौती है, लेकिन इसे पार करना भी आवश्यक है क्योंकि भाषा ही वह सेतु है जो सरकार और आम जनता को जोड़ती है। कार्यक्रमों और नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए भाषा का सटीक, स्पष्ट और लोकभाषाओं के सहयोग से प्रचार–प्रसार अनिवार्य है।

सरकारी योजनाओं को जनता तक पहुँचाने के लिए सर्वप्रथम उनकी भाषा में सटीक अनुवाद और सरल अभिव्यक्ति आवश्यक है ताकि वे योजनाएँ समझने में आसान हों और लोगों को उनके लाभों का सही ज्ञान प्राप्त हो। यह न केवल योजना के प्रति जागरूकता बढ़ाता है, बल्कि भरोसे और सहभागिता को भी प्रोत्साहित करता है। इसी भाषा के माध्यम से सरकारी कार्यालय संवाद करते हैं, जन सुनवाई करते हैं और शिकायत निवारण का कार्य करते हैं, जिससे प्रशासन और जनता में पारदर्शिता बनी रहती है। ऐसे में भाषा की भूमिका संवाद के एक पुल के रूप में होती है जो नागरिकों को योजनाओं का हकदार बनने का अवसर प्रदान करती है।

डिजिटल युग में भी भाषा की महत्ता कम नहीं हुई, बल्कि बहुभाषी डिजिटलीकरण के माध्यम से मोबाइल ऐप्स, वेबसाइट्स, हेल्पलाइन और अन्य ई–गवर्नेंस सेवाओं को स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध कराते हुए डिजिटल समावेशन को बढ़ावा देना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार भाषा न केवल सूचना का प्राथमिक स्रोत है, बल्कि तकनीकी और सेवाओं तक पहुँच का माध्यम भी है। इसके बिना व्यापक स्तर पर योजनाओं का क्रियान्वयन अधूरा रहता है एवं समाज के वंचित वर्गों तक उसका लाभ पहुँचाना कठिन सिद्ध होता है।

सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा की भूमिका सामाजिक समावेशन और न्याय की दिशा में भी एक मजबूत आधार बनाती है। जब हर नागरिक अपनी मातृभाषा में योजनाओं की जानकारी पाता है तो इससे सामाजिक विषमताएं कम होती हैं, लोक विश्वास बढ़ता है और सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित होती है। अतः भाषा लोकतंत्र की उस शक्ति का रूप लेती है जो सुशासन, जवाबदेही और अधिकारों की रक्षा करती है।

इस प्रकार देखा जाए तो लोकतांत्रिक समाज में भाषा का महत्व नीति निर्माण और कार्यान्वयन की प्रक्रिया में अभिन्न है। भाषा की उपेक्षा या अवहेलना से योजनाओं का उद्देश्य अधूरा रह जाता है तथा समाज के विभिन्न तबकों में दूरी बनती है। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर भाषा को केंद्र में रखते हुए सभी सरकारी योजनाओं को स्थानीय भाषाओं में अनूदित और प्रचारित करना न केवल आवश्यक है बल्कि लोकतंत्र की गरिमा और प्रभावशीलता की गारंटी भी है। केवल तभी सरकारी योजनाएँ जन–जन तक पहुँच सकती हैं और सभी वर्गों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं।

लोकतंत्र में सरकारें नागरिकों के कल्याण और सर्वांगीण विकास के लिए अनेकों योजनाएँ बनाती हैं, लेकिन ये योजनाएँ तभी सफल हो सकती हैं जब उनका क्रियान्वयन व्यापक स्तर पर प्रत्येक नागरिक तक पहुँचे। इसमें 'भाषा' की भूमिका निर्णायक है– क्योंकि भाषा ही संवाद, सूचना, समझ और सहभागिता का सबसे प्रभावी माध्यम है। सरकारी योजनाओं के हर चरण– योजना निर्माण, भ्रांतियों का निवारण, जन– जागरूकता, क्रियान्वयन और लाभार्थियों तक पहुँच–में भाषा सेतु का कार्य करती है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में भाषा का महत्व

लोकतंत्र संवाद और सहभागिता पर टिका है। जन–प्रतिनिधि, सरकार और जनता के बीच विश्वास और पारदर्शिता केवल भाषा के माध्यम से ही संभव है। जिस भाषा में नागरिक सहजता से सोचते, बोलते और समझते हैं, उसी में सरकारी योजनाओं का प्रचार–प्रसार और संवाद वास्तविक परिवर्तन ला सकता है। भारत जैसे बहुभाषी, बहु–जातीय देश में भाषा की विविधता नागरिक अधिकारों की सुरक्षा और सरकार की जवाबदेही की गारंटी देती है। जब सरकारी योजनाओं को विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत किया जाता है, तो समाज के सभी तबकों को बराबरी का अवसर मिलता है।

सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा की केन्द्रीय भूमिका

योजनाबद्ध ढंग से सूचनाएं और लाभ की शर्तें नागरिकों को समझ में तभी आती हैं जब वे उनकी मातृभाषा या स्थानीय भाषा में दी जाएँ। उदाहरण के लिए, प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, उज्ज्वला योजना, आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं के सूचना–पत्र, विज्ञापन, फॉर्म व पोर्टल यदि क्षेत्रीय भाषाओं में हैं तो ग्रामीण–अशिक्षित तक भी सटीक जानकारी पहुँच पाती है।

किसी भी योजना की सफलता की शर्त है जनता की जागरूकता और भागीदारी। रेडियो, टीवी, अखबार, विज्ञापन, सोशल मीडिया पर स्थानीय भाषाओं में प्रचार से न केवल परंपरागत संदेश, बल्कि रीति–रिवाज, विश्वास और भावनाओं के अनुरूप संवाद संभव हो पाता है।

जब सरकारी आँकड़े, रिपोर्ट, लाभार्थी सूची व सम्पर्क–सूचनाएँ नागरिक की अपनी भाषा में सुलभ होती हैं तो पारदर्शिता बढ़ती है। सरकारी बैठकों, सार्वजनिक सुनवाइयों, ग्राम सभा, नगर पालिका–हर जगह मातृभाषा में संवाद होने से जनता सक्रिय होती है और जिम्मेदारी तय कर पाती है।

सरकारी पोर्टल, ऐप्स, हेल्पलाइन आदि से लाभ लेना तभी संभव है जब ये स्थानीय भाषाओं या हिंदी में उपलब्ध हों। उदाहरणः DIKSHA, उमंग, यूपीआई, राशन कार्ड प्रणाली–इनमें बहुभाषिक सपोर्ट ने क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं।

सामाजिक–आर्थिक समावेशन में भाषा की भूमिका

भारत के अधिकांश ग्रामीण, आदिवासी, महिला और दिव्यांग नागरिक अंग्रेजी या विशिष्ट प्रशासनिक भाषा नहीं समझ सकते। जब लोकल भाषा में योजनाओं का प्रचार, प्रशिक्षण, FAQ, गाइडलाइन मिलती हैं तो यह समूह न केवल लाभ लेता है बल्कि आत्मनिर्भर बनता है।

भाषा के माध्यम से सरकारी सेवा का सत्कार, जवाबदारी व ईमानदारी सुनिश्चित होती है–इससे जनता का सरकारी तंत्र में विश्वास बढ़ता है, जो लोकतंत्र की स्थिरता का आधार है।

भारत में भाषा एवं योजनाओं के क्रियान्वयन के उदाहरण

नई शिक्षा नीति (NEP, 2020) के मुताबिक प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में देने की जोरदार संस्तुति है। आयुष्मान भारत, मिशन इंद्रधनुष, कोविड टीकाकरण के प्रचार एवं पंजीकरण अनेक भारतीय भाषाओं में होने से करोड़ों लोगों को लाभ मिला।

किसान कॉल–सेंटर, बैंकिंग योजनाएँ, जन धन, अटल पेंशन इत्यादि के लिए क्षेत्रीय भाषा में टोल फ्री हेल्पलाइन की सुविधा। विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा SMS, पोर्टल, मोबाइल एप्लिकेशन–स्थानीय भाषा में जानकारी, तात्कालिक शिकायत निवारण तथा सुझाव प्रणाली।

चुनौतियाँ एवं समाधान

कई बार सरकारी दस्तावेजों, साइट्स व प्रपत्रों का स्थानीय भाषा में अनुवाद गलत, तकनीकी या अप्रचलित हो जाता है जिससे भ्रांतियाँ एवं प्रशासनिक भ्रम पैदा होते हैं। 22 अनुसूचित भाषाएँ, हजारों बोलियाँ–इस विविधता को कवर करना कठिन है, लेकिन आवश्यकता भी है। कई बार नीति तो होती है, पर फील्ड पर कार्यान्वयन के लिए न प्रशिक्षित कर्मचारी प्रशिक्षण है, न संसाधन अथवा तकनीकी सहयोग।

समाधान

नीति निर्माण के हर स्तर योजना/रिपोर्ट/परिपत्र/फॉर्म/संगणकीय प्लेटफार्म सभी में भाषा की विविधता का सम्मान और उसका व्यावहारिक पालन होना चाहिए। पंचायती राज, ग्राम–सभाओं, नगरीय निकायों, स्वयं सहायता समूह, सामुदायिक रेडियो को स्थानीय भाषाई सूचना केन्द्र बनाया जाए।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित सहज, गुणवत्तापूर्ण भाषाई हस्तांतरण और ऑटोमेटेड वॉइस/वीडियो आधारित मार्गदर्शिका उपलब्ध कराई जानी चाहिए। नागरिक विशेषकर हाशिए के वर्ग से योजनाओं की सूचना पर प्रतिक्रिया उनकी भाषा में लेना, डेटा एकत्र करना और उसी के अनुरूप सुधार पर बल दिया जाए।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य से भाषा और लोकतांत्रिक विकास

संयुक्त राष्ट्र, यूनेस्को, यूरोपीय यूनियन, अफ्रीकी देश सभी ने समान रूप से 'भाषाई समावेशन', 'भाषा अधिकार' और 'मूलभूत सेवाओं की भाषा में उपलब्धता' को लोकतंत्र के लिए आवश्यक बताया है। नीतिगत फैसलों, नागरिक

सहभागिता व सर्वांगीण कल्याण की नींव 'पहचान और भाषा सम्मान' में है। "No one left behind" का वास्तविक अर्थ यही है।

लोकतंत्र में सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा अनिवार्य कड़ी है–

लोक–जागरूकता, जन–भागीदारी, न्याय, ट्रांसपैरेंसी, दक्षता और जवाबदेही तभी संभव है जब संवाद जनता की अपनी भाषा में हो। हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में सरकारी योजनाओं के प्रचार–प्रसार, क्रियान्वयन, अनुश्रवण और सुधार की प्रक्रिया को प्राथमिकता देना आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की पहली आवश्यकता है। भाषा का समावेशी, सहिष्णु और जन–मानस सम्मत रवैया ही लोकतंत्र को जीवंत और प्रगतिशील बनाता है।

'भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, नागरिकता, अधिकार, सेवाओं और सशक्तिकरण का सेतु है।' सरकारी योजनाएँ तभी साकार होती हैं जब हर नागरिक खुद को, अपनी भाषा में, उसमें सहभागी पाए यही लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ है।

भारतीय लोकतंत्र में सरकारी योजनाओं के संचालन में हिंदी भाषा की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण और केंद्रीय है। हिंदी न केवल भारत की राजभाषा है (संविधान के अनुच्छेद 343 के तहत), बल्कि यह सरकार और आम जनता के बीच संवाद, सूचना तथा सहभागिता का प्रमुख माध्यम भी है। लोकतंत्र की सफलता के लिए जनता तक योजनाओं की सटीक जानकारी पहुँचाना आवश्यक होता है, और हिंदी ने इस प्रक्रिया में सहज संचार, व्यापक समझ और सामाजिक समावेशन सुनिश्चित करके विशेष योगदान दिया है।

भारतीय लोकतंत्र में योजनाओं के संचालन में हिंदी भाषा की भूमिका

हिंदी भाषा के कारण योजनाओं का प्रचार–प्रसार ग्रामीण, शहरी और विभिन्न क्षेत्रीय स्तरों पर अधिक प्रभावी होता है, क्योंकि यह भाषा अधिकांश भारतीयों की मातृभाषा या परिचित भाषा है। इससे लाभार्थियों को योजनाओं की पात्रता, आवेदन प्रक्रिया, लाभ व शर्तें आसानी से समझ में आती हैं, जिससे जनभागीदारी और योजनाओं का क्रियान्वयन बेहतर होता है।

इसके अतिरिक्त, हिंदी के माध्यम से सरकारी कार्यालयों में नोटिफिकेशन, रिपोर्ट, अधिकारी वार्ता और जन सुनवाई स्थानीय समुदायों तक पहुँचती है, जिससे प्रशासन और जनता के बीच पारदर्शिता और उत्तरदायित्व बढ़ता है। डिजिटल युग में भी हिंदी आधारित मोबाइल ऐप, वेब पोर्टल, टोल–फ्री हेल्पलाइन जैसी सुविधाएं जनता को योजनाओं से जोड़ने में सहायक हैं।

सरकारी योजनाओं के सामाजिक समावेशन को भी हिंदी भाषा बल देती है, क्योंकि मातृभाषा में जानकारी मिलने से शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय सेवाएं और सामाजिक सुरक्षा के लाभ सभी वर्गों तक पहुँच पाते हैं, खासकर उन लोगों तक जो अंग्रेजी या अन्य भाषाओं को नहीं समझ पाते। इसका परिणाम लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास, समता और न्यायसंगत सेवा वितरण के रूप में सामने आता है।

इस प्रकार, हिंदी भाषा भारतीय लोकतंत्र की उस शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है जो सरकारी योजनाओं के सफल संचालन के लिए संवाद, समझ, सहभागिता और समावेशिता का आधार बनती है। हिंदी भाषा के बिना योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन और जनधारणा अधूरी रह जाती है।

भारतीय लोकतंत्र में योजनाओं के संचालन में भाषा एवं डिजिटल दुनिया तथा एआई का महत्त्व

भारतीय लोकतंत्र में योजनाओं के संचालन में भाषा, डिजिटल दुनिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) की भूमिका आज के समय में अत्यंत व्यापक और परिवर्तनकारी है। ये तीनों घटक–संवाद, समावेशिता, तेज सेवा, पारदर्शिता और सुशासन को आधार देने वाले स्तंभ बन चुके हैं।

1. भाषाः सुगम संवाद और समावेश की कड़ी

भारत एक अत्यंत बहुभाषिक राष्ट्र है, जहाँ संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक भाषा नीति का स्पष्ट उल्लेख है। हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है, जबकि राज्य अपनी–अपनी आधिकारिक भाषाएं चयनित कर सकते हैं। योजनाओं के संचालन में भाषा का महत्त्व इस कारण है कि इससे सरकार और नागरिकों के बीच सीधा संवाद संभव होता है, खासकर ग्रामीण एवं अशिक्षित तबकों तक। सरकारी योजनाओं की जानकारी, आवेदन प्रक्रिया, लाभार्थी डेटा, निर्देश/नियम, जनसंपर्क आदि नागरिकों की समझ की भाषा में होने पर प्रभावी पहुँच और भागीदारी बढ़ती है। सांस्कृतिक विविधता, स्थानीय शब्दावली और बोली के माध्यम से योजनाओं को जन–जन तक पहुँचाकर लोकतांत्रिक समावेशिता संभव होती है।

2. डिजिटल दुनियाः पारदर्शिता, गति और उत्तरदायित्व

डिजिटलीकरण ने भारतीय लोकतंत्र में योजनाओं के क्रियान्वयन को नई दिशा दी है।

डिजिटल इंडिया जैसे अभियानों के तहत सरकार ने सेवाओं, सब्सिडी, जन–कल्याणकारी योजनाओं, पेंशन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि में लाभ पहुंचाने के लिए ऐप्स, पोर्टल, बैंकिंग टेक्नोलॉजी, ई–गवर्नेंस को अनिवार्य बनाया। डिजिटल माध्यमों से ऑनलाइन आवेदन, लाभ का ट्रैकिंग, लाभार्थी सत्यापन (आधार), डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर, शिकायत निवारण व डेटा एनालिटिक्स संभव हुआ है। ई–गवर्नेंस से न केवल सूचना तंत्र मजबूत होता है, बल्कि सरकारी हाथ–पट्टों/बिचौलियों/भ्रष्टाचार में भी कमी आती है। ग्रामीण और कमजोर वर्गों तक पहुंचना आसान हुआ है। मोबाइल इंटरनेट और क्षेत्रीय भाषा में इंटरफेस, आइडेंटिटी सर्विसेज, हेल्पलाइन–योजनाओं का प्रचार–प्रसार दृढ़ता से स्थापित है।

3. आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI): पारदर्शी और सटीक प्रशासन

एआई ने हाल के वर्षों में सुशासन, नीति निर्धारण और योजना आकलन में क्रांति लाई है–

सेवा वितरण: AI से डेटा आधारित फैसले, लाभार्थी पहचान, भेदभाव रहित आवंटन और शिकायत समाधान तेजी से संभव हुआ।

बहुभाषिक इंटरफेस: AI आधारित प्लेटफॉर्म (Bhashini आदि) के जरिए योजनाओं की जानकारी क्षेत्रीय भाषाओं में मिल रही है। यह भारतीय लोकतंत्र की बहुभाषिकता को और सशक्त बनाता है।

स्वचालन एवं व्यक्तिगत सेवाएँ: हेल्थकेयर, शिक्षा, कृषि, शहरी सेवाओं आदि में AI आधारित चौटबॉट, वर्चुअल असिस्टेंट्स, स्मार्ट डेटा ऐनालिटिक्स से जनता को सटीक और त्वरित समाधान मिलता है।

पारदर्शिता व भ्रष्टाचार–नियंत्रण: रियल–टाइम मॉनिटरिंग, रिकॉर्ड– कीपिंग, मिसयूज डिटेक्शन, डिजिटलीकृत रजिस्ट्रियों, फेस–रिकग्निशन आदि एप्पलीकेशन से प्रशासन अधिक विश्वसनीय, जवाबदेह बना है।

इन तीनों की सहभागिता आधुनिक लोकतांत्रिक भारत को 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' के लक्ष्य की ओर उन्मुख कर रही है। योजनाओं के कार्यान्वयन में यह त्रिसूत्र सबसे महत्वपूर्ण है–जनसंवाद की भाषा, डिजिटलीकरण की पहुँच और एआइ की विवेकशीलता–यही 21वीं सदी के भारतीय लोकतंत्र की पहचान है।

उपसंहार

भारतीय लोकतंत्र में सरकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में भाषा, डिजिटल दुनिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) की भूमिका अनिवार्य और निर्णायक है। भाषा संवाद की वह कड़ी है जो सरकार और जनता को जोड़ती है, जिससे योजनाओं की स्पष्ट समझ, व्यापक जागरूकता और समावेशी भागीदारी सुनिश्चित होती है। हिंदी और क्षेत्रीय भाषाएँ इस संवाद को सरल और प्रभावी बनाती हैं, विशेषकर उन वर्गों के लिए जो अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में सहज नहीं हैं।

डिजिटल दुनिया ने योजनाओं के क्रियान्वयन को तेजी, पारदर्शिता और जवाबदेही के नए आयाम प्रदान किए हैं। ई–गवर्नेंस, मोबाइल ऐप्स, ऑनलाइन पोर्टल व डिजिटल भुगतान प्रणालियाँ सभी को लाभ पहुंचाने में गतिशीलता और सटीकता लाती हैं। डिजिटलकरण ने भ्रष्टाचार घटाने, समय की बचत करने और दूर–दराज के नागरिकों तक सेवाओं की पहुँच बनाने में क्रांतिकारी बदलाव किया है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआइ) ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं को अधिक बुद्धिमान, त्वरित और बहुभाषिक बना दिया है। इसकी मदद से योजनाओं का लक्षित वितरण, शिकायत निवारण, डेटा विश्लेषण और अनुकूल सेवाएँ संभव हुई हैं। एआइ भाषा बाधाओं को पार करते हुए नागरिकों तक उनकी मातृभाषा में सेवा पहुंचाने का सशक्त उपकरण बन रही है।

संक्षेप में, भाषा, डिजिटल दुनिया और एआई का समन्वय आधुनिक भारत के जनवादी विकास एवं सुशासन के लिए आधारशिला है। यह त्रिमूर्ति न केवल योजनाओं के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन को सक्षम करती है, बल्कि लोकतंत्र की मूल भावना–सभी के लिए समान अवसर, सहयोग और पारदर्शिता को सशक्त करती है। इसलिए, इनके समुचित विकास, विस्तार और संवर्धन से ही भारत का लोकतंत्र और ज्यादा सक्षम, न्यायसंगत और समावेशी बन सकेगा। यही वर्तमान युग में सरकारी योजनाओं के सफल संचालन और राष्ट्र के समृद्ध भविष्य की कुंजी है।

ISSN No. : 0970-9398

वित्तीय समावेशन अभियान में भारतीय भाषाओं की भूमिका

– डॉ. संजय कुमार
सहायक महाप्रबंधक
भारतीय रिजर्व बैंक, लखनऊ

भाषा मनुष्य के पास उपलब्ध एक अमूल्य धरोहर है। मनुष्य का अस्तित्व ही भाषा पर टिका हुआ है। यदि उससे भाषा रूपी हथियार छीन लिया जाए तो उसमें और पशु में कोई विशेष अंतर नहीं है। मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है और अपने चिंतन को शब्दों में व्यक्त करने का सामर्थ्य रखता है। भाषा का कलेवर धारण करके ही उसके विचार सजीव हो पाते हैं और सृजनात्मकता का जामा पहनते हैं। भाषा व्यक्ति के बौद्धिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष का आधार है। भाषा के कारण ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। भाषा संसार के मनुष्यों को जोड़ने वाला अत्यंत महत्वपूर्ण सेतु है। भाषा के इसी महत्व को रेखांकित करते हुए मैक्समूलर ने कहा था कि "भाषा अगर प्रकृति की देन है तो निःसंदेह यह प्रकृति की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ रचना है जिसे प्रकृति ने केवल मनुष्य के लिए ही सुरक्षित रखा था।"

यद्यपि देश में भाषा के विविध पहलुओं पर सदियों से चिंतन–मनन होता आया है, पर भाषा आर्थिक प्रगति में कितना योगदान कर सकती है, इस पर न तो ज्यादा ध्यान दिया गया और न ही आर्थिक तरक्की में इसके योगदान को मापने का कोई मुकम्मल पैमाना ही तैयार किया गया। वर्तमान समय में भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, बल्कि मनुष्य की प्रगति का आधार है। आज के आर्थिक युग में मनुष्य ने तरक्की की जो भी इबारत लिखी है, उसके मूल में कहीं न कहीं भाषा ही है। मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक सभी प्रकार की क्रियाएं किसी न किसी रूप से भाषा से अनुप्राणित हैं।

दुनिया अगर आज ग्लोबल गाँव बनी है तो यह भाषा के कारण ही संभव हुआ है क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी जिसने दुनिया को एक मंच पर ला खड़ा किया है, वह भाषा (प्रोग्रामिंग की भाषा) के आधार पर काम करती है। नैचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग ने तो भिन्न–भिन्न भाषियों के मध्य संवाद और संप्रेषण को और भी सुगम बना दिया है। हालांकि वर्तमान समय में जीवन के हरेक क्षेत्र में आटोमेशन ने गहरी पैठ बना ली है, फिर भी मनुष्य से मनुष्य के बीच संपर्क के लिए मौखिक भाषा का कोई सानी नहीं है। जहाँ तक वित्तीय समावेशन में भारतीय भाषाओं के योगदान की बात है, तो यह अभियान मुख्यतः जन–संपर्क पर आधारित है और जन–संपर्क में भारतीय भाषाओं से बेहतर कोई विकल्प नहीं हैं।

वित्तीय समावेशन क्या है?

बैंकिंग के संदर्भ में वित्तीय समावेशन का अभिप्राय है कि अब तक बैंकों से दूर रह गए लोगों (चाहे शहर के हों अथवा गांव से) तक वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराना। इस अभियान का मुख्य मकसद समाज के कमजोर एवं वंचित वर्ग को सस्ती दर पर और समय पर बैंकिंग एवं वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इन सुविधाओं में प्रमुख हैं – बचत खाते खोलना, ऋण सुविधा उपलब्ध कराना, भुगतान एवं प्रेषण की सुविधा प्रदान करना, बीमा (जीवन बीमा और गैर–जीवन बीमा) की सुविधा उपलब्ध कराना आदि। भारत में वित्तीय समावेशन की अवधारणा को पहली बार 2005 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा पेश किया गया था।

रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डॉ. रघुराम जी राजन की अध्यक्षता में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों पर गठित समिति ने वित्तीय समावेशन की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार – "वित्तीय समावेशन का तात्पर्य लोगों को उचित लागत पर वित्तीय सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला तक सार्वभौमिक पहुंच उपलब्ध कराना है। इनमें न केवल बैंकिंग उत्पाद बल्कि अन्य वित्तीय सेवाएं जैसे बीमा और इक्विटी उत्पाद भी शामिल हैं।"[1]

वित्तीय समावेशन क्यों जरूरी है?

आज के आर्थिक युग में अर्थ ही अस्तित्व का पैमाना है। चूँकि वित्तीय समावेशन लोगों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में सहायक है, इसलिए यह न केवल व्यक्ति विशेष के हित में है, अपितु राष्ट्र हित में भी है। किसी भी देश की प्रगति तब तक अधूरी है, जब तक उसमें सबकी भागीदारी न हो। वित्तीय समावेशन लोगों को बैंकिंग चैनल से जोड़ता है और समावेशी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में जहाँ 37.20% लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं,[2] वहाँ तो यह और भी आवश्यक है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने 1944 में अपने फिडेल्फिया घोषणा पत्र में कहा था कि "दुनिया में यदि किसी भी कोने में गरीबी है तो वह अमीरी के लिए सर्वत्र खतरा है।"[3]

रोटी, कपड़ा और मकान व्यक्ति की बुनियादी जरूरतें हैं और यदि कोई इनसे वंचित है, तो संभव है कि वह इन्हें

जुटाने के लिए अनुचित तरीके अपनाए जो किसी भी सभ्य, संपन्न और शांतिप्रिय समाज के लिए खतरनाक हो सकता है। दूसरी बात यह भी है कि यदि सरकार के सभी आर्थिक संसाधन इतनी विशाल जनसंख्या के भरण–पोषण की बुनियादी जरूरत में ही खप जाएंगे, तो विकास के लिए धन का टोटा हो जाएगा और आगे की कल्याणकारी योजनाओं को जारी रख पाना मुश्किल हो जाएगा। अतएव, यह बहुत जरूरी है कि लोग खुद की उद्यमिता का विकास करें। हर व्यक्ति में कोई न कोई हुनर अवश्य होता है, पर वित्त के अभाव में वे प्रायः इसे उद्यमिता में तब्दील नहीं कर पाते। वित्तीय समावेशन लोगों को औपचारिक बैंकिंग चैनल से जोड़ने की मुहिम है ताकि लोग सस्ती दर पर कर्ज लेकर स्वयं की उद्यमिता का विकास करें और स्वरोजगार के द्वारा स्वावलंबी बनें। वित्तीय समावेशन का एक दूरगामी लक्ष्य आर्थिक स्वायत्ता भी है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी तो आर्थिक स्वायत्तता को राजनैतिक स्वाधीनता की कुंजी मानते थे।

वित्तीय समावेशन का एक अन्य उद्देश्य लोगों को साहूकारों के चंगुल से मुक्त कराना भी है जिनकी ऊँची ब्याज दरों के जाल में फँसकर अक्सर उनका जीवन तबाह हो जाता है। सूदखोर साहूकारों द्वारा कमजोर वर्ग का किस तरह से शोषण किया जाता है, इसे प्रगतिवादी उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद के 'गोदान' में दातादीन के प्रति गोबर के इस कथन से समझा जा सकता है – "किसी को सौ रुपए उधार दे दिए और उससे सूद में जिंदगी भर काम लेते रहे। मूल ज्यों का त्यों! यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।"[4]

वित्तीय समावेशन का एक अन्य मकसद लोगों में बचत की प्रवृत्ति विकसित करना है क्योंकि जब लोगों का बैंक खाता होगा तो वे अपनी छोटी–छोटी बचतें घर में न रखकर बैंक में जमा करेंगे। इससे जहाँ उन्हें ब्याज मिलेगा, वहीं उनका पैसा भी सुरक्षित रहेगा, जो अन्यथा घर में रखने पर चोरी अथवा व्यसन में खर्च हो सकता है। बूँद–बूँद से घड़ा भरने की भाँति लोगों की छोटी–छोटी बचतें कालांतर में एक बड़ी राशि बन जाती हैं, जो उनके वृहत प्रयोजनों को साधने में सहायक होती हैं।

वित्तीय समावेशन लोगों को भुगतान का प्लेटफार्म भी उपलब्ध कराता है, जिसके द्वारा वे किसी को कहीं से और कभी भी पैसा भेज सकते हैं और सरकार की ओर से प्राप्त होने वाली वित्तीय सहायता/अनुदान को बिना किसी रिसाव के प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय भाषाओं की जनसांख्यिकी

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 10,000 और उससे अधिक लोगों द्वारा बोलने वालों की संख्या के आधार पर कुल 121 भाषाएँ और 270 मातृभाषाएँ हैं। इन भाषाओं में संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित कुल 22 अनुसूचित भाषाओं के अलावा 99 गैर–अनुसूचित भाषाएँ हैं। यदि कुल जनसंख्या में भारतीय भाषाओं का प्रयोग करने वालों की संख्या पर दृष्टिपात किया जाए तो विदित होता है कि 99.98% जनसंख्या प्रथम भाषा के रूप में भारतीय भाषाओं का प्रयोग करती है और सिर्फ 0.02% जनसंख्या की प्रथम भाषा अंग्रेजी है।[5] इन आंकडों से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस देश में इतनी बड़ी तादाद में लोग क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग करते हों, उनसे व्यवहार करने में इन भाषाओं की कितनी बड़ी उपयोगिता है।

वित्तीय समावेशन में भारतीय भाषाओं की भूमिका

जन्म लेने के पश्चात शिशु को भाषिक संस्कार उसकी मां से प्राप्त होते हैं। भाषा से उसका पहला साक्षात्कार उसके लालन–पालन की भाषा से होता है। कानों में पड़ती लोरियों की मधुर ध्वनि उसके भीतर भाषा की समझ विकसित करती है और कोरे कागज रूपी बाल मन पर भाषायी चिह्न अंकित होने लगते हैं। ये भाषायी चिह्न ही आगे चलकर उसकी मातृभाषा का रूप लेते हैं। भारत के अलग–अलग प्रांतों में रहने वालों की मातृभाषाएं वस्तुतः भारतीय भाषाओं का ही रूप हैं। इन भाषाओं के लिए ही भारतेंदु हरिश्चंद ने 'निज भाषा' कहा था– 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल"। भारतेंदु की उपर्युक्त पंक्तियाँ भाषा के आर्थिक पक्ष को उजागर करती हैं और भाषा तथा वित्तीय समावेशन के बीच एक संबंध उद्घाटित करती हैं। भारतेंदु जी निजभाषा की ताकत को समझते थे, इसीलिए उन्होंने इसे सभी प्रकार की प्रगति का आधार माना था। यह चिर प्रमाणित सत्य है कि व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही सबसे अच्छी तरह से सीख और समझ सकता है। मातृभाषा की इसी महत्ता को देखते हुए कोठारी कमीशन (1964–66) ने प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में देने और माध्यमिक स्तर की शिक्षा स्थानीय भाषाओं में देने की अनुशंसा की थी।

29 जुलाई 2020 को घोषित नई शिक्षा नीति में भी प्रारंभिक स्तर की शिक्षा मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा में देने की बात की गई है। क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ.एपीजे अब्दुल कलाम ने कहा था कि "मैं अच्छा वैज्ञानिक इसलिए बन पाया, क्योंकि मैंने गणित और विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में ग्रहण की थी।"[6] यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा एक साधन है, न कि साध्य। साधन इतना जटिल और कठिन नहीं होना चाहिए कि साध्य–प्राप्ति ही मुश्किल हो जाए। उदाहरण के लिए जब किसी बालक को मातृभाषा से इतर भाषा में शिक्षा दी जाती है, तो वह एक तरह के मानसिक अत्याचार के दौर से गुजरता है। उसकी अधिकांश ऊर्जा

भाषा सीखने और समझने में ही खप जाती है, विषय समझना गौण हो जाता है। इसके बजाय जब उसे मातृभाषा में शिक्षा दी जाती है, तो उसका सारा फोकस विषय को सीखने और समझने पर केंद्रित रहता है। यही बात वित्तीय समावेशन पर भी लागू होती है। यदि लोगों को बैंकिंग और वित्त की विभिन्न जानकारियाँ उनकी अपनी भाषा में दी जाएंगी तो वे इनके फायदों को बखूबी समझेंगे और स्वेच्छा से इन सुविधाओं का वरण करेंगे।

जनभाषा में शिक्षा प्रदान करने से लोगों को अपने घर–आंगन जैसे अनौपचारिक वातावरण का आभास होता है। विभिन्न शोध–अध्ययनों से पता चलता है कि अनौपचारिक तरीके से सीखी/समझी गई चीजें मस्तिष्क में आसानी से घर करती हैं और स्मृति पटल पर लंबे समय तक अंकित रहती हैं। गाँव और समाज में हमें ऐसे तमाम उदाहरण देखने को मिलते हैं, जहाँ अनपढ़ महिलाएं कठिन से कठिन कताई–बुनाई, सिलाई–कढ़ाई, कला–शिल्प आदि बिना किसी औपचारिक प्रशिक्षण के सीख जाती हैं। यह इसलिए क्योंकि सीखना– सिखाना उनकी अपनी भाषा में होता है।

आज यदि चीन, जापान, दक्षिण कोरिया जैसे देश विनिर्माण क्षेत्र में अव्वल हैं और उनके निर्यात दुनिया भर में प्रतिस्पर्धी हैं, तो इसके पीछे एक प्रमुख कारण वहाँ निज भाषा में कौशल प्रशिक्षण दिया जाना है। सामरिक और रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इजराइल जैसे छोटे से देश ने जो ऊँचाइयाँ हासिल की हैं, उसमें बड़ा योगदान उनकी भाषा हिब्रू का है। बैंकिंग और वित्त कोई रॉकेट साइंस नहीं है, अपितु सामाजिक व्यवहार का विषय है और लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ा हुआ है। अतएव, यदि लोगों को बैंकिंग से जुड़ने और बैंकिंग सुविधाओं के उपयोग के बारे में उनकी मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में जानकारी दी जाएगी,तो वे न केवल इनसे जुड़ेंगे अपितु इनका इष्टतम उपयोग भी करेंगे, जो अंततः समावेशी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करेगा और देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाएगा।

भारत एक बहुभाषी देश है और अलग–अलग क्षेत्रों के लोगों की बैंकिंग आवश्यकताएं भी अलग–अलग हैं। यहाँ किसी एक भाषा के सहारे वित्तीय समावेशन अभियान को सफल नहीं बनाया जा सकता। चूँकि इस अभियान का फोकस उन लोगों को बैंकिंग सुविधाओं के दायरे में लाना है जो अभी तक इनसे वंचित हैं। ऐसे लोगों में ज्यादातर या तो अनपढ़ या कम पढ़े–लिखे और निम्न आय वर्ग के हैं। अतएव, इन लोगों तक पहुँच स्थापित करने के लिए इनकी भाषा में संप्रेषण की आवश्यकता होगी। मसलन, तमिलनाडुवासी से तमिल में, महाराष्ट्रवासी से मराठी में, ओड़िशावासी से ओड़िया में, पश्चिम बंगाल के निवासी से बांग्ला में, उत्तर भारत के निवासी से हिंदी में संवाद करना होगा।

चूँकि इस अभियान के लिए लिखित और मौखिक दोनों तरह के संप्रेषण की आवश्यकता होती है, अतएव जो भी फार्म, दस्तावेज, जागरूकता सामग्री आदि दी जाए, वह जनभाषा में हो और सरल भाषा में हो ताकि लोग उन्हें समझ सकें और समझ के आधार पर निर्णय ले सकें। वस्तुतः कोई भाषा सरल या कठिन नहीं होती है। हम शब्दों से या तो परिचित होते हैं अथवा अपरिचित। अपरिचित शब्दों की बहुतायत के कारण ही हमें भाषा कठिन जान पड़ती है। इसलिए ग्राहक की भाषा में संप्रेषण करते समय हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे शब्द आम बोलचाल की भाषा से इतर न हों। परन्तु विडम्बना है कि भाषा के सरलीकरण पर इतना जोर दिए जाने के बावजूद आज भी केंद्र सरकार एवं हिंदी भाषी राज्य सरकारों के गजट और अधिसूचनाओं की भाषा इतनी क्लिष्ट और दुरूह होती है कि हिंदी का अच्छा–खासा जानकार भी चकरा सकता है। अगर कोई सूचना अपनी भाषा में होते हुए भी समझ न आए तो ऐसी भाषा का क्या प्रयोजन? वहीं अखबारों को एक आम नागरिक भी चाव से पढ़ता है, क्योंकि अखबार की भाषा आम बोलचाल की भाषा होती है, उसके शब्द आस–पास में फैली भाषा से होते हैं, जिनसे वह पहले से परिचित होता है। आज यदि ऊँची ब्याज दरों के बावजूद लोग कर्ज के लिए साहूकार के पास जाते हैं तो उसका एक बड़ा कारण भाषा है। साहूकार की भाषा वही होती है जो कर्ज लेने वाले व्यक्ति की होती है, इसलिए दोनों के बीच संवाद में भाषा कभी आड़े नहीं आती। दूसरा कारण यह भी है कि साहूकार के पास व्यक्ति को कागजी लिखा–पढ़ी बहुत कम या ना के बराबर करनी पड़ती है। इसके बनिस्बत बैंकों के फार्म अकसर बहुत लम्बे होते हैं, फॉन्ट छोटा होता है और भाषा क्लिष्ट होती है। इस स्थिति में ग्राहक कुछ पढ़ने की बजाए हस्ताक्षर कहाँ करने हैं, सिर्फ उस स्थान पर ध्यान केंद्रित करता है। इसके अलावा बैंक कर्मियों की बातें भी कई बार सामान्य व्यक्ति के पल्ले नहीं पड़ती। इसका एक कारण तो यह है कि बैंकिंग एक तकनीकी विषय है और उसकी भाषा आम बोलचाल की भाषा से भिन्न होती है। वहीं दूसरा कारण बैंक कर्मियों का प्रायः स्थानीय व्यक्ति न होना है। इसके कारण लिखित और मौखिक संप्रेषण में प्रायः वो सुगमता और बोधगम्यता नहीं होती जो स्थानीय लोगों के सामाजिक व्यवहार की भाषा में दिखती है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि वित्तीय समावेशन के लिए भारतीय भाषाएं तो उपयोगी हैं ही, बोलियों की

उपयोगिता भी कम नहीं है। वस्तुतः हम जिन लोगों को वित्तीय समावेशन के दायरे में लाना चाहते हैं, वे ऐसे लोग हैं जो आम व्यवहार में भाषा की बजाय बोली का इस्तेमाल करते हैं और पिछड़े एवं दूर–दराज इलाकों में निवास करते हैं। भारत में जहाँ "कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी" एक वास्तविकता है, ऐसे में इस अभियान को सफल बनाने में बोलियों का दामन थामने (विशेषकर मौखिक संवाद के लिए) में कोई बुराई नहीं है। यदि उत्तर प्रदेश को ही लें जो कि एक हिंदी भाषी प्रदेश है, वहाँ गोरखपुर और बलिया की भोजपुरी उन्मुख हिंदी को मेरठ और मुजफ्फरनगर वाले के लिए समझना आसान नहीं है, वहीं बृज क्षेत्र की हिंदी को अवध क्षेत्र वाला आसानी से नहीं समझ सकता। अतएव, एक क्षेत्रीय भाषा वाले राज्य में भी लोगों से संपर्क के लिए विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों की आवश्यकता होगी।

विपणन में प्रोडक्ट के साथ–साथ भाषा की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कोई भी प्रोडक्ट तैयार होते ही जनता के बीच लोकप्रिय नहीं हो जाता, बल्कि तरह–तरह के विज्ञापनों के जरिए उसका प्रचार–प्रसार करना होता है। जनता को जनता की भाषा में उसकी खूबियाँ बतानी पड़ती हैं, तभी उसकी बड़े पैमाने पर बिक्री संभव हो पाती है। यही बात वित्तीय समावेशन पर भी लागू होती है। जब बैंकिंग उत्पादों और सुविधाओं की जानकारी लोगों को उनकी भाषा में दी जाएगी तो निश्चय ही लोगों के बीच इनकी मांग पैदा होगी। किसी प्रोडक्ट या सुविधा की मांग पैदा करना विपणन का पहला कदम होता है। वित्तीय समावेशन अभियान के तहत भी हम लक्ष्य समूह को उनकी भाषा में बैंकिंग, बीमा आदि के फायदे बताकर इन उत्पादों और सुविधाओं की मांग पैदा कर सकते हैं। इस दिशा में बैंकिंग कॉरस्पॉन्डेंस की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे स्थानीय होते हैं और लोगों से उनकी भाषा में संवाद करते हैं।

आज का युग तकनीक आधारित बैंकिंग का युग है। इस दौर में जहाँ लोगों को बैंकिंग से जोड़ना महत्वपूर्ण है, वहीं बैंकिंग और वित्तीय सुविधाओं के सम्यक उपयोग की जानकारी देना और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पर्याप्त जानकारी व सावधानी के बगैर बैंकिंग सुविधाओं का उपयोग जोखिमपूर्ण हो सकता है। यदि असुरक्षित बैंकिंग के कारण लोगों के साथ बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी की घटनाएं होंगी तो उनका बैंकिंग से मोहभंग हो सकता है और वित्तीय समावेशन अभियान को झटका लग सकता है। लोगों को बैंकिंग से जोड़ने और सुरक्षित बैंकिंग का गुर सिखाने में भारतीय भाषाएं ही सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

हमारे उपनिषदों में कहा गया है–'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं है।[7] ज्ञानार्जन के लिए भाषा चाहिए और भाषा में भी अपनी भाषा चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि गाँव–देहात के जो छात्र राज्य बोर्डों में बहुत अच्छा प्रदर्शन कर रहे होते हैं, अंग्रेजी माध्यम के कालेजों में प्रवेश लेने पर पिछड़ जाते हैं। पिछड़ जाना उनकी मेहनत अथवा प्रतिभा में कमी की निशानी नहीं है, बल्कि यह भाषायी अवरोध के कारण है। यही बात वित्तीय समावेशन और कौशल विकास पर भी लागू होती हैं, जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही प्रभावी हो सकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वित्तीय समावेशन अभियान की सफलता वित्तीय साक्षरता पर निर्भर करती है। जब लोग वित्तीय रूप से साक्षर होंगे, तभी वे बैंकिंग और बीमा सुविधाओं के बारे में जागरूक होंगे और उनका विवेक पूर्ण प्रयोग करेंगे। भारतीय भाषाओं में वित्तीय साक्षरता के द्वारा न केवल वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया जा सकता है, अपितु स्वदेशी और आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना भी साकार की जा सकती है।

संदर्भ–

1. https://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/Speeches/PDFs/MFI101213FS.pdf
2. https://www.rbi.org.in/scripts/PublicationsView.aspx?id=19887 18 Sep 2020
3. The ILO Declaration of Philadelphia, 1944
4. मुंशी प्रेमचंद, गोदान
5. censusindia.gov.in
6. https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-must-understand-the-importance-of-mother-tongue-18973368.html
7. वृहदारण्यक उपनिषद

ISSN No. : 0970-9398

चिकित्सा विज्ञान का हिंदी माध्यम से शिक्षण

– अमित कुमार वर्मा
नई दिल्ली

'प्रथम सुख निरोगी काया' जैसी सारगर्भित उक्ति से तादात्मय रखने वाला चिकित्सा विज्ञान आधुनिक परिवेश में निःसंदेह नित नूतन ऊँचाईयाँ स्थापित कर रहा है, परन्तु भारत जैसे देश में इसका पठन–पाठन माध्यम के तौर पर 'हिंदी' भाषा में न होना भी अत्यन्त चिंता का विषय है। प्रस्तुत विषय के सन्दर्भ में हमें उसके चार प्रमुख घटकों–चिकित्सा विज्ञान, हिंदी भाषा, माध्यम और शिक्षण के सम्प्रत्ययों को बखूबी समझना होगा। शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य से जुड़ा या यूँ कहें कि व्यक्ति के समेकित स्वास्थ्य का ख्याल रखने वाला व्यवस्थित ज्ञान–विज्ञान ही चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत आता है। इसके तहत विभिन्न रोगों, स्वास्थ्य की वृहद जानकारी विभिन्न आयामों से छात्रों को दी जाती है।

ऋषियों–मुनियों और प्राकृतिक चिकित्सा के गुरुओं की अमूल्य निधि वाले देश 'भारत' में चिकित्सा विज्ञान की जड़ें अत्यन्त मजबूत हैं। आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा व योग साधना आदि के क्षेत्र में भारतीय जनमानस चरक, सुश्रुत व धन्वंतरि जैसी महान हस्तियों से परिचित ही है। चरक संहिता व आयुर्वेद–मीमांसा जैसे भारतीय चिकित्सीय ग्रन्थों की बदौलत ही विश्व जगत को चिकित्सा विज्ञान की अमूल्य निधि मिली। सामान्यतः स्वास्थ्य व रोगों से सरोकार रखने वाले विज्ञान के तौर पर हम चिकित्सा विज्ञान को समझ सकते हैं।

दूसरे महत्वपूर्ण घटक 'हिंदी' पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था–''हिंदी भाषा का अपमान करना राष्ट्रीय आत्महत्या के समान है। कोई भी विदेशी भाषा इसका स्थान नहीं ले सकती।'' हिंदी, यकीनन हम हिन्दुस्तान के निवासियों की आत्मा है, थाती है। यह भाषा नहीं अपितु एक संस्कृति है। 14 सितम्बर, 1949 को भारतीय संविधान में हिंदी को यद्यपि राजभाषा का दर्जा मिल गया, परन्तु यह सच्चे अर्थों में 'राष्ट्रभाषा' न बन सकी, इसका मलाल भी हिंदी–प्रेमियों से विलग नहीं है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन, राष्ट्र कोकिला सरोजिनी नायडू, पं० जवाहर लाल नेहरू, गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि महापुरुषों ने हिंदी भाषा के प्रयोग, प्रचार–प्रसार और उसके आम जनमानस की भाषा होने की अपने–अपने तरीके से वकालत की है। इस प्रकार सभी ने हिंदी भाषा को राष्ट्र एवं व्यक्ति सहित सभी के विकास हेतु अपरिहार्य माना है।

अब तीसरे प्रमुख घटक 'माध्यम' की बात करें, तो 'माध्यम' का अभिप्राय तो सिर्फ उस जरिये या साधन के रूप में माना जा सकता है जो कथित/लिखित बात को अभीष्ट तक सम्यक ढंग से पहुँचा सके। मेरे अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण में माध्यम वही समीचीन होता है, जो सीखने वाले (श्रोता/पाठक) को पाठ/वार्ता की विविध बातें अधिकतम स्तर तक, सोच व समझ के धरातल पर बेहतरीन ढंग से पहुँचा सके। इस बाबत हिंदी माध्यम बेबाक रूप से भारतीय जनमानस की आत्मा से सरोकार एवं तादात्म्य रखता है।

अन्त में चौथे घटक 'शिक्षण' पर दृष्टिपात करने से हम पायेंगे कि शिक्षण पठन–पाठन या शिक्षा देने की प्रक्रिया से जुड़ा है, जिसमें एक अधिक अनुभव एवं ज्ञान धारित व्यक्ति (शिक्षक), एक कम अनुभव एवं ज्ञान वाले व्यक्ति (छात्र) को सीखने/समझने हेतु प्रेरित करता है। वस्तुतः, शिक्षण एक निश्चित उद्देश्य के साथ छात्र और शिक्षक के बीच होने वाली वह अन्तः क्रिया है, जो ज्ञान, समझ एवं प्रयोग (व्यवहार) के धरातल पर छात्र को और सुदृढ़ बनाती है।

इस प्रकार चारों सम्प्रत्ययों/घटकों के बारे में सामान्य दृष्टिकोण विकसित होने व जानकारी प्राप्त करने के बाद इनके पारस्परिक संबंधों, प्रभावों व अन्तः क्रियाओं पर विश्लेषण करना अत्यावश्यक हो जाता है।

यदि भारतवर्ष में शिक्षा के माध्यम अथवा शिक्षण के माध्यम की बात करें, तो लार्ड मैकाले के समय की (1835 ई०) 'अंग्रेजी' शिक्षा पद्धति ही आज भी जोरों से प्रयोग में लायी जा रही है। मैकाले की रणनीति तो भारतीयों को ऐसे बाबू (क्लर्क) बनाने की थी, जो जन्म से तो भारतीय हो परंतु दिमागी तौर पर सिर्फ और सिर्फ 'अंग्रेज'। उसका प्रभाव भी भारतीय समाज में गली–कूचों में नित खुल रहे तथा कथित ऑक्सफोर्ड और क्रैम्ब्रिज जैसे माण्टेसरी/पब्लिक स्कूलों के विस्तार के तौर पर देखा जा सकता है।

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में 'हिंदी माध्यम' से शिक्षण की जब–जब बातें होती रही हैं, आवाजें उठती हैं तो विरोध पक्ष सबसे बड़ी दलील पाठयक्रम या पाठय–पुस्तकों की अनुपलब्धता के रूप में देने लगता है। ये दलीलें/वकालतें

न सिर्फ आधुनिक जगत में विश्व पटल पर बृहद तौर पर विस्तार लेती हिंदी के भूमण्डलीकृत फलक के सामने न सिर्फ बौनी हैं, अपितु ओछी कवायदें भी हैं। हमारी राजभाषा हिंदी आज के वैश्वीकरण के दौर में इतनी उदार, ग्रहणशील, संवेदनशील एवं लोचयुक्त है कि आज हिंदी के महत्वपूर्ण ग्रंथों–रामायण, रामचरित मानस, महाभारत आदि का न सिर्फ प्रादेशिक भाषाओं (तमिल, गुजराती आदि) में ही अनुवाद हुआ है, वरन् उनके सत्साहित्य अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी (फ्रेंच) और जर्मन आदि भाषाओं में भी नित–प्रतिदिन अनुदित हो रहे हैं।

स्कूली शिक्षण से तारतम्य/सम्बद्ध रखने वाली संस्था– एन.सी.ई.आर.टी. (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्) ने विगत वर्षों में कुछ स्वयं सेवी संगठनों/गैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) के सहयोग से समझ के माध्यम के विषय पर देश भर में अनेक कार्यशालाएँ आयोजित कर यह निष्कर्ष निकाला कि 'समझ केवल मातृभाषा/लोकभाषा में ही सर्वोत्कृष्ट ढंग से विकसित होती है।'

भारत की आत्मा चूँकि गाँवों में बसती है। भारतीय जनमानस और लोक व्यवहार की भाषा सर्वमान्य तौर पर भारत में उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक 'हिंदी' ही है। यकीनन हिंदी भारतीय जनमानस की थाती है, भारतीयों के रोम–रोम को स्वतः ही स्फूर्ति और आनंद का संचार कर देने वाली यह भाषा ही 'चिकित्सा विज्ञान' के शिक्षण का माध्यम बनने का वास्तविक हक रखती है।

अंग्रेजी संस्कृति के शुभेच्छुओं और अंग्रेजी के अन्यान्य प्रचार–प्रसार को तत्पर बुद्धिजीवियों को यह जानकर लज्जा आना कि 'भूमण्डलीकृत विश्व में रूस का एक व्यक्ति भदोही (उ०प्र०) की बनायी कालीन पर बैठकर रूसी भाषा में अनुदित रामायण का पाठ करता है। एक जर्मन भाषी भारतीय कला, संस्कृति व योग को अपनी भाषा में अनुदित करना चाहता है।' मैं अपने अंग्रेजी–प्रेमी साथियों से यह प्रश्न करना चाहूँगा कि 'डॉक्टर को यदि 'चिकित्सक' और मेडिसिन को 'दवाई या औषधि' कहकर संबोधित किया जाए तो क्या उसकी प्रभावशीलता कम हो जायेगी?

मंतव्य स्पष्ट है कि भारतीय जनमानस, लोक परम्पराओं के साथ जितना अच्छा तारतम्य 'हिंदी' का है, वह 'अंग्रेजी' कभी नहीं रख पायेगी। अतः ऐसे में भारत में चिकित्सा विज्ञान के शिक्षण का माध्यम हिंदी ही हो सकता है। आधुनिक समय में भारत ने संचार, तकनीकी व विज्ञान के क्षेत्र में इतनी तरक्की भी कर ली है कि वह विश्वस्तरीय चिकित्सीय ग्रन्थों, उपकरण की संदर्शिकाओं (मैनुअल्स) तथा अन्य चिकित्सीय प्रणालियों/ पुस्तकों को हिंदी में अनुदित कर सके। जरूरत है तो सिर्फ हम भारतीयों को अंग्रेजी–प्रेम से जकड़ी हुई मानसिकता को बदल, हिंदी भाषा में पठन–पाठन व व्यवहार करने और उसमें 'गौरव–बोध' की अनुभूति करने की। जब हम सब भारतवासी, अपने–अपने स्तर से हिंदी के प्रति अगाध प्रेम बरसाते हुए इसे हृदयंगम कर व्यवहार में तब्दील कर लेंगे, तो निश्चय ही चिकित्सा विज्ञान का पाठयक्रम हिंदी में अनुदित कर उपलब्ध कराया जाएगा और हिंदी प्रेमी चिकित्सक भी मिल सकेंगे तथा साथ ही साथ भावी भारतीय चिकित्सक भी हिंदी से वैसे ही प्रेम करेंगे जैसे एक बालक अपनी माँ से, एक सैनिक अपनी मातृभूमि से...।

''सुन्दर होंगे देश बहुत से, बहुत बड़ी है यह धरती
पर अपनी माँ तो अपनी होती है, अमित प्यार जो है करती।''

अन्त में मैं यही कहना चाहूँगा–

''चिकित्सा विज्ञान क्या सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान का
साहित्य, दर्शन, तकनीकी का माध्यम हो 'हिंदी'।
शिक्षण इसमें सरल है माध्यम भी यह अति सरस है
हम भारतीयों की इसमें बसती है आत्मा,
सच में 'हिंदी भाषा में शिक्षण' तो बस
मानों हो 'अमृत' सरीखा अनुपम रस
आओ खुद पहल करें औरों को भी इस ओर ले चले।''

अतः आज समय की आवश्यकता है कि भारतवर्ष में 'चिकित्सा विज्ञान का हिंदी में शिक्षण' उपलब्ध कराया जाए ताकि आम जन और ग्रामीण परिवेश के छात्र भी इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर पाने में सक्षम हों।

ISSN No. : 0970-9398

डिजिटल इंडिया और राजभाषाः तकनीकी क्रांति में एक-दूसरे के सहयोगी

– डॉ. रवि देव
पूर्व ए एम एच डी एस एस सी, रक्षा मंत्रालय

आज का भारत तकनीकी परिवर्तन के युग में प्रवेश कर चुका है। डिजिटल इंडिया योजना ने देश के कोने–कोने तक इंटरनेट, डिजिटल सेवाएं और तकनीकी उपकरण पहुँचाने का बीड़ा उठाया है। लेकिन इस डिजिटल क्रांति की वास्तविक सफलता तब ही संभव है जब इसे देश के सामान्य नागरिक तक उनकी अपनी भाषा में समझाया और पहुँचाया जाए। यहाँ राजभाषा हिंदी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। डिजिटल इंडिया और राजभाषा एक–दूसरे के पूरक हैं और मिलकर भारत को तकनीकी और सामाजिक दोनों ही रूपों में सशक्त बनाते हैं।

आज का भारत तकनीकी परिवर्तन और डिजिटल नवाचार के एक नए युग में तीव्र गति से अग्रसर है। क्पहपजंस प्दकपं जैसी महत्वाकांक्षी पहल ने देश के दूरस्थ और ग्रामीण क्षेत्रों तक इंटरनेट, डिजिटल सेवाओं, ई–गवर्नेंस तथा आधुनिक तकनीकी संसाधनों की पहुँच सुनिश्चित करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। इस डिजिटल परिवर्तन ने भारत को तकनीकी रूप से अधिक सशक्त, गतिशील और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के अनुरूप बनाने की दिशा में नई संभावनाएँ खोली हैं। किन्तु यह डिजिटल क्रांति तभी वास्तविक अर्थों में सफल और समावेशी सिद्ध होगी, जब तकनीकी ज्ञान, डिजिटल सेवाएँ और नवाचारों के लाभ देश के सामान्य नागरिक तक उसकी अपनी भाषा में सहज, सरल और प्रभावी रूप से पहुँच सकें। यदि तकनीक केवल सीमित वर्ग की भाषा तक सिमटकर रह जाए, तो उसका व्यापक सामाजिक प्रभाव संभव नहीं हो पाएगा। इसलिए मातृभाषाओं, विशेषतः हिंदी और भारतीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री, ई–शिक्षा, प्रशासनिक सेवाओं तथा तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। भाषा और तकनीक का समन्वय ही डिजिटल भारत की वास्तविक शक्ति है। जब नागरिक अपनी भाषा में तकनीक को समझेंगे, अपनाएँगे और उसका उपयोग करेंगे, तभी डिजिटल सशक्तिकरण, सामाजिक समावेशन और आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना पूर्ण रूप से साकार हो सकेगी।

यही वह स्थान है जहाँ राजभाषा हिंदी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और अनिवार्य हो जाती है। हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि यह भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और भावनात्मक ताने–बाने की आत्मा और परिचय है। यह वह माध्यम है जो विविधताओं के इस देश में एकता और समरसता का सूत्रधार बनता है। जब हम डिजिटल इंडिया की बात करते हैं, जो तकनीकी प्रगति के जरिए देश को विश्व पटल पर प्रतिस्पर्धी बनाना चाहता है, तो इस प्रक्रिया में हिंदी भाषा का सशक्त स्थान इसे व्यापक और सर्वसमावेशी बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

डिजिटल क्रांति केवल तकनीकी उपकरणों और प्लेटफार्मों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य समाज के हर वर्ग तक सूचना, शिक्षा, स्वास्थ्य, सरकारी योजनाओं और आर्थिक अवसरों को पहुँचाना है। यदि इस सूचना का प्रसार और शिक्षा केवल अंग्रेजी या कुछ सीमित भाषाओं में हो, तो देश के विशाल हिंदी–भाषी और ग्रामीण क्षेत्र के लोग इस डिजिटल बदलाव के लाभ से वंचित रह सकते हैं। ऐसे में हिंदी भाषा ही वह पुल बनती है जो तकनीकी ज्ञान को आम जनमानस की भाषा में अनुवादित कर, उसकी पहुँच को सरल और सुलभ बनाती है।

हिंदी का उपयोग डिजिटल माध्यमों में बढ़ाने से यह सुनिश्चित होता है कि शिक्षा, सरकारी सेवाएँ, स्वास्थ्य जागरूकता, कृषि जानकारी और व्यावसायिक अवसर जैसी महत्वपूर्ण जानकारियाँ हर व्यक्ति तक, चाहे वह किसी भी सामाजिक या आर्थिक पृष्ठभूमि का हो, सहजता से पहुँच सकें। इस तरह डिजिटल इंडिया और राजभाषा हिंदी एक–दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हुए न केवल भारत को तकनीकी रूप से, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी सशक्त बनाते हैं।

यह सहयोग देश के डिजिटल साक्षरता मिशन को गति देता है, जिससे डिजिटल विभाजन (Digital Divide) कम होता है और समाज के कमजोर और पिछड़े वर्ग भी इस बदलाव का हिस्सा बन पाते हैं। हिंदी के माध्यम से तकनीकी जानकारियों का लोकलीकरण (Localization) शिक्षा और रोजगार के नए अवसर पैदा करता है, जो समावेशी विकास और समानता की दिशा में एक बड़ा कदम है।

साथ ही, हिंदी भाषा की शक्ति से डिजिटल माध्यमों में सांस्कृतिक समृद्धि और राष्ट्रीय पहचान को भी मजबूती मिलती है, जो युवाओं में राष्ट्रभक्ति की भावना और अपनी

ISSN No. : 0970-9398

भाषा के प्रति गर्व को बढ़ावा देती है। यह केवल तकनीकी क्रांति नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति भी है, जो भारत को बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक देश के रूप में सशक्त, समृद्ध और आत्मनिर्भर बनाती है।

इस प्रकार, हिंदी और डिजिटल इंडिया का संयोजन भारत की प्रगति की एक अनिवार्य नींव है, जो न केवल विकास के पथ को गति प्रदान करता है, बल्कि इसे हर नागरिक के लिए उपलब्ध और समझने योग्य भी बनाता है। इसलिए आवश्यक है कि नीति–निर्माता, तकनीकी विशेषज्ञ, शिक्षक, समाज और सरकार मिलकर हिंदी भाषा के संरक्षण, संवर्धन और डिजिटल रूपांतरण को प्राथमिकता दें, ताकि भारत का हर नागरिक इस डिजिटल युग की प्रगति का सहभागी बन सके और एक सशक्त, समृद्ध तथा विश्वस्तरीय भारत का निर्माण हो सके।

डिजिटल इंडियाः एक संक्षिप्त परिचय

डिजिटल इंडिया भारत सरकार की एक अत्यंत महत्वाकांक्षी एवं व्यापक योजना है, जिसे देश के प्रत्येक नागरिक तक डिजिटल सेवाओं को सुलभ, सस्ता और प्रभावी रूप से पहुँचाने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया है। यह योजना केवल तकनीकी उन्नति का प्रतीक नहीं है, बल्कि एक ऐसा क्रांतिकारी प्रयास है जो सरकारी कामकाज को पारदर्शी, त्वरित और सरल बनाकर जन–जन तक सरकारी सुविधाओं का लाभ पहुँचाने का माध्यम है।

Digital India के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय लेन–देन, कृषि, दूरसंचार, ई–गवर्नेंस तथा विभिन्न सरकारी सेवाओं को डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से देश के प्रत्येक गांव, नगर और दूरस्थ क्षेत्र तक पहुँचाने का व्यापक लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह पहल केवल तकनीकी विस्तार की योजना नहीं, बल्कि भारत को डिजिटल रूप से सशक्त, पारदर्शी और समावेशी राष्ट्र बनाने की दूरदर्शी परिकल्पना है।

डिजिटल इंडिया ने प्रशासनिक सेवाओं को अधिक सुगम, तेज और पारदर्शी बनाने के साथ–साथ नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य और वित्तीय सुविधाओं से सीधे जोड़ने का कार्य किया है। ग्रामीण और वंचित क्षेत्रों तक डिजिटल संसाधनों की पहुँच ने सामाजिक समावेशन, आर्थिक प्रगति और तकनीकी जागरूकता को नई गति प्रदान की है। विशेष रूप से डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन शिक्षा, टेलीमेडिसिन, ई–कृषि सेवाओं और डिजिटल संचार के विस्तार ने सामान्य नागरिक के जीवन को अधिक सुविधाजनक, सशक्त और आत्मनिर्भर बनाया है।

चुनौतियाँ और समाधान

डिजिटल इंडिया और राजभाषा हिंदी के बीच सहयोग अत्यंत आवश्यक है, लेकिन इस मेल के सामने कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जिन्हें समझना और उनका प्रभावी समाधान ढूँढ़ना आवश्यक है।

सबसे पहली और बड़ी चुनौती है तकनीकी शब्दावली का हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में सही और सटीक अनुवाद। तकनीक के क्षेत्र में अनेक नए शब्द और अवधारणाएँ आती रहती हैं, जिन्हें लोकल भाषा में समझाने के लिए उपयुक्त शब्दावली तैयार करना बेहद आवश्यक है। कई बार तकनीकी शब्दों का हिंदी में सही अनुवाद न होने के कारण आम जनता को समझने में कठिनाई होती है, जिससे वे डिजिटल सेवाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाते।

दूसरी चुनौती है लोकलाइजेशन (स्थानीयकरण), यानी तकनीकी उपकरणों, ऐप्स, वेबसाइट्स, और डिजिटल सामग्री को स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक संदर्भों के अनुरूप बनाना। सिर्फ भाषा का अनुवाद ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि डिजिटल सेवाओं को इस तरह से ढालना होता है कि वे उपयोगकर्ता के स्थानीय परिवेश से मेल खाएं, जिससे उपयोग में आसानी हो और लोग उन्हें अपनाएं।

तीसरी और महत्वपूर्ण बाधा है डिजिटल साक्षरता की कमी। भारत के ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में बड़ी संख्या में लोग आज भी डिजिटल उपकरणों और इंटरनेट का सही उपयोग करना नहीं जानते। तकनीकी ज्ञान का अभाव, डिजिटल सेवाओं से दूरी और असमर्थता को जन्म देता है। जब तक लोगों को डिजिटल तकनीक की जानकारी और उपयोग की दक्षता नहीं दी जाएगी, तब तक राजभाषा हिंदी की उपलब्धता भी सीमित प्रभाव डाल पाएगी।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए कई समाधान अपनाए जाने चाहिए। सरकार, शैक्षणिक संस्थान, और तकनीकी कंपनियों को मिलकर हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में सरल, सहज और प्रभावी तकनीकी सामग्री का सृजन करना होगा। इस सामग्री में तकनीकी शब्दावली का सही अनुवाद, आसान उदाहरण और उपयोगकर्ता की सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए। साथ ही, डिजिटल उपकरणों और सेवाओं का स्थानीयकरण भी जरूरी है ताकि वे हर क्षेत्र और भाषा–भाषी के लिए सुलभ और उपयुक्त हों।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल शिक्षा को व्यापक स्तर पर बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है। विद्यालयों, पंचायतों

और सामाजिक संगठनों के माध्यम से आम नागरिकों को डिजिटल उपकरणों का प्रयोग सिखाना होगा। डिजिटल साक्षरता के साथ–साथ हिंदी भाषा की जानकारी को भी विकसित करना होगा ताकि लोग दोनों का एक साथ लाभ उठा सकें।

डिजिटल इंडिया की वास्तविक सफलता इसी में निहित है कि तकनीकी प्रगति और राजभाषा हिंदी का विकास समानांतर रूप से आगे बढ़े। जब तकनीकी ज्ञान, डिजिटल सेवाएँ और प्रशासनिक सुविधाएँ नागरिकों तक उनकी अपनी भाषा में सहज, सरल और प्रभावी रूप से पहुँचेंगी, तभी डिजिटल सशक्तिकरण का उद्देश्य पूर्णतः सार्थक हो सकेगा। हिंदी और भारतीय भाषाओं में उपलब्ध डिजिटल संसाधन न केवल तकनीक को जनसामान्य के लिए सुलभ बनाएंगे, बल्कि डिजिटल विभाजन को कम कर व्यापक सामाजिक समावेशन को भी सुनिश्चित करेंगे।

वस्तुतः, भाषा और तकनीक का समन्वय ही विकसित और आत्मनिर्भर भारत की आधारशिला है। यदि राजभाषा हिंदी को डिजिटल नवाचार, ई–गवर्नेंस, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ऑनलाइन शिक्षा और तकनीकी संचार के साथ सशक्त रूप से जोड़ा जाए, तो देश का प्रत्येक नागरिक तकनीक का सक्रिय सहभागी बन सकेगा और अपने जीवन की गुणवत्ता में सकारात्मक परिवर्तन ला सकेगा।

अतः आवश्यक है कि डिजिटल इंडिया की योजनाओं में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को केंद्र में रखकर निरंतर प्रयास किए जाएँ। चुनौतियों का दूरदर्शिता, नवाचार और समन्वित नीति के साथ समाधान करते हुए ही डिजिटल इंडिया और राजभाषा हिंदी का सहयोग अधिक प्रभावी, सशक्त और जनोन्मुख बन सकेगा। यही समन्वय भारत के तकनीकी विकास, सामाजिक समरसता और ज्ञान–आधारित राष्ट्र निर्माण की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

राजभाषा हिंदी की भूमिका

भारत में हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समरसता का एक सशक्त सूत्रधार है। यह भाषा हमारी विविधता में एकता का प्रतीक है, जो देश के विभिन्न प्रांतों, भाषाई और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बीच संवाद और समझ का सेतु बनती है। हिंदी ने वर्षों से सरकारी कार्यप्रणाली, शिक्षा, संचार और जनसंपर्क के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे यह आम जनता के बीच एकजुटता और राष्ट्रीय पहचान को मजबूत करने का एक प्रमुख माध्यम बन गई है।

भारत जैसे बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक देश में हिंदी का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि यह देश के अधिकांश हिस्सों में एक सामान्य भाषा के रूप में अपनाई जाती है। हिंदी न केवल प्रशासन और शासन की भाषा है, बल्कि यह भाषा विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच संवाद को आसान बनाती है, जिससे लोकतंत्र की नींव मजबूत होती है और सभी वर्गों को सरकार की योजनाओं, नीतियों और जनसेवाओं की जानकारी आसानी से मिल पाती है।

आज जब हम डिजिटल इंडिया की बात करते हैं, तो तकनीकी विकास और डिजिटल सेवाओं का विस्तार एक क्रांति की तरह देश के हर कोने तक पहुंच रहा है। हालांकि, डिजिटल इंडिया की तकनीकी भाषा अधिकतर अंग्रेजी में प्रस्तुत की जाती है, जो देश के अनेक नागरिकों, विशेषकर ग्रामीण, आदिवासी और पिछड़े इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए पूर्णतः सहज और समझने योग्य नहीं होती। ऐसे में डिजिटल सेवाओं का हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होना अत्यंत आवश्यक हो जाता है, ताकि डिजिटल क्रांति का लाभ देश के हर नागरिक तक बिना किसी भेदभाव के पहुँच सके।

हिंदी भाषा में डिजिटल कंटेंट, सरकारी पोर्टल्स, ई–शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, कृषि संबंधी जानकारी, बैंकिंग और अन्य डिजिटल सुविधाओं का उपलब्ध होना ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के लोगों को सशक्त बनाने में मदद करता है। इससे वे तकनीकी प्रगति के साथ कदम मिलाकर चल सकते हैं, अपनी शिक्षा, रोजगार और जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं। यही नहीं हिंदी में डिजिटल संवाद से सरकारी योजनाओं की पहुंच और प्रभावशीलता बढ़ती है, जिससे सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को बढ़ावा मिलता है।

इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा डिजिटल माध्यमों में सांस्कृतिक संरक्षण और संवर्धन का भी माध्यम है। हिंदी के प्रचार–प्रसार से न केवल तकनीकी साक्षरता बढ़ेगी, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत, लोककथाएँ, साहित्य, कला और परंपराएं भी जीवित और प्रासंगिक बनी रहेंगी।

इस प्रकार राजभाषा हिंदी की भूमिका केवल एक संचार माध्यम की नहीं है, बल्कि यह भारत की सामाजिक एकता, सांस्कृतिक पहचान और लोकतांत्रिक विकास का आधार है। डिजिटल इंडिया के युग में हिंदी के बिना तकनीकी प्रगति और समावेशी विकास की कल्पना अधूरी है। इसलिए आवश्यक है कि हिंदी भाषा को डिजिटल प्लेटफार्मों पर सशक्त किया जाए, ताकि यह डिजिटल युग में हर नागरिक की पहुँच में हो और देश का हर भाग तकनीकी क्रांति का सहभागी बन सके।

इस तरह हिंदी और डिजिटल इंडिया का समन्वय भारत को एक समृद्ध, समावेशी और सशक्त राष्ट्र के रूप में उभारने में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

राजभाषा हिंदी इस संदर्भ में पुल का कार्य करती है, जो तकनीकी ज्ञान को सरल और सुलभ भाषा में परिवर्तित कर आम जनता तक पहुँचाती है। हिंदी के माध्यम से डिजिटल इंडिया का संदेश हर कोने तक पहुंचाना और लोगों के जीवन में तकनीकी बदलाव लाना संभव होता है। यही कारण है कि राजभाषा हिंदी, डिजिटल इंडिया के लक्ष्य को साकार करने में एक अविभाज्य और आवश्यक हिस्सा है।

सहयोग की आवश्यकता और महत्व

डिजिटल इंडिया तभी पूर्ण रूप से सफल हो सकता है जब इसकी सुविधाएँ देश के हर वर्ग तक समान रूप से पहुँचें। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़े इलाकों में रहने वाले लोग, जो तकनीकी प्रगति से अब तक वंचित रहे हैं, उन्हें इस डिजिटल क्रांति का लाभ प्राप्त होना आवश्यक है। इसके लिए यह अनिवार्य है कि डिजिटल सेवाएं, मोबाइल एप्लिकेशन, वेबसाइट पोर्टल और सूचना सामग्री न केवल अंग्रेजी में, बल्कि हिंदी और भारत की विभिन्न मातृभाषाओं में उपलब्ध हों। तभी देश के आम नागरिक चाहे वे किसी भी क्षेत्र या वर्ग से आते हों, डिजिटल दुनिया की सुविधाओं का उपयोग कर सकेंगे और अपने जीवन को बेहतर बना सकेंगे।

राजभाषा हिंदी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह तकनीकी और जटिल संदेशों को सरल, स्पष्ट और सहज भाषा में परिवर्तित कर आम जनता तक पहुँचाने का पुल है। हिंदी भाषा की पहुँच व्यापक होने के कारण यह विशेष रूप से ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में बसे लोगों को डिजिटल सेवाओं से जोड़ने में मदद करती है। उदाहरण के तौर पर, यदि एक किसान अपनी मातृभाषा में ऑनलाइन सरकारी योजनाओं की जानकारी, आवेदन प्रक्रिया या डिजिटल बैंकिंग की सुविधाएं समझ सके तो वह आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बन पाएगा। इसी प्रकार छात्र अपनी भाषा में शिक्षा से जुड़ी डिजिटल सामग्री का उपयोग कर बेहतर अवसर प्राप्त कर सकेंगे।

यदि यह सुविधा नहीं मिली तो तकनीकी क्रांति केवल शहरों, शहरी क्षेत्रों और शिक्षित वर्ग तक सीमित रह जाएगी। इससे समाज के बड़े हिस्से को इस बदलाव से वंचित रहना पड़ेगा, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ और बढ़ेंगी। यह स्थिति भारत के विकास के लिए हानिकारक होगी और समावेशी विकास के सपने को अधूरा छोड़ देगी।

इसलिए यह आवश्यक है कि सरकार, तकनीकी संस्थान और समाज मिलकर हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा दें, लोकलाइजेशन (स्थानीयकरण) को मजबूती प्रदान करें और डिजिटल सेवाओं को सभी के लिए आसान, सुलभ और समझने योग्य बनाएं। केवल तभी डिजिटल इंडिया की योजना के माध्यम से देश के प्रत्येक नागरिक को सशक्त बनाया जा सकेगा और भारत एक समावेशी, प्रगतिशील और तकनीकी रूप से सक्षम राष्ट्र के रूप में उभरेगा।

निष्कर्ष

डिजिटल इंडिया और राजभाषा हिंदी भारत के विकास और शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति के दो अत्यंत महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। डिजिटल इंडिया देश को तकनीकी और डिजिटलीकृत युग में सक्षम बनाने का माध्यम है, जो सूचना, संचार, शिक्षा और सेवाओं को हर नागरिक तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करता है। वहीं राजभाषा हिंदी इस डिजिटल क्रांति को देश के व्यापक जनसामान्य तक पहुँचाने और समझने योग्य बनाने में एक सशक्त सेतु का कार्य करती है।

शिक्षा के क्षेत्र में डिजिटल इंडिया ने शिक्षा की गुणवत्ता, पहुँच और प्रभावशीलता को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म, ई–बुक्स और वीडियो लेक्चर्स के माध्यम से शिक्षा अब दूर–दराज के क्षेत्रों में भी आसानी से उपलब्ध हो रही है। यह तकनीकी क्रांति बच्चों, युवाओं और वयस्कों को ज्ञान अर्जित करने, कौशल विकसित करने और प्रतियोगी दुनिया में प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाती है।

परन्तु इस क्रांति की सफलता तभी सुनिश्चित हो सकती है जब यह भाषा की बाधाओं से मुक्त हो। भारत जैसे बहुभाषी देश में शिक्षा और सूचना की सुलभता तभी संभव है जब इसे मातृभाषा या सहज समझ में आने वाली भाषा में प्रस्तुत किया जाए। हिंदी जो देश की राजभाषा है और अधिकांश जनसंख्या की मातृभाषा है, इसका संरक्षण और संवर्धन डिजिटल शिक्षा को प्रभावी और समावेशी बनाने के लिए अनिवार्य है।

अगर हम तकनीक और भाषा दोनों को साथ लेकर चलें तो हम शिक्षा के क्षेत्र में असमानता, भेदभाव और डिजिटल दूरी को समाप्त कर सकते हैं। इससे हर बच्चा चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण, आर्थिक रूप से मजबूत हो या कमजोर, वह समान अवसर पा सकेगा और शिक्षा की शक्ति से अपने जीवन को बेहतर बना सकेगा।

अतः यह स्पष्ट है कि डिजिटल इंडिया की तकनीकी प्रगति और हिंदी भाषा का संरक्षण एक–दूसरे के पूरक हैं। हिंदी के माध्यम से डिजिटल शिक्षा की पहुँच बढ़ाकर हम न केवल शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाएंगे, बल्कि सामाजिक एकता, सांस्कृतिक समृद्धि और राष्ट्रीय पहचान को भी सुदृढ़ करेंगे।

इसलिए सरकार, शिक्षाविद, तकनीक विशेषज्ञ और समाज के हर वर्ग को यह सुनिश्चित करना होगा कि डिजिटल इंडिया के साथ–साथ हिंदी भाषा को भी सशक्त बनाया जाए। तभी हम भारत को एक समृद्ध, शिक्षित, सशक्त और आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में स्थापित कर पाएंगे, जहाँ हर नागरिक तकनीक और भाषा दोनों की शक्ति से अपने अधिकारों, अवसरों और सामर्थ्य को समझ सके।

डिजिटल इंडिया और हिंदी भाषा का प्रभावी समन्वय ही शिक्षा के वास्तविक लोकतंत्रीकरण का आधार बन सकता है। जब डिजिटल शिक्षा, ज्ञान–संसाधन और तकनीकी अवसर विद्यार्थियों तक उनकी अपनी भाषा में पहुँचेंगे, तभी शिक्षा वास्तव में सर्वसुलभ, समावेशी और जनोन्मुख बन सकेगी। हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से डिजिटल शिक्षण न केवल ग्रामीण और वंचित वर्गों को मुख्यधारा से जोड़ेगा, बल्कि ज्ञान और अवसरों के बीच विद्यमान भाषायी दूरी को भी समाप्त करेगा।

वस्तुतः, शिक्षा, भाषा और तकनीक का यह त्रिवेणी–संगम भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास, ज्ञान–सशक्तिकरण और आत्मनिर्भर भविष्य की मजबूत आधारशिला है। डिजिटल मंचों पर हिंदी की सशक्त उपस्थिति विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, नवाचार क्षमता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के प्रति नई चेतना का संचार करेगी। इससे वे केवल तकनीक के उपभोक्ता नहीं, बल्कि ज्ञान–निर्माता और नवाचार के सक्रिय सहभागी बन सकेंगे।

अतः आवश्यक है कि सरकार, शिक्षण संस्थान, तकनीकी विशेषज्ञ और समाज मिलकर इस दिशा में निरंतर प्रयास, नवाचार और सहयोग को बढ़ावा दें। यही समन्वित प्रयास भारत के प्रत्येक विद्यार्थी को डिजिटल युग की चुनौतियों का आत्मविश्वासपूर्वक सामना करने योग्य बनाएगा तथा भारत को ज्ञान, तकनीक और सांस्कृतिक नेतृत्व के क्षेत्र में विश्व–पटल पर नई प्रतिष्ठा प्रदान करेगा।

संदर्भ सूची –

1. भारत सरकार, इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय
   - o "Digital India Programme"
   - o वेबसाइटः https://www.digitalindia.gov.in
2. राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार
   - o ''राजभाषा हिंदी की स्थिति और संवर्धन''
   - o वेबसाइटः https://rajbhasha-gov.in
3. नेशनल डिजिटल साक्षरता मिशन (NDLM)
   - o "Digital Literacy for Rural India"
   - o वेबसाइटः https://www.ndlm.in
4. यूनेस्को (UNESCO)
   - o "Importance of Mother Tongue in Education"
   - o रिपोर्ट लिंकः https://en.unesco.org/themes/multilingual-education
5. NITI Aayog रिपोर्ट (2020)
   - o "Digital India: Technology to Transform a Connected Nation"
   - o दस्तावेज लिंकः https://www.niti.gov.in
6. हिंदी भाषा और तकनीकी शिक्षा पर शोध–पत्र
   - o शर्मा, अजय कुमार (2021). ''हिंदी और डिजिटल इंडियारू भाषा, तकनीक और विकास का सेतु''।
   - o प्रकाशितः भारतीय भाषा अनुसंधान पत्रिका, खंड 5, अंक 2।
7. भारतीय जनसंचार संस्थान (IIMC)
   - o "Digital Media and Local Languages" – सेमिनार रिपोर्ट, 2022
8. गूगल इंडिया रिपोर्ट (2019)
   - o "Internet Users in Indian Languages: Growth and Opportunity"
   - o स्रोतः https://www-thinkwithgoogle.com
9. NCERT (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद)
   - o ''मातृभाषा में शिक्षा का महत्व'', शिक्षण पत्रिका
   - o वेबसाइटः https://ncert-nic-in
10. प्रेस सूचना ब्यूरो (PIB), भारत सरकार
    - o "Digital Bharat – Rajbhasha Hindi Initiatives"
    - o स्रोतः https://pib.gov.in

ISSN No. : 0970-9398

कृत्रिम मेधा तथा हिंदी भाषा का भविष्य

– मंजुला वाधवा
उप महाप्रबंधक, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक

वर्ष 2023 कृत्रिम मेधा नवाचार के लिए एक ऐतिहासिक वर्ष रहा है, जिसमें विभिन्न एआई उपकरणों में अविश्वसनीय प्रगति देखी गई है। यह प्रगति एआई के विकास की विराट संभावनाओं की झलक पेश करती है, विशेष रूप से रचनात्मकता, वार्तालाप और दृश्य–सामग्री निर्माण में। आज आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रही है और माना जा रहा है कि अगले दशक की दुनिया आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की दुनिया होगी। ऐसे में भारत की राजभाषा हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाएं इस बदलाव से अछूती नहीं रह सकती। सच भी है, विकास, बदलाव, नवाचार आदि से अछूते रह जाने वाले समाज न सिर्फ प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाते हैं बल्कि धीरे–धीरे अपनी प्रासंगिकता खो बैठते हैं। भाषाओं पर भी यह बात पूरी तरह लागू होती है, जो भाषाएं वक्त के साथ तालमेल बिठाकर नहीं चल पातीं, यकीनन, उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगने लगते हैं।

प्रौद्योगिकी के संकट पर आरूढ़ भाषा केवल प्रबुद्ध वर्ग का भला नहीं करती बल्कि जन साधारण के भी काम आती है। आज हिंदी बाजार और प्रौद्योगिकी के साथ अपने आप को सशक्त करते हुए कृत्रिम मेधा की भाषा बनने की ओर द्रुत गति से अग्रसर है। तभी तो बुद्धिजीवियों के बीच कृत्रिम मेधा की ताकत, उपयोग और अहमियत के बारे में चर्चा जोर–शोर से है। विमर्श सकारात्मक है तो नकारात्मक भी। कुछ की सोच है कि कृत्रिम मेधा हमारी प्रगति के नए रास्ते प्रशस्त करने वाली है तो कुछ का मानना है, इससे बड़े पैमाने पर रोजगार को नुकसान होगा। यह मानव सभ्यता के भविष्य के लिए संकट खड़ा कर देगी, लिहाजा इससे बचने में ही भलाई है। मेरा मानना है, विज्ञान और कंप्यूटर के अनेक आविष्कारों की भांति कृत्रिम मेधा का प्रयोग भी निर्धारित सीमाओं के अंदर रहते हुए जिम्मेदारी के साथ किया जाए तो यह मानव सभ्यता के विकास का

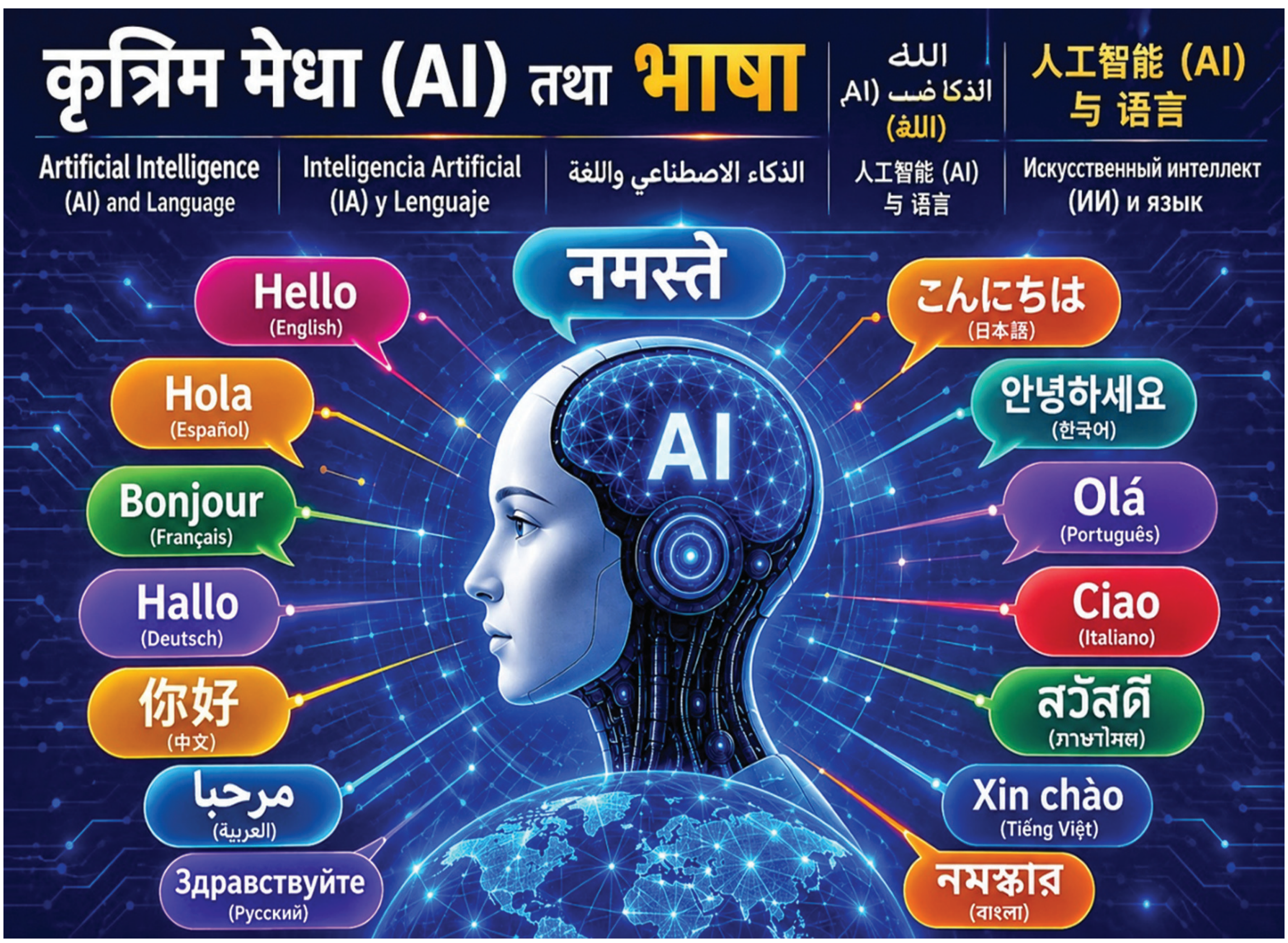

बेहद ताकतवर जरिया बन सकती है। आइए, पहले हम इसकी अवधारणा समझ लें–ज्ञान या जानकारी संबंधी मामलों में किसी मशीन के मानवीय दिमाग की तरह काम करने की क्षमता को कृत्रिम मेधा कहा जाता है, उदाहरणार्थ महसूस करने या समझने, तर्कसंगत ढंग से सोचने, सीखने, समस्याओं को हल करने और यहाँ तक कि रचनात्मकता का इस्तेमाल इसके दायरे में आते हैं। इसे कंप्यूटर साइंस का सबसे उन्नत रूप माना जाता है और इसमें एक ऐसा दिमाग बनाया जाता है, जो इंसानों की तरह सोच सके यानी बनावटी (कृत्रिम) तरीके से विकसित की गई बौद्धिक क्षमता। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के जनक जॉन मैकार्थी के अनुसार यह बुद्धिमान मशीनों, विशेष रूप से बुद्धिमान कंप्यूटर प्रोग्राम को बनाने का विज्ञान और अभियांत्रिकी है अर्थात् यह मशीनों द्वारा प्रदर्शित की गई इंटेलिजेंस है। इसके जरिये कंप्यूटर सिस्टम या रोबोटिक सिस्टम तैयार किया जाता है, जिसे उन्हीं तर्कों के आधार पर चलाने का प्रयास किया जाता है, जिनके आधार पर मानव मस्तिष्क काम करता है। यह इस विषय में अध्ययन करता है कि मानव मस्तिष्क कैसे सोचता है और समस्या को हल करते समय कैसे सीखता है, कैसे निर्णय लेता है और कैसे काम करता है। वैसे तो इसकी शुरूआत 1950 के दशक में ही हो गई थी लेकिन इसकी महत्ता को 1970 के दशक में पहचान मिली। जापान ने सबसे पहले इस दिशा में पहल कर 1981 में फिफ्थ जेनरेशन नामक योजना की शुरुआत की। ब्रिटेन ने इसके लिये श्एल्वीश नाम का एक प्रोजेक्ट बनाया। यूरोपीय संघ के देशों ने भी 'एस्प्रिट' नाम से एक कार्यक्रम की शुरुआत की थी। इसके बाद 1983 में कुछ निजी संस्थाओं ने मिलकर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर लागू होने वाली उन्नत तकनीकों जैसे वृहद आकार के इंटीग्रेटिड सर्किट का विकास करने के लिये एक संघ 'माइक्रो–इलेक्ट्रॉनिक्स एण्ड कंप्यूटर टेक्नोलॉजी' की स्थापना की।

मुख्य रूप से कृत्रिम मेधा का प्रयोग निम्नलिखित में किया जाता है:–

- प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (Natural Language Processing)
- प्रवीण प्रणाली (Expert System)
- दृष्टि प्रणाली (Vision System)
- वाक् पहचान (Speech Recognition)
- बुद्धिमान रोबोट (Intelligent Robot)

इसके अलावा, किसी बेहद जटिल सिस्टम को चलाने... नई दवाएं तैयार करने... नए रसायन तलाशने... खनन उद्योग से लेकर अंतरिक्ष... शेयर बाजार से लेकर बीमा कंपनियां... मानव जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं बचा है, जिसमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का दखल न हो। जिस काम को करने में मनुष्य को समय अधिक लगता है या जो काम जटिल तथा दुष्कर है, वह इन मशीनी दिमागों की मदद से चुटकियों में निपटाया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने के लिये नीति आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष राजीव कुमार की अध्यक्षता में एक समिति का गठन करके उसमें सरकार के प्रतिनिधियों के अलावा शिक्षाविदों तथा उद्योग जगत के विशेषज्ञों को भी प्रतिनिधित्व दिया गया है। केंद्रीय बजट में सरकार ने फिफ्थ जनरेशन टेक्नोलॉजी स्टार्टअप के लिये 480 मिलियन डॉलर का प्रावधान किया है, जिसमें आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, 3–D प्रिंटिंग और ब्लॉकचेन शामिल हैं। इसके अलावा सरकार ने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, रोबोटिक्स, डिजिटल मैन्युफैक्चरिंग, बिग डाटा इंटेलिजेंस, रियल टाइम डाटा और क्वांटम कम्युनिकेशन के क्षेत्र में शोध, प्रशिक्षण, मानव संसाधन और कौशल विकास को बढ़ावा देने की योजना बनाई है।

कृत्रिम मेधा ने संभव कर दिखाया है कि कोई एक भाषा जानने पर भी आप सब भाषा–भाषियों के बीच संवाद, कारोबार आदि कर सकते हैं। हिंदी के प्रयोगकर्ताओं की संख्या ही आज इस भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है जो अंतरराष्ट्रीय कारोबार में हिंदी को हमेशा केंद्रीय भूमिका में रखेगी। हिंदी के भविष्य को कृत्रिम मेधा कैसे प्रभावित कर सकती है, समझने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम हिंदी के समक्ष मौजूद चुनौतियों, अवसरों और कृत्रिम मेधा में विद्यमान अपार संभावनाओं पर गौर करें। कृत्रिम मेधा से अभिप्राय प्रौद्योगिकी के संकट की उस ताकत और रफ्तार से है जिसका इस्तेमाल करते हुए वह इन्सानों की तरह सीख सकती है और उसके आधार पर निर्णय लेकर अच्छे परिणाम दे सकती है। इतना ही नहीं, विशाल डाटा–बेस का सुव्यवस्थित विश्लेषण करने में भी यह समर्थ है, चीजों पर निगरानी रखने की सामर्थ्य भी इसमें है। इसकी सबसे बड़ी खासियत है–सामान्य प्रौद्योगिकी से अलग हटकर स्वयं को जरूरतों के हिसाब से बदलना और लगातार बेहतर बनाना। जहाँ परम्परागत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने के लिए हम पूर्व निर्धारित माध्यमों जैसे माऊस, की बोर्ड, टच स्क्रीन, ग्राफिकल यूजर इंटरफेस आदि को काम मे लेते हैं, वहीं कृत्रिम मेधा इतनी शक्तिशाली है कि वह हमारी भाषा को समझने में सक्षम है और इसके साथ

मौखिक और लिखित दोनों रूपों में संवाद भी स्थापित किया जा सकता है। कंप्यूटर इनपुट, प्रोसैसिंग और आऊटपुट तीनों के क्षेत्र में आज मानो क्रांति आ गई है। इसके जरिए डिजिटल प्रौद्योगिकी को काफी हद तक देखने, भाषा को समझने, ध्वनि का प्रयोग करने, इशारों को समझने और स्पर्श को भांपने जैसी शक्तियाँ मिल गई हैं। जाहिर है, जो भाषाएं इन शक्तियों का लाभ उठाकर स्वयं को आगे बढ़ाने में कामयाब होंगी, वही अपना कायाकल्प कर सकेंगी।

अंग्रेजी की दीर्घकालीन प्रधानता ने भारतीय भाषाओं, विशेषतः हिंदी, के समक्ष आज भी अनेक चुनौतियाँ उपस्थित कर रखी हैं। ज्ञान–विज्ञान, तकनीकी शिक्षा, प्रशासन, शोध और वैश्विक संवाद के अनेक क्षेत्रों में अंग्रेजी के वर्चस्व ने भाषायी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न की है। किन्तु वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), मशीन अनुवाद, वाक्–पहचान तकनीक तथा अन्य आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ इस असंतुलन को कम करने और भारतीय भाषाओं को नई शक्ति प्रदान करने की दिशा में महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभर रही हैं।

आज तकनीक केवल अंग्रेजी के विस्तार का साधन नहीं रही, बल्कि वह भाषायी लोकतंत्रीकरण और बहुभाषिक समावेशन की नई संभावनाएँ भी निर्मित कर रही है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित उपकरण विभिन्न भाषाओं के बीच संवाद, अनुवाद और ज्ञान–साझेदारी को पहले की अपेक्षा अधिक सरल, तीव्र और सुलभ बना रहे हैं। इससे हिंदी जैसी भारतीय भाषाएँ वैश्विक डिजिटल परिदृश्य में नई पहचान और उपयोगिता प्राप्त कर रही हैं। तभी तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा है, 'भारत दुनिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का केंद्र (ग्लोबल हब आफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) बनने का दम–खम रखता है। अगर हम इसमें प्रवीणता हासिल कर लें तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमें अब तक की सीमाओं, वैश्विक व भाषाई असमानताओं आदि से मुक्त होकर विकास की नई दौड़ में बढ़त लेने का मौका दे सकती है'.....

अभी तो विश्वास नहीं होता और यह तिलिस्मी खेल ज्यादा लगता है किंतु विषय विशेषज्ञ बताते हैं कि आने वाले समय की दुनिया भाषा–निरपेक्ष होगी क्योंकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ही वह तकनीक है जो एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद को इतना सरल, सटीक और सहज बना देगी कि अंग्रेजी की सामग्री हिंदी में और हिंदी की विषयवस्तु अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं में पढ़ी जा सकेगी। इतना ही नहीं, किसी एक भाषा में लिखे को दूसरी भाषा में सुन भी पाएंगे। कृत्रिम मेधा हमारी पूर्व की गतिविधियों के आधार पर हमारी पसंद नापसंद का अनुमान सहज ही लगा लेती है। यह पूर्व के अनुभव, व्यवहार विश्लेषण तथा पैटर्न की पहचान के द्वारा एक विशिष्ट एल्गोरिथम पर कार्य करती है, लिहाजा वेब पर हिंदी का जितना कंटेंट होगा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के साथ हिंदी उतने ही प्रभावी तरीके से काम करेगी।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का दूसरा बड़ा प्रभाव हिंदी के अन्य भाषाओं के साथ गहरे संबंधों के रूप में सामने आएगा। नतीजतन, हमारी साहित्यक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और आध्यात्मिक संपदा को वैश्विक पहचान मिलेगी। विश्व भर का शोध, ज्ञान और साहित्य हम हिंदी भाषियों तक पँहुच पाएगा। हिंदी में विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, अर्थव्यवस्था आदि विषयों पर विश्व–स्तरीय सामग्री का अभाव है। एक ओर, हम आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की मदद से खुद ऐसी सामग्री तैयार कर पाएंगे तो दूसरी ओर हम मशीन अनुवाद के जरिए अन्य भाषाओं में संचित ज्ञान को अपनी भाषा के माध्यम से ग्रहण कर पाने की स्थिति में आ जाएंगे। हिंदी में शिक्षण सामग्री तैयार करना आसान तथा त्वरित हो जाएगा। आज केंद्र सरकार तथा कुछ राज्य सरकारों के निर्देश पर हिंदी में पाठय–सामग्री तैयार करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग हो रहा है। यह प्रक्रिया निरंतर सटीक और तीव्र होती चली जाएगी। अंग्रेजी, फ्रेंच या जर्मन की किताबों को स्कैन करके चंद मिनटों में सीधे हिंदी में अनुवाद करना संभव हो गया है। आज हम हिंदी में अच्छी सामग्री की कमी की समस्या से जूझ रहे हैं तो निकट भविष्य में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की सहायता से विभिन्न विषयों पर सैंकड़ों किताबें हमारे सामने उपस्थित होंगी। हिंदी में पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण आसान हो जाएगा। वाचिक ज्ञान को डिजिटल स्वरूपों में सहेजा जा सकेगा।

आइए, अब नजर डालते हैं कृत्रिम मेधा के क्षेत्र में हो रहे प्रयासों पर– ध्वनि प्रसंस्करण की बदौलत वाक् से पाठ और पाठ से वाक् (स्पीच टू टेक्स्ट) प्रौद्योगिकी उपलब्ध हो गई है। कंप्यूटर विजन के कारण हिंदी के दस्तावेजों को स्कैन करके उनके पाठ को कंप्यूटर में टाइप किए गए पाठ के रूप में सहेजना संभव हो गया है। डेढ़ सौ से अधिक वैश्विक भाषाओं और बीस से अधिक भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी के पाठ का दोतरफा अनुवाद संभव है। एलेक्सा, सिरी, गूगल असिस्टेंट जैसे डिजिटल सहायकों के साथ या तो हिंदी में संवाद करना संभव है या इंटरनेट सर्च तथा अनुवाद आदि के लिए उनकी मदद ली जा सकती है। माइक्रोसॉफ्ट और गूगल

जैसी कंपनियों के Application Programming Interface (एपीआई) का प्रयोग करके हिंदी में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से युक्त ऐप बनाना संभव हो गया है। डुओलिंगो भाषा सीखने वाले सबसे प्रसिद्ध ऐप्स में से एक है और इसकी एआई–संचालित अवधारणा ने इसे दुनिया भर के शिक्षार्थियों के बीच पसंदीदा बना दिया है। यह ऐप एक व्यापक हिंदी पाठयक्रम प्रदान करता है जिसमें शब्दावली, व्याकरण और वाक्य संरचना शामिल है। डुओलिंगो सीखने के अनुभव को वैयक्तिकृत करने के लिए एआई का उपयोग करता है, जो शिक्षार्थी की प्रगति के आधार पर अभ्यास के कठिनाई स्तर को अनुकूलित करता है। एक अन्य ऐप है– बैबेल जिसकी खास विशेषता इसकी वाक् पहचान तकनीक है, जो शिक्षार्थियों को अपने उच्चारण का अभ्यास करने और तुरंत प्रतिक्रिया प्राप्त करने में सक्षम बनाती है। इससे शिक्षार्थियों को अपने बोलने के कौशल को विकसित करने और वास्तविक जीवन की स्थितियों में हिंदी का उपयोग करने में आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद मिलती है। चैटजीपीटी ऐसी कृत्रिम मेधा है जिसके साथ संवाद करके अपने प्रश्नों के उत्तर पाने की सुविधा आ गई है। किसी भाषा को सीखना सिर्फ शब्दावली और व्याकरण में महारथ हासिल करने के बारे में नहीं है, यह उस संस्कृति और संदर्भ को समझने के बारे में भी है जिसमें भाषा का उपयोग किया जाता है। सांस्कृतिक समझ को बढ़ाने और समग्र भाषा सीखने का अनुभव प्रदान करने में एआई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भाषा सीखने में एआई का एक अन्य रोमांचक अनुप्रयोग है आभासी वास्तविकता (Virtual Reality) जो ऐसा वातावरण बना सकता है जिसमें रम कर शिक्षार्थी यथार्थवादी माहौल में अपने हिंदी कौशल का अभ्यास कर सकते हैं। ये रमा देने वाले अनुभव शिक्षार्थियों को भाषा और संस्कृति की गहरी समझ विकसित करने में मदद करते हैं, जिससे सीखने की प्रक्रिया अधिक आकर्षक और प्रभावी हो जाती है।

सच तो यह है कि सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल नवाचार की तीव्र लहर अब भारत के जनजीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है। भारत विश्व के सबसे युवा देशों में से एक है, जहाँ लगभग 65 प्रतिशत आबादी युवाओं की है। यह युवा वर्ग नई तकनीकों को किसी जटिल पहेली के रूप में नहीं, बल्कि अपनी जीवन–शैली, शिक्षा, संवाद और कार्य–संस्कृति के स्वाभाविक हिस्से के रूप में स्वीकार कर चुका है। उनमें सीखने, नवाचार करने और वैश्विक स्तर पर उत्कृष्ट परिणाम देने की अपार क्षमता विद्यमान है।

किन्तु इस क्षमता का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब उन्हें ऐसा समावेशी और भाषाई रूप से अनुकूल वातावरण प्राप्त हो, जहाँ वे अपनी मातृभाषा और हिंदी के माध्यम से कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), डेटा विश्लेषिकी (Data Analytics), क्लाउड कंप्यूटिंग (Cloud Computing), साइबर तकनीक और अन्य विज्ञान–प्रौद्योगिकी आधारित विषयों में कौशल तथा विशेषज्ञता अर्जित कर सकें। यदि तकनीकी शिक्षा केवल विदेशी भाषा तक सीमित रहेगी, तो देश की विशाल प्रतिभा का एक बड़ा भाग अवसरों से वंचित रह जाएगा।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय भाषाओं, विशेषतः हिंदी, को तकनीकी शिक्षा, डिजिटल संसाधनों और नवाचार आधारित प्रशिक्षण के केंद्र में स्थापित किया जाए। जब युवा अपनी भाषा में आधुनिक तकनीकों को समझेंगे, विकसित करेंगे और उनका प्रयोग करेंगे, तभी वे भाषाई और वैश्विक असमानताओं से मुक्त होकर आत्मविश्वास के साथ विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा में भाग ले सकेंगे। यही प्रक्रिया भारत को ज्ञान–आधारित, तकनीकी रूप से आत्मनिर्भर और समावेशी महाशक्ति बनने की दिशा में नई गति प्रदान करेगी।

एक और प्रयास है केंद्रीय बजट 2021 में राष्ट्रीय भाषा अनुवाद मिशन (भाषिनी) की घोषणा, इसे मार्च 2022 से प्राकृतिक भाषा के दोहन के लिए 3 वर्षीय मिशन के रूप में शुरू किया गया है। भाषाओं की बाधाओं को पार करने के उद्देश्य से इस मिशन का लक्ष्य है सभी भारतीयों को उनकी अपनी भाषाओं में इंटरनेट तथा डिजिटल सेवाएं मुहैया करवाना और भारतीय भाषाओं में सामग्री को बढ़ाना। इस मिशन का ध्येय आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तथा प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण का उपयोग करके विभिन्न भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में अनुवाद की सुविधा के लिए एक आसान और जवाबदेह पारिस्थितिकी तंत्र को सक्षम करने के लिए एक सार्वजनिक डिजिटल प्लेटफॉर्म विकसित करना है। मशीन एडिड ट्रांसलेशन(MAT), ऑटोमैटिक स्पीच रेकग्निशन (ASR), टेक्स्ट टू स्पीच सिस्टम (TTS), ऑप्टिकल कैरेक्टर रेकग्निशन (OCR), स्पीच टू स्पीच ट्रांसलेशन (S2S) जैसी कोर भाषा तकनीकों के निर्माण की दिशा में पहलकदमियां की गई हैं।

जरूरत इस बात की है कि हम तकनीकी उपलब्धियों की केवल सतही जानकारी प्राप्त करने तक सीमित न रहें, बल्कि उनमें गहरी दक्षता और महारथ हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ें। हमें केवल इन आधुनिक तकनीकों के उपभोक्ता या सामान्य उपयोगकर्ता बनकर संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके शोधकर्ता,

विशेषज्ञ, नवप्रवर्तक और डेवलपर बनने का संकल्प भी लेना होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, डेटा विज्ञान और डिजिटल नवाचार के इस युग में वही समाज आगे बढ़ेगा, जो तकनीक को अपनी भाषा, संस्कृति और ज्ञान–परंपरा से जोड़ने में सफल होगा।

यह तभी संभव है, जब हिंदी और भारतीय भाषाएँ अपने समय की इन अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों को आशंका, संकोच अथवा उपेक्षा की दृष्टि से देखने के बजाय खुले मन और दूरदर्शी दृष्टिकोण के साथ स्वीकार करें। भाषा यदि समय के साथ चलती है, नवाचारों को आत्मसात करती है और ज्ञान–विज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है, तभी उसका भविष्य सुरक्षित और सशक्त बनता है।

UNESCO की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व की लगभग 7200 भाषाओं में से आधी भाषाएँ इस शताब्दी के अंत तक विलुप्त होने के संकट का सामना कर सकती हैं। यह चेतावनी केवल भाषाओं के अस्तित्व का प्रश्न नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की सांस्कृतिक विविधता और ज्ञान–परंपराओं के संरक्षण का भी प्रश्न है। यदि हम हिंदी को भविष्य की सशक्त, जीवंत और वैश्विक भाषा के रूप में स्थापित देखना चाहते हैं, तो आवश्यक है कि हम कृत्रिम मेधा (Artificial Intelligence) और आधुनिक तकनीकों को खुले हृदय से अपनाएँ तथा हिंदी को डिजिटल ज्ञान, शोध, नवाचार और तकनीकी विकास की प्रमुख भाषा बनाने की दिशा में गंभीर और निरंतर प्रयास करें।

वस्तुतः, तकनीक और भाषा का यह समन्वय ही हिंदी को आने वाले समय में केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा नहीं, बल्कि ज्ञान–विज्ञान, नवाचार और वैश्विक संवाद की प्रभावशाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर सकता है। सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि कृत्रिम मेधा के कारण अनेक चुनौतियां उत्पन्न हो रही हैं जैसे कृत्रिम मेधा कम आय वाले श्रमिकों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को करने में सक्षम हैं जैसे बैंक कैशियर के कार्यों को करने हेतु स्वयं–सेवा कियोस्क का प्रयोग, फलों को चुनने वाले रोबोट द्वारा फील्ड में कार्य करने वाले लोगों को प्रतिस्थापित करना। इसके अलावा वह दिन दूर नहीं जब आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग के कारण कई डेस्क–जॉब्स समाप्त हो जायेंगे जैसे अनुवाद, सामग्री–लेखन तथा ग्राहक सेवा। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग डिजिटल बहिष्करण (Digital Exclusion) को भी बढ़ा सकता है। इसके अलावा उन देशों में अधिक निवेश स्थानांतरित होने की संभावना है जहां पहले से ही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से संबंधित कार्य किये जा रहे हैं जो देशों के भीतर और विभिन्न देशों के मध्य अधिक अंतराल की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। एआई के उपयोग से डेटा गोपनीयता से संबंधित गंभीर चिंताएं उत्पन्न हुई हैं। जटिल एल्गोरिथम में विशाल मात्रा में डेटा की आवश्यकता होती है, जिसके कारण प्रायः आम लोगों के डिजिटल फुटप्रिंट को बिना उनकी जानकारी अथवा सूचित सहमति के बेचा जाता है और इसका अनधिकृत प्रयोग किया जाता है। हिंदी की अनेक बोलियों के कारण एआई को सभी विविधताओं को समझने और समायोजित करने में कठिनाई होती है। कई एआई मॉडल अंग्रेजी–केंद्रित डेटा पर आधारित हैं, जिससे हिंदी भाषा की सटीकता और संवेदनशीलता में कमी आ सकती है।

उपाय क्या:

नीति आयोग द्वारा निर्मित 'रेस्पान्सिबल AI फॉर आल' रणनीति इस संदर्भ में काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। यूनेस्को द्वारा सदस्य देशों हेतु एआई पर विचार–विमर्श करने और इसे अपनाने के लिये एथिक्स ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर एक वैश्विक व्यापक मानक मसौदे की सिफारिश नवम्बर 2021 में की गई। 24 से 27 जून 2025 तक युनेस्को द्वारा बैंकॉक में इसी मुद्दे पर तीसरा वैश्विक सम्मेलन आयोजित किया जाने वाला है जिसमें एआई पर तैयार सिद्धांतों–नियमों–विनियमों को गहन विचार विमर्श के पश्चात कार्यरूप देने के संबंध में निर्णय लिए जाएंगे।

अंत में, मानवता के लाभ के लिये हमने आग, बिजली का इस्तेमाल तो करना सीख लिया और अब आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का प्रयोग भी सीख रहे हैं। यकीनन, एआई ग्रामीण और हिंदी–भाषी क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं की पहुँच बढ़ाकर समावेशिता को प्रोत्साहित करेगी। यह हिंदी भाषा में अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं के मिश्रण को बढ़ावा देकर आधुनिक हिंदी के विकास में योगदान देगी। इस प्रकार, हिंदी भाषा सीखने में एआई का एकीकरण परिवर्तनकारी कदम है जो पारंपरिक चुनौतियों से पार पाने के लिए अभिनव समाधान प्रदान करता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस भाषा–साहित्य, शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य और व्यापार जैसे कई क्षेत्रों में नई संभावनाएं ला रहा है किंतु इसके दुष्प्रभावों से उबरना जरूरी है। निःसंदेह यह ऐसी तकनीक है जिसका इस्तेमाल कैंसर के इलाज में या जलवायु परिवर्तन से जुड़ी समस्याओं को दूर करने और भाषा

अंतरण के माध्यम से दुनिया भर का ज्ञान–विज्ञान हमारी पहुंच में लाने के लिए किया जा सकता है। इसका निर्माण हमारी सभ्यता के इतिहास की सबसे बड़ी घटनाओं में से एक है लेकिन सच यह भी है कि यदि इसके जोखिमों से बचने का तरीका नहीं ढूँढा, तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं क्योंकि तमाम लाभों के बावजूद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के अपने खतरे हैं।

इस दिशा में शोध को निरंतर आगे बढ़ाते हुए हमें आशावादी दृष्टिकोण बनाए रखना होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के तीव्र विकास ने जहाँ हमारे लिए अनेक क्षेत्रों में अभूतपूर्व संभावनाओं के द्वार खोले हैं, वहीं इसके प्रभावों को लेकर विभिन्न प्रकार की आशंकाएँ भी व्यक्त की जा रही हैं। ऐसे समय में संतुलित, उत्तरदायी और मानव–केंद्रित दृष्टिकोण अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

फरवरी 2025 में पेरिस में आयोजित एआई शिखर सम्मेलन में भारत के माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा व्यक्त विचार इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा था– "हम एआई के युग की दहलीज पर खड़े हैं, जो मानवता के भविष्य को नया आकार देगा। कुछ लोग चिंतित हैं कि मशीनें इंसानों से अधिक बुद्धिमान हो सकती हैं, लेकिन हमारी साझा नियति का भविष्य हमारे ही हाथों में है।" यह कथन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता स्वयं में न तो लाभकारी है और न ही हानिकारकय उसका स्वरूप और प्रभाव इस बात पर निर्भर करेगा कि मानव समाज उसका उपयोग किस प्रकार करता है।

माननीय प्रधान मंत्री जी का यह संदेश हमें यह विश्वास दिलाता है कि तकनीक का उद्देश्य मानव की क्षमताओं का प्रतिस्थापन नहीं, बल्कि उनका विस्तार और सशक्तीकरण है। एआई शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, प्रशासन, अनुसंधान तथा भाषा प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में नई संभावनाएँ उत्पन्न कर सकता है, बशर्ते उसका विकास नैतिक मूल्यों, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के सिद्धांतों पर आधारित हो। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम एआई को भय या प्रतिस्पर्धा के दृष्टिकोण से न देखकर एक सहयोगी तकनीक के रूप में देखें।

विशेष रूप से हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) अभूतपूर्व संभावनाओं के द्वार खोल रही है। मशीन अनुवाद, वाक्–पहचान, प्राकृतिक भाषा संसाधन, डिजिटल सामग्री निर्माण, ज्ञान का आदान–प्रदान तथा बहुभाषी संवाद जैसी अत्याधुनिक तकनीकों के माध्यम से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को वैश्विक स्तर पर नई पहचान एवं व्यापक उपयोगिता प्राप्त हो सकती है। एआई न केवल भाषा से संबंधित समस्याओं और चुनौतियों को कम करने में मददगार सिद्ध हो रही है, अपितु शिक्षा, अनुसंधान, प्रशासन, स्वास्थ्य, कृषि तथा जनसंचार जैसे विविध क्षेत्रों में ज्ञान और सेवाओं की पहुँच को अधिक सुगम एवं समावेशी भी बना रही है।

यह समीचीन है कि हम अनुसंधान, नवाचार और तकनीकी विकास को निरंतर प्रोत्साहित करते हुए कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के नैतिक, पारदर्शी एवं उत्तरदायी उपयोग को सुनिश्चित करें, ताकि इसके लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति तक समान रूप से पहुँच सकें। साथ ही, भारतीय भाषाओं की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, ज्ञान–परंपरा और भाषायी विविधता को डिजिटल युग की आवश्यकताओं के अनुरूप सशक्त एवं समृद्ध बनाने के लिए एआई की क्षमताओं का प्रभावी उपयोग किया जाना चाहिए। इससे न केवल हिंदी सहित भारतीय भाषाओं का वैश्विक विस्तार संभव होगा, बल्कि ज्ञान, शिक्षा और सूचना तक जनसामान्य की पहुँच भी अधिक सुलभ एवं व्यापक बनेगी।

निस्संदेह, कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण तकनीकी उपलब्धियों में से एक है, जिसने विकास की नई दिशाएँ और अनंत संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं। किंतु इसकी वास्तविक सार्थकता तभी सिद्ध होगी जब इसका उपयोग मानवता के कल्याण, सामाजिक समरसता, ज्ञान–विस्तार, सतत् विकास तथा समावेशी प्रगति के लिए किया जाए। तकनीक स्वयं में न तो लाभकारी होती है और न ही हानिकारक, उसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि उसका उपयोग किस उद्देश्य और किस दृष्टिकोण से किया जाता है। अतः आवश्यक है कि एआई के विकास और उपयोग में मानवीय संवेदनाओं, नैतिक मूल्यों, लोकतांत्रिक आदर्शों तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए।

ISSN No. : 0970-9398

हिंदी के प्रयोग में कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद की भूमिका

– डॉ. दीनदयाल
सहायक आचार्य, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

वर्तमान डिजिटल युग में भाषाएँ न केवल संप्रेषण का माध्यम हैं, बल्कि तकनीकी विकास और वैश्विक संपर्क की आधारशिला भी बन चुकी हैं। हिंदी भाषा, जो भारत की राजभाषा है और विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक मानी जाती है, अब तकनीकी नवाचारों के माध्यम से अपनी सीमाओं से बाहर निकलकर एक नई भूमिका में प्रवेश कर रही है। सूचना प्रौद्योगिकी, कृत्रिम मेधा (AI) और मशीन अनुवाद (MT) जैसी उन्नत तकनीकों ने हिंदी को न केवल प्रशासनिक और शैक्षणिक क्षेत्र में सशक्त बनाया है, बल्कि उसे डिजिटल दुनिया में भी सशक्त उपस्थिति प्रदान की है। आज हिंदी का उपयोग केवल साहित्यिक या सामाजिक संवाद तक सीमित नहीं है, बल्कि यह डिजिटल शिक्षा, सोशल मीडिया, सरकारी सेवाओं और वैश्विक व्यापार जैसे क्षेत्रों में भी प्रभावी रूप से हो रहा है। इस परिवर्तित परिदृश्य में हिंदी के लिए तकनीकी अनुकूलन की आवश्यकता और उसकी दिशा में हो रहे प्रयासों का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यही उद्देश्य इस अध्ययन का मूल है, जिसमें हिंदी भाषा, कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद के अंतर्संबंधों को विश्लेषित किया गया है।

हिंदी भाषा का वैश्विक परिप्रेक्ष्य

हिंदी विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है। वर्ष 2024 के आँकड़ों के अनुसार, हिंदी लगभग 60 करोड़ से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है और यह विश्व में अंग्रेजी और मंदारिन के बाद तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा बन गई है।[1] हिंदी केवल भारत में ही नहीं, बल्कि फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, नेपाल, त्रिनिदाद एवं टोबैगो जैसे देशों में भी व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होती है। डिजिटल संचार, शिक्षा, मीडिया, प्रशासन और व्यापार के क्षेत्र में हिंदी का तेजी से बढ़ता प्रयोग हिंदी के तकनीकी विकास की आवश्यकता को इंगित करता है।

डिजिटल क्रांति और भाषायी परिदृश्य

1990 के दशक के उत्तरार्ध में इंटरनेट की पहुँच और 21वीं सदी की डिजिटल क्रांति ने भाषाओं के प्रयोग के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया। डिजिटल मीडिया, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स और ई–गवर्नेंस की प्रगति ने हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के उपयोग को नए अवसर प्रदान किए।[2] परंतु डिजिटल उपकरणों का अधिकांश विकास अंग्रेजी भाषा–केंद्रित था, जिसके कारण हिंदी भाषियों के लिए एक विशिष्ट तकनीकी अवसंरचना की आवश्यकता महसूस की गई। इस आवश्यकता को पूरा करने में कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद तकनीकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कृत्रिम मेधा (AI) का आगमन

कृत्रिम मेधा का विचार सर्वप्रथम एलन ट्यूरिंग (Alan Turing) ने अपने प्रसिद्ध 'ट्यूरिंग टेस्ट' के माध्यम से प्रस्तुत किया था, जिसमें यह आंका जाता है कि क्या एक मशीन मानवीय बुद्धिमत्ता की नकल कर सकती है।[3] आरंभ में AI का प्रयोग केवल गणनाओं और तर्क–शक्ति तक सीमित था, परंतु धीरे–धीरे इसका विस्तार भाषाई प्रक्रियाओं (Linguistic Processes), छवि पहचान (Image Recognition), भावना विश्लेषण (SentimentAnalysis) और अनुवाद प्रणालियों (Translation Systems) तक हो गया। आज AI के अनुप्रयोग इतने व्यापक हैं कि शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और मीडिया समेत हर क्षेत्र में इसकी उपस्थिति स्पष्ट देखी जा सकती है। हिंदी भाषा के संदर्भ में, AI ने मशीन अनुवाद, भाषा पहचान (Language Identification) और संवाद प्रणालियों (Conversational Systems) के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

मशीन अनुवाद (Machine Translation - MT) का विकास

मशीन अनुवाद तकनीक की शुरुआत 1950 के दशक में हुई जब IBM और जॉर्जटाउन विश्वविद्यालय ने अंग्रेजी से रूसी भाषा के अनुवाद के लिए एक प्रारंभिक मशीन मॉडल विकसित किया था।[4] प्रारंभ में मशीन अनुवाद के प्रयास नियम–आधारित थे, जिसमें व्याकरण और शब्दकोश पर आधारित निर्देश दिए जाते थे। इसके बाद सांख्यिकीय अनुवाद (SMT) का युग आया, जिसमें बड़ी मात्रा में द्विभाषी डेटा से अनुवाद पैटर्न सीखे जाते थे। वर्तमान समय में न्यूरल मशीन अनुवाद (NMT) का प्रचलन है, जिसमें डीप लर्निंग (Deep Learning) और आर्टिफिशियल न्यूरल नेटवर्क (Artificial Neural Network) का प्रयोग करके अनुवाद को अधिक सटीक और स्वाभाविक बनाया जाता है। हिंदी के

लिए गूगल ट्रांसलेट, माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर और अमेजन ट्रांसलेट जैसी सेवाएँ इसी तकनीक का उपयोग करती हैं।[5]

हिंदी में AI और MT के प्रयोग की आवश्यकता

हिंदी भाषी समुदाय की विशालता और विविधता को देखते हुए, एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता थी जो संवाद को सरल, सहज और सुलभ बना सके। सरकारी सेवाओं, डिजिटल शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और वैश्विक व्यापार में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली अनुवाद और संवाद प्रणालियों का विकास आवश्यक हो गया। उदाहरण के लिए, यदि कोई सरकारी दस्तावेज हिंदी में तुरंत अंग्रेजी या अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवादित हो सके, तो प्रशासनिक दक्षता कई गुना बढ़ सकती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में रहने वाले हिंदी भाषी नागरिकों तक डिजिटल सुविधाएँ पहुँचाने के लिए भी हिंदी अनुकूल तकनीकों की जरूरत थी।[6]

हिंदी भाषा और AI/MT का संबंध

हिंदी जैसी संरचनात्मक रूप से जटिल भाषा के लिए कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद प्रणालियाँ एक चुनौती और अवसर दोनों हैं। हिंदी में लिंग, वचन, कारक और विभक्ति जैसी जटिलताएँ हैं, जो अंग्रेजी जैसी भाषाओं में अपेक्षाकृत सरल होती हैं। AI और MT ने इन जटिलताओं को सीखने और अनुकूलित करने के लिए बड़े डेटा सेट, मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म (Machine Learning Algorithms) और न्यूरल नेटवर्क मॉडल (Neural Network Models) का उपयोग किया है। उदाहरणस्वरूप, गूगल का न्यूरल ट्रांसलेशन इंजन अब हिंदी के वाक्य विन्यास को बेहतर ढंग से समझकर अनुवाद कर सकता है, जबकि पूर्व के मॉडल में कई बार अर्थ का अनर्थ हो जाता था।[7] हिंदी के लिए एनएलपी (Natural Language Processing) आधारित विशिष्ट मॉडल जैसे IndicNLP और AI4Bharat प्रोजेक्ट द्वारा भी कई महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं।

हिंदी में कृत्रिम मेधा आधारित मशीन अनुवाद तकनीकें : विकास और प्रमुख उदाहरण

वर्तमान तकनीकी युग में भाषायी अनुवाद केवल शब्दों के स्थानांतरण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह अब भाव, संदर्भ और शैली के संरक्षण तक विस्तारित हो चुका है। हिंदी भाषा, जो संरचनात्मक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और जटिल है, इसके लिए सटीक अनुवाद प्रणाली विकसित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। कृत्रिम मेधा (AI) आधारित मशीन अनुवाद तकनीकों ने इस चुनौती को न केवल स्वीकार किया है, बल्कि उसमें निरंतर प्रगति भी की है। इन तकनीकों ने हिंदी को डिजिटल युग के अनुरूप ढालने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अनुवाद की पारंपरिक विधियाँ जैसे नियम–आधारित प्रणाली अब इतिहास बन चुकी हैं। सांख्यिकीय और न्यूरल आधारित मॉडल के आगमन से अनुवाद की गुणवत्ता, सहजता और सटीकता में अत्यधिक सुधार हुआ है। विशेष रूप से हिंदी जैसी भाषा में, जहाँ लिंग, वचन, कारक, मुहावरे और सांस्कृतिक संदर्भों की बहुलता है, वहाँ AI आधारित मॉडल ने कई नवाचारों को जन्म दिया है। गूगल ट्रांसलेट, माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर, IndicNLP और AI4Bharat जैसी परियोजनाएँ हिंदी अनुवाद में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही हैं।

इस खंड में हिंदी में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख मशीन अनुवाद तकनीकों, उनके विकास क्रम, तकनीकी विशेषताओं तथा हालिया नवाचारों का गहन विश्लेषण किया गया है। इसका उद्देश्य हिंदी अनुवाद को समझना ही नहीं, बल्कि यह दिखाना भी है कि किस प्रकार हिंदी अब वैश्विक संवाद की डिजिटल भाषा बनने की दिशा में अग्रसर है।

मशीन अनुवाद तकनीकों का विकास क्रम

मशीन अनुवाद (Machine Translationn MT) तकनीकों का विकास कई चरणों में हुआ है। प्रारंभिक काल में अनुवाद प्रयास पूर्णतः नियम–आधारित (Rule-Based) थे, जहाँ प्रत्येक वाक्य रचना के लिए विशेष व्याकरणिक नियम बनाए जाते थे। इन प्रणालियों में अनुवादक को शब्दकोश (Lexicon) और व्याकरणिक नियमों का एक विस्तृत सेट तैयार करना होता था।[8]

इसके बाद सांख्यिकीय मशीन अनुवाद (SMT) आया, जिसमें बड़े पैमाने पर द्विभाषी डेटा (Parallel Corpora) का विश्लेषण करके अनुवाद पैटर्न सीखे जाते थे। SMT तकनीक ने नियमों के बोझ को कम किया और सांख्यिकीय संभावनाओं के आधार पर अनुवाद की गुणवत्ता को बेहतर बनाया।[9]

वर्तमान समय में न्यूरल मशीन अनुवाद (NMT) ने इस क्षेत्र में क्रांति ला दी है। यह तकनीक गहन अधिगम (Deep Learning) और आर्टिफिशियल न्यूरल नेटवर्क (Artificial Neural Networks) पर आधारित है, जो मानव–मस्तिष्क की तरह भाषा को समझने और अनुवाद करने में सक्षम है। विशेष रूप से हिंदी जैसी जटिल संरचना वाली भाषा के लिए NMT तकनीक अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही है।[10]

हिंदी में AI आधारित मशीन अनुवाद की विशेषताएँ

हिंदी भाषा के संदर्भ मेंAI आधारित मशीन अनुवाद तकनीकों की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं:

- वाक्य विन्यास (SyntaxAdaptation): हिंदी में क्रिया

का स्थान अंग्रेजी के विपरीत वाक्य के अंत में होता है। AI मॉडल अब इस अंतर को पहचान कर क्रमबद्ध अनुवाद करने लगे हैं।[11]

- लिंग और वचन का समायोजन (GenderAnd Number Handling) : हिंदी में संज्ञाओं और विशेषणों का लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तन आवश्यक है, जिसे न्यूरल अनुवाद मॉडल अब अधिक सटीकता से कर पाते हैं।
- संप्रेषणीय अर्थ संरक्षण (Preservation of Intended Meaning) : हिंदी में भावनात्मक अभिव्यक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। AI प्रणालियाँ अब संप्रेषणीयता और संदर्भ की सटीकता पर अधिक ध्यान दे रही हैं।[12]
- वाक्यांश अनुवाद (Phrase-Based Translation) : हिंदी में कई वाक्यांश (Phrases) जैसे 'आग बबूला होना' या 'धड़ाधड़ काम करना' हैं, जिनका शाब्दिक अनुवाद सही अर्थ नहीं देता। AI अब ऐसे वाक्यांशों का सटीक अर्थानुवाद करने में सक्षम हो रहा है।

हिंदी के लिए प्रमुख मशीन अनुवाद उपकरण और परियोजनाएँ

गूगल ट्रांसलेट (Google Translate)

गूगल ट्रांसलेट हिंदी भाषा के लिए सबसे लोकप्रिय ऑनलाइन अनुवाद उपकरणों में से एक है। 2016 में गूगल ने न्यूरल मशीन अनुवाद प्रणाली को अपनाया, जिसके बाद हिंदी अनुवाद की गुणवत्ता में नाटकीय सुधार हुआ।[13] अब यह केवल शब्द का अनुवाद नहीं करता बल्कि वाक्य के भावार्थ को भी सुरक्षित रखने का प्रयास करता है।

माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर

माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर भी हिंदी के लिए उच्च गुणवत्ता वाला अनुवाद प्रदान करता है। यह विभिन्न प्लेटफार्मों जैसे एंड्रॉइड, आईओएस और वेब पर उपलब्ध है और व्यवसायिक स्तर पर भी प्रयोग किया जाता है।[14] इसके मॉडल बहुभाषीय संवाद को सरल बनाते हैं।

IndicNLP प्रोजेक्ट

IndicNLP भारतीय भाषाओं के लिए विशेष रूप से विकसित एक ओपन–सोर्स परियोजना है, जो हिंदी सहित 11 भारतीय भाषाओं के लिए प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण उपकरण (NLP Tools) प्रदान करती है।[15] इसमें वाक्य खंडन (Sentence Segmentation), लिप्यंतरण (Transliteration), वाक्य रचना विश्लेषण (Parsing) आदि सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

AI4Bharat प्रोजेक्ट

AI4Bharat, भारतीय भाषाओं में AI नवाचारों को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत एक पहल है। इसने हिंदी सहित कई भाषाओं के लिए उच्च गुणवत्ता वाले ट्रांसलेशन मॉडल विकसित किए हैं। इनके मॉडल न्यूरल अनुवाद, आवाज पहचान (Speech Recognition) और भावना विश्लेषण (SentimentAnalysis) को बढ़ावा देते हैं।[16]

हिंदी अनुवाद तकनीकों में हालिया नवाचार

हिंदी के लिए अनुवाद तकनीकों में हाल के वर्षों में कई नवाचार हुए हैं:

- सारांश अनुवाद (Summary Translation) : बड़े ग्रंथों का सार हिंदी में AI की सहायता से संक्षिप्त और अर्थपूर्ण अनुवाद किया जा रहा है।
- आवाज से आवाज अनुवाद (Speech-to-Speech Translation) : वाक् पहचान तकनीक (Speech Recognition Technology) के साथ हिंदी में सीधा आवाज से अनुवाद संभव हुआ है, जो विशेष रूप से शिक्षा और पर्यटन क्षेत्र में उपयोगी है।[17]
- रीयल–टाइम अनुवाद (Real & Time Translation): अब हिंदी में मोबाइल एप्स और डिवाइसेस द्वारा तुरंत संवाद अनुवाद (Instant Communication Translation) संभव हो गया है।
- सांस्कृतिक अनुकूलता (CulturalAdaptation) : हिंदी भाषा के स्थानीय मुहावरों, कहावतों और सांस्कृतिक संदर्भों को अनुवाद में समायोजित करने के लिए AI मॉडल लगातार परिष्कृत किए जा रहे हैं।

हिंदी डिजिटल मीडिया, सरकारी सेवाएँ और शिक्षा में AI आधारित अनुवाद की भूमिका

कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद तकनीकों का प्रभाव केवल तकनीकी विकास तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह हिंदी भाषा के व्यापक प्रयोग और उपलब्धता को नई ऊँचाइयाँ देने में सहायक सिद्ध हुआ है। डिजिटल मीडिया, सरकारी सेवाएँ और शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हिंदी की पहुँच बढ़ाने में इन तकनीकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। जहाँ एक ओर डिजिटल प्लेटफार्मों ने हिंदी सामग्री को बहुसंख्यक उपयोगकर्ताओं तक पहुँचाया है, वहीं दूसरी ओर AI आधारित अनुवाद–प्रणालियों ने भाषायी बाधाओं को समाप्त कर सूचना और ज्ञान को अधिक लोकतांत्रिक बनाता है। इस खंड में तीनों क्षेत्रों में AI और मशीन अनुवाद द्वारा हिंदी भाषा को मिली गति और दिशा का विश्लेषण किया गया है।

हिंदी डिजिटल मीडिया में AI और मशीन अनुवाद की भूमिका

डिजिटल मीडिया हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार का सबसे तेज माध्यम बन चुका है। समाचार पोर्टल, ब्लॉग, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म (जैसे फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम) और यूट्यूब जैसे माध्यमों पर हिंदी कंटेंट की माँग अभूतपूर्व रूप से बढ़ी है।[18]

AI और मशीन अनुवाद तकनीकों ने इस वृद्धि को कई गुना तेज किया है। अब समाचार संस्थाएँ (जैसे दैनिक जागरण, अमर उजाला) AI आधारित अनुवाद उपकरणों का उपयोग कर अंग्रेजी खबरों को हिंदी में अनुवादित कर तुरन्त प्रसारित कर रही हैं। इससे समाचार वितरण की गति और पहुँच दोनों में व्यापक विस्तार हुआ है।

सोशल मीडिया पोस्ट, विज्ञापन और प्रचार सामग्री को बहुभाषीय बनाने के लिए AI आधारित हिंदी अनुवाद अब मुख्यधारा का हिस्सा बन चुका है। उदाहरणस्वरूप, फेसबुक का अनुवाद फीचर हिंदी भाषियों को अंग्रेजी कंटेंट तक आसान पहुँच प्रदान करता है और स्थानीय व्यावसायिक विपणन को भी गति देता है।[19]

यूट्यूब जैसे वीडियो प्लेटफार्म्स पर भी AI आधारित हिंदी सबटाइटल (Subtitles) और ट्रांसक्रिप्शन (Transcription) तकनीकों ने गैर–हिंदी भाषी रचनाकारों की सामग्री को हिंदी दर्शकों तक पहुँचाने का काम आसान कर दिया है। इस तरह हिंदी डिजिटल मीडिया की वैश्विक उपस्थिति में AI का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है।

सरकारी सेवाओं में हिंदी में AI आधारित अनुवाद का योगदान

भारत सरकार ने ई–गवर्नेंस के अंतर्गत सरकारी सेवाओं को आम जनता तक पहुँचाने के लिए डिजिटल साधनों का व्यापक प्रयोग प्रारंभ किया है। भारत सरकार का 'डिजिटल इंडिया' मिशन इस दिशा में एक मील का पत्थर रहा है।[20] परंतु भारत जैसे बहुभाषीय देश में सबसे बड़ी चुनौती थी – हिंदी समेत विभिन्न भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण सामग्री उपलब्ध कराना। इस चुनौती का समाधान AI आधारित मशीन अनुवाद प्रणालियों ने निकाला। अब अनेक सरकारी वेबसाइटें हिंदी में भी सहज उपलब्ध हैं जैसे mygov.in, pmindia.gov.in, india.gov.in आदि।

राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (एनआईसी) और सी–डैक जैसी संस्थाएँ भारतीय भाषाओं में अनुवाद परियोजनाओं पर कार्य कर रही हैं। 'भाषिणी' जैसे प्रयास (जो AI आधारित भारतीय भाषाओं का ओपन प्लेटफॉर्म है) ने हिंदी समेत अन्य भाषाओं में सरकारी दस्तावेजों, योजनाओं और निर्देशों को अधिक सुलभ बना दिया है।[21]

सरकारी नीतियों, आदेशों, प्रेस विज्ञप्तियों तथा शासकीय रिपोर्टों का हिंदी में अनुवाद अब तेजी से और सटीकता के साथ AI आधारित प्रणालियों द्वारा संभव हो रहा है।

शिक्षा क्षेत्र में हिंदी में AI आधारित अनुवाद की भूमिका

शिक्षा क्षेत्र में हिंदी में सामग्री सुलभ कराने के लिए AI और मशीन अनुवाद एक क्रांतिकारी साधन बनकर उभरे हैं। उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी सामग्री को हिंदी में अनुवादित करने का कार्य बहुत तेजी से बढ़ा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा को बढ़ावा देने का विशेष उल्लेख है।[22] इसी संदर्भ में AI आधारित अनुवाद उपकरणों ने उच्च शिक्षा संस्थानों जैसे आई आई टी, आई आई एम और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी पाठयपुस्तकों का हिंदी में अनुवाद कर छात्रों के लिए शैक्षणिक सामग्री को सुलभ बनाया है।

SWAYAM, NPTEL और e-PG Pathshala जैसी डिजिटल शिक्षा परियोजनाएँ अब AI आधारित हिंदी अनुवाद से हिंदीभाषी छात्रों तक पहुँच रही हैं। उदाहरणस्वरूप, NPTEL के कई कोर्सेज अब हिंदी में भी उपलब्ध कराए जा रहे हैं, ताकि तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भाषा एक बाधा न बने।[23] इसके अतिरिक्त, स्कूली शिक्षा में भी अनेक मोबाइल एप्लिकेशन (जैसे DikshaApp) हिंदी भाषा में शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध करा रहे हैं। AI आधारित भाषायी अनुकूलन से ग्रामीण और पिछड़े इलाकों के छात्र भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से जुड़ रहे हैं।

हिंदी डिजिटल संस्कृति के विकास में AI का योगदान

AI और मशीन अनुवाद तकनीकों ने हिंदी डिजिटल संस्कृति के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डिजिटल साहित्यिक लेखन, ब्लॉगिंग, ऑनलाइन कविता मंच, हिंदी पॉडकास्टिंग और ई–पुस्तकें अब हिंदी में अधिक प्रचुरता से उपलब्ध हैं।

AI आधारित वॉयस–टू–टेक्स्ट प्रणालियाँ हिंदी में लेखन को सरल बना रही हैं। जैसे गूगल डिक्टेशन और माइक्रोसॉफ्ट विंडोज वॉयस टाइपिंग के हिंदी संस्करणों ने लेखकों को सुविधाजनक तरीके से रचनाएँ तैयार करने में सहायता दी है।[24] वहीं, ऑनलाइन पत्रिकाएँ और पोर्टल जैसे प्रतिलिपि, कथा और स्टोरी मिरर भी AI आधारित

हिंदी अनुवाद और संपादन उपकरणों का उपयोग कर हिंदी रचनाकारों को एक डिजिटल मंच प्रदान कर रहे हैं। इससे हिंदी भाषा की रचनात्मकता का वैश्विक विस्तार हो रहा है।

हिंदी में कृत्रिम मेधा आधारित अनुवाद की प्रमुख चुनौतियाँ

हिंदी भाषा में कृत्रिम मेधा आधारित अनुवाद तकनीकों का प्रयोग अनेक क्षेत्रों में सफल रहा है, किंतु इसके समक्ष कई विशिष्ट भाषिक और सांस्कृतिक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। हिंदी की संरचना, व्याकरण, भावनात्मक अभिव्यक्ति और क्षेत्रीय विविधता इसे अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक जटिल बनाती है। AI प्रणालियाँ अभी तक इन सभी पहलुओं को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाई हैं। इन चुनौतियों के कारण अनुवाद की सटीकता, संप्रेषणीयता और सांस्कृतिक उपयुक्तता कई बार प्रभावित होती है। इस खंड में हिंदी अनुवाद से जुड़ी प्रमुख समस्याओं का विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जो तकनीकी विकास के साथ–साथ भाषायी और सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण हैं।

सांस्कृतिक और भावनात्मक अनुवाद की कठिनाइयाँ

हिंदी भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं है, बल्कि इसमें भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन और भावनाओं की गहन अभिव्यक्ति अंतर्निहित होती है। जब AI आधारित अनुवाद प्रणालियाँ हिंदी सामग्री का अनुवाद करती हैं, तो अक्सर सांस्कृतिक प्रतीकों, मुहावरों और भावनात्मक गहराई को सही ढंग से व्यक्त नहीं कर पातीं।[25] उदाहरणस्वरूप, हिंदी का प्रसिद्ध मुहावरा 'नाक कट जाना' यदि अंग्रेजी में "Cutting the nose" के रूप में अनुवादित कर दिया जाए, तो वह वास्तविक सांस्कृतिक अर्थ (इज्जत चले जाना) तक नहीं पहुंचा पाएगा। ऐसे में केवल व्याकरणिक रूप से सही अनुवाद पर्याप्त नहीं होताय सटीक भावार्थ का अनुवाद आवश्यक होता है। AI सिस्टम इस स्तर की सांस्कृतिक बारीकियों को पहचानने और व्यक्त करने में अभी भी पूर्णतः दक्ष नहीं हो पाए हैं।

बहुवचनता और संदर्भगत अर्थ (PolysemyAnd Contextual Meaning)

हिंदी में अनेक शब्द बहुव्याख्यात्मक होते हैं, जिनके अलग–अलग प्रसंगों में भिन्न अर्थ हो सकते हैं। उदाहरण के लिए 'कल' शब्द का अर्थ संदर्भ अनुसार 'भविष्य' या 'भूत' अनुसार दोनों हो सकता है। यदि AI केवल शब्द स्तर पर कार्य करे तो गलत अर्थ निकल सकता है।[26]

सही अनुवाद के लिए संदर्भ की पहचान अत्यंत आवश्यक है। हालांकि न्यूरल नेटवर्क आधारित प्रणाली संदर्भ पकड़ने की दिशा में उन्नत हो चुकी हैं, फिर भी हिंदी जैसी जटिल संरचना वाली भाषा में यह कार्य आज भी चुनौतीपूर्ण है। विशेषकर लंबी और जटिल वाक्य रचनाओं में, जहाँ विषय और विशेषण दूर होते हैं, AI मॉडल कभी–कभी संदर्भ को खो बैठते हैं, जिससे अनुवाद की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

व्याकरणिक संरचना और वाक्य विन्यास की जटिलता

हिंदी में वाक्य संरचना अपेक्षाकृत लचीली है, जहाँ वाक्य के अंगों को स्थानानुसार बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए:

- 'राम ने सीता को फूल दिया।'
- 'फूल राम ने सीता को दिया।'
- 'सीता को राम ने फूल दिया।'

इन तीनों वाक्यों में भाव एक ही है, पर शब्द क्रम भिन्न है। अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में वाक्य क्रम अधिक जटिल होता है। AI आधारित अनुवाद प्रणाली को इन विभिन्न संरचनाओं का सही अर्थ निकालना और फिर लक्ष्य भाषा में प्राकृतिक वाक्य बनाना एक कठिन कार्य है।[27] इसके अतिरिक्त हिंदी में विभक्ति चिह्नों का प्रयोग भी वाक्य संरचना को प्रभावित करता है, जिसे AI द्वारा सही ढंग से समझना और प्रयोग करना अनिवार्य है।

हिंदी उपभाषाओं और क्षेत्रीय विविधताओं की चुनौती

हिंदी एक समरूप भाषा नहीं है। इसमें अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मैथिली, महगी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी जैसी अनेक उपभाषाएँ सम्मिलित हैं। प्रत्येक उपभाषा में शब्दावली, उच्चारण और व्याकरणिक रचना में भिन्नता पाई जाती है। AI आधारित हिंदी अनुवाद प्रणालियाँ मुख्यतः मानक हिंदी (Standard Hindi) पर प्रशिक्षित होती हैं। अतः जब कोई भोजपुरी मिश्रित हिंदी वाक्य या अवधी का मुहावरा सामने आता है, तो मशीनें उसे गलत अर्थों में अनुवादित कर सकती हैं।[28] यह क्षेत्रीय विविधता हिंदी अनुवाद को अधिक जटिल बनाती है। एक सार्वभौमिक हिंदी मॉडल बनाना इसलिए भी कठिन है क्योंकि डेटा प्रशिक्षण के लिए उपभाषाओं में समृद्ध और मानकीकृत कॉर्पस की भारी कमी है।

उच्च तकनीकी शब्दावली का अनुवाद

तकनीकी, वैज्ञानिक, विधिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्दावली का हिंदी में सटीक अनुवाद AI के लिए एक अन्य प्रमुख चुनौती है। उदाहरण के लिए 'Quantum Computing', 'Blockchain', 'Artificial Neural Networks'

जैसे शब्दों का हिंदी में सरल एवं तकनीकी रूप से सटीक अनुवाद करना कठिन है। अक्सर AI प्रणालियाँ या तो शब्दों का केवल लिप्यंतरण करती हैं या शाब्दिक अनुवाद कर देती हैं, जिससे अर्थ का संप्रेषण बाधित होता है।[29] सटीक तकनीकी अनुवाद के लिए डोमेन विशेषज्ञता आवश्यक होती है, जिसे AI मॉडल के प्रशिक्षण में शामिल करना अभी भी एक बड़ी चुनौती है।

नैतिक और गुणवत्ता संबंधी प्रश्न

AI आधारित अनुवाद प्रणालियों ने अनुवाद की गति में उल्लेखनीय वृद्धि की है, लेकिन इसके साथ ही गुणवत्ता और विश्वसनीयता को लेकर कई गंभीर प्रश्न भी उठते हैं। कई बार भावनाओं की गलत व्याख्या के कारण सामाजिक–सांस्कृतिक संवेदनशीलता को ठेस पहुँचने की संभावना रहती है, जिससे भाषाई सटीकता के साथ–साथ सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न भी खड़ा होता है। इसके अतिरिक्त, AI मॉडल किस प्रकार डेटा का चयन और प्रसंस्करण करते हैं, इस प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव देखा गया है, जो उपयोगकर्ताओं के लिए भ्रम उत्पन्न कर सकता है। सबसे महत्वपूर्ण चिंता यह है कि यदि मशीन अनुवाद पर अत्यधिक निर्भरता बढ़ती है, तो यह मानवीय भाषा कौशलों के क्षरण का कारण बन सकती है, जिससे भाषा का भावनात्मक और सांस्कृतिक पक्ष कमजोर पड़ सकता है।[30] इसलिए हिंदी जैसे संवेदनशील और व्यापक सामाजिक उपयोग वाली भाषा के लिए अनुवाद गुणवत्ता की जाँच और निरंतर सुधार अत्यंत आवश्यक है।

हिंदी में AI आधारित मशीन अनुवाद के विकास की संभावनाएँ और भविष्य की दिशा

बीते कुछ वर्षों में हिंदी में कृत्रिम मेधा आधारित अनुवाद तकनीकों ने अभूतपूर्व प्रगति की है। न्यूरल मशीन अनुवाद मॉडल्स, बहुभाषीय संवाद तकनीक और भावनात्मक अनुवाद जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। हिंदी अनुवाद अब केवल शाब्दिक नहीं, बल्कि प्रसंग और भाव आधारित भी होता जा रहा है। इन तकनीकों का उपयोग शिक्षा, प्रशासन, मीडिया और व्यवसाय जैसे विविध क्षेत्रों में किया जा रहा है, जिससे हिंदी की पहुंच और प्रभाव दोनों में वृद्धि हुई है। इस खंड में हिंदी अनुवाद की वर्तमान स्थिति, तकनीकी नवाचारों और भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।[31]

वर्तमान प्रगति की समीक्षा

हिंदी में कृत्रिम मेधा आधारित अनुवाद तकनीकों ने पिछले एक दशक में महत्वपूर्ण प्रगति की है। 2016 में गूगल ट्रांसलेट द्वारा पेश किए गए न्यूरल मशीन अनुवाद मॉडल के आगमन से हिंदी अनुवाद की गुणवत्ता में क्रांतिकारी सुधार हुआ। इसके बाद, माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर, अमेजन ट्रांसलेट और ओपन–सोर्स प्लेटफार्म जैसे Indic Trans ने हिंदी अनुवाद को न केवल और अधिक प्राकृतिक, बल्कि संदर्भ–संगत भी बना दिया। AI आधारित हिंदी अनुवाद प्रणालियाँ अब व्यापक रूप से सरकारी सेवाओं, डिजिटल शिक्षा, मीडिया संचार और व्यावसायिक लेन–देन में इस्तेमाल हो रही हैं। हालांकि, इस तकनीकी विकास के बावजूद, ये प्रणालियाँ अभी तक मानवीय अनुवादक की संवेदनशीलता और गहराई को पूरी तरह से पकड़ने में सक्षम नहीं हो पाई हैं।[32]

भविष्य के लिए तकनीकी विकास के क्षेत्र

भविष्य में हिंदी के AI अनुवाद मॉडलों को केवल शब्दों और वाक्य रचनाओं तक सीमित नहीं रखना होगा, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों को भी समझना और आत्मसात करना होगा। इसके लिए उन्नत न्यूरल नेटवर्क्स और ट्रांसफॉर्मर आर्किटेक्चर जैसे GPT, BERT के हिंदी–विशिष्ट संस्करणों का विकास आवश्यक होगा। इसके अलावा, हिंदी साहित्य, पत्रकारिता और व्यक्तिगत संवाद में भावनात्मक तत्व अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं, जिन्हें अनुवाद प्रणालियों में सही तरीके से शामिल किया जाना चाहिए। भविष्य में अनुवाद प्रणालियाँ भावना विश्लेषण के साथ एकीकृत होकर 'भावानुवाद' को सक्षम कर सकती हैं। इससे कविता, उपन्यास और प्रेरणादायक लेखन के अनुवाद में भावनाओं की सटीकता बनी रहेगी।[33]

हिंदी उपभाषाओं के लिए AI मॉडल का विकास

भारत में हिंदी की अनेक उपभाषाएँ–जैसे भोजपुरी, मगही, अवधी, ब्रज, बुंदेली आदिकृन केवल भाषाई रूप से समृद्ध हैं, बल्कि उनका एक गहन साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास भी रहा है। वर्तमान में प्रयुक्त अधिकांश AI मॉडल मुख्यतः मानक हिंदी पर केंद्रित होते हैं, जिससे इन उपभाषाओं की भाषिक विविधता तकनीकी दृष्टि से उपेक्षित रह जाती है। इसलिए भविष्य में उपभाषा–संवेदनशील मॉडल का विकास अत्यंत आवश्यक है।[34]

ऐसे मॉडल विकसित करने के लिए उपभाषाओं के बड़े और सटीक डेटा सेट (Dialectal Corpora) का निर्माण करना होगा। साथ ही, उनके संरचनात्मक और ध्वन्यात्मक पहलुओं का गहराई से अध्ययन आवश्यक है ताकि AI मॉडल इन भाषाओं की विशेषताओं को समझ सकें। इसके अतिरिक्त, उपभाषाओं के बीच स्वतः अनुवाद की क्षमता विकसित करने के लिए विशेष तकनीकों पर कार्य किया जाना चाहिए। यह समग्र पहल न केवल हिंदी की भाषिक

विविधता को तकनीकी रूप से सशक्त बनाएगी, बल्कि क्षेत्रीय साहित्य, लोककथाओं और जनसंचार माध्यमों के डिजिटलीकरण को भी एक नई गति प्रदान करेगी।[35]

बहुभाषीयता और हिंदी का वैश्विक सशक्तीकरण

भारत जैसे बहुभाषीय देश में AI आधारित अनुवाद प्रणालियों को केवल हिंदी से अंग्रेजी या अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद तक सीमित नहीं रहना चाहिए। भविष्य में हिंदी से अन्य भारतीय भाषाओं जैसे तमिल, तेलुगु, मलयालम, और विदेशी भाषाओं जैसे फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन में भी सहज अनुवाद संभव बनाना चाहिए। इस दृष्टि से "Interlingua Approach" और "Pivot-Based Translation Systems" जैसी अवधारणाओं का हिंदी के संदर्भ में उपयोग बढ़ेगा, जो अनुवाद प्रणालियों को और अधिक व्यापक और प्रभावी बनाएंगे। इस प्रकार की प्रगति वैश्विक स्तर पर हिंदी की पहुँच और प्रतिष्ठा को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकती है।[36]

हिंदी अनुवाद में एआई नैतिकता और गुणवत्ता मानक

भविष्य में हिंदी में AI आधारित अनुवाद के लिए नैतिकता और गुणवत्ता नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण होंगे। इसके लिए कई महत्वपूर्ण प्रयासों की आवश्यकता होगी। सबसे पहले, AI अनुवाद की गुणवत्ता के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश तैयार किए जाने चाहिए, खासकर बायोमेडिकल अनुवाद, कानूनी दस्तावेजों और शैक्षणिक सामग्री में सटीकता और प्रमाणिकता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए। साथ ही, डेटा गोपनीयता और सूचना सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए AI प्रणालियों में एन्क्रिप्शन और गोपनीयता नीतियों को सुदृढ़ करना होगा, ताकि संवेदनशील दस्तावेजों का अनुवाद सुरक्षित रहे। अंततः, AI मॉडल को क्षेत्रीय पूर्वाग्रहों, सांस्कृतिक पक्षपात और लैंगिक असमानताओं से मुक्त रखने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, ताकि अनुवाद की गुणवत्ता में किसी भी प्रकार का बायस न हो।[37]

नीति निर्माण और नवाचार के प्रयास

भविष्य में हिंदी आधारित AI नवाचारों को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार, अकादमिक संस्थानों और तकनीकी कंपनियों को मिलकर काम करना होगा। 'भाषा के लिए भारत' (Bhashini) जैसे बड़े मिशनों को सशक्त करना आवश्यक है, ताकि हिंदी में AI आधारित विकास को गति मिल सके। इसके साथ ही, हिंदी अनुवाद के लिए राष्ट्रीय स्तर पर ओपन डेटा प्लेटफॉर्म का विकास करना भी महत्वपूर्ण होगा, जिससे विभिन्न क्षेत्रीय और वैश्विक भाषाओं में अनुवाद की गुणवत्ता बढ़ सके। इसके अतिरिक्त, हिंदी तकनीकी शब्दावली और लोक–उपभाषाओं के लिए मानकीकृत शब्दकोश तैयार करना चाहिए, ताकि अनुवाद में एकरूपता और सटीकता बनी रहे। इस प्रकार के संयुक्त प्रयास हिंदी में कृत्रिम मेधा–आधारित अनुवाद की गुणवत्ता, विविधता और वैश्विक उपस्थिति को सशक्त करेंगे।[38]

निष्कर्ष

आज के डिजिटल युग में हिंदी भाषा का स्वरूप तेजी से परिवर्तित हो रहा है। कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद तकनीकों ने हिंदी को एक सशक्त और व्यापक संवाद भाषा के रूप में उभरने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन तकनीकों ने न केवल हिंदी के प्रचार–प्रसार को बल दिया है, बल्कि इसके संरक्षण और भाषिक नवाचार को भी नई दिशा प्रदान की है। डिजिटल मीडिया, शिक्षा, प्रशासन, और व्यवसायिक संचार में हिंदी की उपस्थिति को गति मिली है, जिससे हिंदी भाषी समाज की तकनीकी पहुँच सशक्त हुई है।

मशीन अनुवाद ने विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी को एक व्यवहारिक भाषा के रूप में स्थापित किया है। सरकारी पोर्टलों, डिजिटल शिक्षा मंचों, समाचार माध्यमों और सामाजिक नेटवर्कों में हिंदी की उपस्थिति ने व्यापक उपयोगिता सिद्ध की है। AI आधारित अनुवाद प्रणालियों ने हिंदी के क्षेत्रीय रूपों को पहचान दिलाने की दिशा में भी प्रयास शुरू किए हैं, जिससे उपभाषाएँ भी मुख्यधारा में स्थान पा रही हैं।

तकनीकी दृष्टि से हिंदी में न्यूरल मशीन अनुवाद तकनीक का सफल प्रयोग, गूगल ट्रांसलेट, माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर और IndicNLP जैसे प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से अनुवाद गुणवत्ता में सुधार तथा डिजिटल शिक्षा में हिंदी सामग्री की समृद्धि–ये सभी उपलब्धियाँ हिंदी के तकनीकी सशक्तिकरण की दिशा में ठोस संकेतक हैं। साथ ही, AI की मदद से सरकारी दस्तावेजों के हिंदी अनुवाद और डिजिटल साहित्यिक मंचों की वृद्धि भी एक नई भाषा संस्कृति के निर्माण में सहायक रही है।

हालाँकि, इन उपलब्धियों के साथ कुछ जटिलताएँ भी उभरकर सामने आई हैं। सांस्कृतिक संदर्भों का सटीक अनुवाद, बहुव्याख्यात्मक शब्दों के अर्थ निर्धारण, उपभाषाओं का समावेश, तकनीकी शब्दावली का सुसंगत प्रयोग तथा नैतिकता और डेटा सुरक्षा की अनदेखी– ये सभी ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ और अधिक समन्वय, गहराई और संवेदनशीलता अपेक्षित है। जब तक इन पहलुओं पर प्रभावी कार्य नहीं किया जाता, हिंदी में AI आधारित अनुवाद प्रणाली को पूर्णतः परिपक्व नहीं कहा जा सकता।

अंततः यह स्पष्ट होता है कि कृत्रिम मेधा और मशीन अनुवाद की तकनीकों ने हिंदी भाषा को एक नई दिशा, नई शक्ति और नई संभावनाओं से जोड़ा है। इन तकनीकों के माध्यम से हिंदी अब केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि ज्ञान, अभिव्यक्ति और सामाजिक सहभागिता की प्रमुख भाषा बनती जा रही है। हिंदी का यह तकनीकी सशक्तिकरण आधुनिक भारत के भाषाई परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत है, जो भाषा को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

संदर्भः

1. एथ्नोलोग (2024) हिंदी https://www.ethnologue.com/language/hin
2. इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार (2024) डिजिटल इंडिया पहल https://www.digitalindia.gov.in/
3. ट्यूरिंग, ए. एम. (1950) कम्प्यूटिंग मशीनरी और बुद्धिमत्ता, माइंड, 59(236), 433–460 https://academic.oup.com/mind/article/LIX/236/433/986238
4. हचिंस, डब्ल्यू. जे. (1986) मशीन अनुवादः अतीत, वर्तमान, भविष्य, एलिस होरवुड श्रृंखला में कम्प्यूटर और उनके अनुप्रयोग https://www.mt-archive.info/Hutchins-1986-pdf
5. गूगल एआई ब्लॉग (2016) अनुवाद में सफलताः गूगल अनुवाद में अधिक सटीक और प्रवाही वाक्य https://ai.googleblog.com/2016/11/zero-shot-translation-with-googles.html
6. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार (2020) भारत में डिजिटल शासन https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx? PRID=1605610
7. इंडिक एनएलपी समूह (2023) इंडिक एनएलपी पुस्तकालयः भारतीय भाषाओं के लिए प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण https://indicnlp.ai4bharat.org/
8. स्लोकम, जे. (1985) मशीन अनुवाद का सर्वेक्षणः इसका इतिहास, वर्तमान स्थिति, और भविष्य की संभावनाएं, कम्प्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स, 11(1), 1–17 https://aclanthology.org/J85-1001/
9. कोहेन, पी. (2009) सांख्यिकीय मशीन अनुवाद, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस https://www.cambridge.org/core/books/statistical-machine-translation/2C6F59F103DE89E6 C27B8792AC8E9249
10. बहदानाऊ, डी., चो, के., और बेंगियो, वाई. (2015) संयुक्त रूप से संरेखण और अनुवाद सीखकर न्यूरल मशीन अनुवाद, इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन लर्निंग रिप्रजेंटेशन (ICLR) https://arxiv.org/abs/1409.0473
11. सुत्स्केवर, आई., विन्यात्स, ओ., और ले, क्यू. वी. (2014) न्यूरल नेटवर्क के साथ अनुक्रम से अनुक्रम सीखना, न्यूरल सूचना प्रसंस्करण प्रणाली में प्रगति NeurIPS) https://papers.nips.cc/paper_f iles/paper/2014/file/a14ac55a4f27472c5d894ec1c3c743d2-Paper.pdf
12. डेव्लिन, जे., चांग, एम. डब्ल्यू., ली, के., और टाउटानोवा, के. (2019) भाषा समझ के लिए गहन द्विदिश ट्रांसफॉर्मर का पूर्व–प्रशिक्षण, https://arxiv.org/abs/1810.04805
13. गूगल रिसर्च ब्लॉग (2016) उत्पादन स्तर पर मशीन अनुवाद के लिए न्यूरल नेटवर्क https://research.googleblog.com/2016/09/a-neural-network-for-machine.html
14. माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर (2024) व्यवसाय के लिए माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर https://www.microsoft.com/en-us/translator/business/
15. इंडिक एनएलपी समूह (2023) इंडिक एनएलपी पुस्तकालय प्रलेखन https://indicnlp.ai4bharat.org/indicnlp-documentation/
16. एआई4भारत (2024) भारतीय भाषाओं के लिए एआई https://ai4bharat.org
17. गूगल क्लाउड ब्लॉग (2023) एआई का उपयोग कर रीयल–टाइम स्पीच–टू–टेक्स्ट अनुवाद https://cloud.google.com/blog/products/ai-machine-learning/real-time-speech-translation
18. आईएएमएआई और कांतार (2023) भारत में इंटरनेट रिपोर्ट 2023 https://www.iamai.in/research-reports/internet-in-india-report-2023
19. मेटा (2022) फेसबुक पर भाषाओं के अनुवाद के लिए एआई का उपयोग https://ai.facebook.com/blog/using-ai-to-translate-facebook
20. इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार (2022) डिजिटल इंडिया के तहत ई–गवर्नेंस पहल https://meity.gov.in/digital-india
21. भाषिणी मिशन (2023) डिजिटल इंडिया भाषिणी प्लेटफार्म https://www.bhashini.gov.in/

22. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार (2020) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

23. एनपीटीईएल (2024) एनपीटीईएल हिंदी अनुवादित पाठ्यक्रम https://nptel.ac.in/nptelHindi

24. गूगल डॉक्स एडिटर्स हेल्प (2023) गूगल डॉक्स में वॉयस टाइपिंगी ttps://support.google.com/docs/answer/4492226?hl=en

25. पैन, एस. जे., और यांग, क्यू. (2010) स्थानांतरण शिक्षण पर सर्वेक्षण, IEEE Transactions on KnowledgeAnd Data Engineering, 22(10), 1345–1359 https://ieeexplore.ieee.org/document/5288526

26. नेविगली, आर. (2009) शब्द अर्थ अस्पष्टता: एक सर्वेक्षण, ACM Computing Surveys (CSUR), 41(2), 1-69https://dl.acm.org/doi/10.1145/1459352.1459355

27. डाबरे, आर., और फुजिता, ए. (2019) वर्ड एलाइनमेंट के लिए पुनरावृत्त न्यूरल नेटवर्क–आधारित मॉडल https://aclanthology.org/N19-1012/

28. जैन, एस., और बंद्योपाध्याय, एस. (2017) भारतीय भाषा बोलियों से मानक भाषा में अनुवाद के लिए संसाधन निर्माण https://aclanthology.org/W17-5408/

29. कोस्टा–जुस्सा, एम. आर., और फॉनोलोसा, जे. ए. आर. (2015) अक्षर–आधारित न्यूरल मशीन अनुवाद https://aclanthology.org/P15-1036/

30. जोबिन, ए., इयेंका, एम., और वायना, ई. (2019) एआई नैतिकता दिशा–निर्देशों का वैश्विक परिदृश्य https://www.nature.com/articles/s42256-019-0088-2

31. वू, वाई., शस्टर, एम., चेन, जेड., ले, क्यू. वी., अन्य (2016) गूगल का न्यूरल मशीन अनुवाद प्रणाली: मानव और मशीन अनुवाद के बीच की खाई को पाटना,ArXivhttps://arxiv.org/abs/1609.08144

32. वासवानी, ए., शजीर, एन., परमार, एन., अन्य (2017) ध्यान ही सब कुछ है, न्यूरल सूचना प्रसंस्करण प्रणाली में प्रगति (NeurIPS) https://arxiv.org/abs/1706.03762

33. माहेश्वरी, यू. एस., और मूर्ति, के. एस. आर. (2021) न्यूरल मशीन अनुवाद के लिए उपभाषा अनुकूलन, लो–रिसोर्स भाषाओं के लिए मशीन अनुवाद प्रौद्योगिकियों पर तीसरे कार्यशाला की कार्यवाही https://aclan thology.org/2021.loresmt-1.8/

34. फिलिप कोहेन और रेबेका नोल्स (2017) न्यूरल मशीन अनुवाद के लिए छह चुनौतियाँ, एसीएल एंथोलॉजी https://aclanthology.org/W17-3204/

35. मेहराबी, एन., मोर्सटैटर, एफ., सैक्सेना, एन., लर्मन, के., और गैल्स्ट्यान, ए. (2021) मशीन लर्निंग में पूर्वाग्रह और निष्पक्षता पर एक सर्वेक्षण, एसीएम कम्प्यूटिंग सर्वे (CSUR) https://dl.acm.org/doi/10.1145/3457607

36. कुमार, पी., और गुप्ता, आर. (2022) बहुभाषीय अनुवाद मॉडल में हिंदी की भूमिका, अंतर्राष्ट्रीय भाषा प्रसंस्करण संगोष्ठी https://aclanthology.org/2022.ilp-1.12/

37. पांडे, ए., और शर्मा, के. (2023) हिंदी में।I आधारित अनुवाद में नैतिक और गुणवत्ता मानक, एसीएल सम्मेलन कार्यवाही https://aclanthology.org/2023.acl-1.48/

38. भास्कर, वी. (2024) हिंदी अनुवाद और कृत्रिम मेधा में नीति निर्माण और नवाचार, डिजिटल इंडिया मंच https://www.digitalindia.gov.in/ai-translation-innovation

ISSN No. : 0970-9398

भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित संस्कृति और भाषा

– डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
सहायक आचार्य, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
गंगापुर सिटी (राजस्थान)

सभी भारतीय भाषाओं का साहित्य अत्यधिक सम्पन्न है। जागरूक और समर्पित–चेता अनेक साहित्यकारों से समृद्ध है भारतीय भाषाएँ। वस्तुतः इन साहित्यवेत्ताओं से व्यष्टि और समष्टि का जीवन बड़ी मात्रा तक प्रभावित हुआ है। विभिन्न भाषा साहित्यों की रचनाओं में विशेषकर मिथक साहित्यों की कल्पनाओं का मूलाधार एक ही भारतीय पुराण साहित्य का हिमालय है। इन्हीं पौराणिक स्त्रोतों में अवगाहन करके अपनी चेतनता में नव्य दृष्टि भरने वाले मिथकीय साहित्यकार हमारे पूरे चिन्तन क्षेत्र को भी भव्य सांस्कृतिक प्राणोन्मेष से भर देते हैं। भारतीय भाषाओं के मिथक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन विश्लेषण बड़े महत्व का काम है। उससे सुदूरवर्ती उत्तर, दक्षिण आदि भू भागों में रहने वाले लोगों के बीच एक सांस्कृतिक सेतु भी निर्मित हो सकता है, जो समग्र भारत की सामासिक संस्कृति और एकाग्रता को परिपुष्ट करने में सहायक भी सिद्ध हो सकता है।

आज का समय तीव्र परिवर्तन, वैश्वीकरण और तकनीकी संक्रमण का युग है। जीवन–शैली, सामाजिक संरचनाएँ और मानवीय मूल्यों के स्वरूप निरंतर बदल रहे हैं। ऐसे परिवर्तनशील दौर में हमारी सांस्कृतिक विरासत, भाषायी अस्मिता और साहित्यिक परंपराओं के प्रति सजग और संवेदनशील बने रहना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि भाषा और साहित्य केवल अभिव्यक्ति के माध्यम नहीं होते, वे समाज की चेतना, संस्कृति और सामूहिक स्मृति के संवाहक भी होते हैं। वर्तमान समय में बढ़ती सामाजिक जटिलताओं, वैचारिक मतभेदों और आक्रोशपूर्ण परिस्थितियों के बीच भाषिक और साहित्यिक उदारता ही संवाद, सह–अस्तित्व और मानवीय समरसता का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। साहित्य मनुष्य को संवेदनशील बनाता है, जबकि भाषा विभिन्न समुदायों, संस्कृतियों और क्षेत्रों के बीच आत्मीय सेतु का कार्य करती है। इसी कारण हिंदी का दायित्व केवल राजभाषा होने तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भारतीय संस्कृति की विविध धाराओं को एक सूत्र में पिरोने वाली राष्ट्रीय चेतना की वाहक भी है।

हमारी राजभाषा हिंदी भारत की बहुरंगी सांस्कृतिक परंपराओं को साथ लेकर देश को भावनात्मक स्तर पर जोड़ने का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभा रही है। वह विविध भाषाओं, प्रदेशों और संस्कृतियों के मध्य संवाद, समन्वय और आत्मीयता की भावना को सुदृढ़ करते हुए राष्ट्रीय एकता को नई शक्ति प्रदान कर रही है। निस्संदेह, हिंदी भविष्य में भी अपनी समावेशी प्रकृति, सांस्कृतिक उदारता और जन–संपर्क क्षमता के बल पर देश को जोड़ने, उसकी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने और राष्ट्रीय समरसता को सशक्त बनाने की दिशा में निरंतर अग्रसर रहेगी।

भाषा और संस्कृति के बीच बिंब–प्रतिबिंब सा सम्बन्ध है। भाषा संस्कृति की वाहिका है। दोनों के सम्बन्ध पर विचार करने का मतलब है भाषा से संस्कृति की अभिव्यक्ति का स्वरूप समझना और भाषा एवं साहित्य के स्वरूप से संस्कृति के विकास को समझना। अंग्रेजी में प्रयुक्त 'कल्चर' शब्द हिंदी भाषा में 'संस्कृति' शब्द के रूप में पारिभाषित किया जाता है। संस्कृति का अभिप्राय शुद्धिकरण है अथवा संस्कृत करने की प्रक्रिया को संस्कृति कहते हैं। मनुष्य को जन्तुजगत में अन्तर्भूत किया गया है। उसका अर्थ यह होता है, मनुष्य भी एक पशु है। इस कारण से उसका व्यक्तित्व पशु सामान्य वृत्तियों से परिचालित होता है। उसकी भी मूलभूत आवश्यकताएँ पशुओं से भिन्न नहीं है। अतः उसके मनोव्यापार या मनोवृत्तियाँ पशुओं के समान भी हैं। खाना–पीना, आश्रय पाना, यौन भावनाएँ मनुष्य के अन्दर पशुओं के समान चला ही करती हैं। इन्हीं मूलभूत आवश्यकताओं के साथ सम्बन्ध, नाना भाव व्यापार क्रोध, भय, स्पर्धा, मोह और लोभ, आसक्ति, अपने लिए सुरक्षित रखने की आकांक्षा, स्वार्थ ऐसी बहुत–सी बातें मनुष्य के अन्तरंग में चला करती हैं। इनमें से कतिपय भावनाएँ मौका ताककर मनुष्य में उत्कृष्ट रूप से जागृत होती हैं। इसके लिए भाषा सहायक बनती है। इन भावनाओं का असामयिक अथवा अनियन्त्रित जागरण बहुधा मनुष्य के लिए हानिकारक भी होता है। हानिकारक इसलिए कि उससे परस्पर संघर्ष हो जाने की गुंजाइश है।

मनुष्य को समाज में जीना होता है इसलिए प्रत्येक मनुष्य का जीवन समाज से संबद्ध और नियंत्रित होता है। आज की दृष्टि में प्रत्येक मनुष्य एक वैश्विक समाज में जी रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने भाव व्यापारों को, आवश्यकताओं को संयत और नियंत्रित करके जीना है। यह नियंत्रण सामाजिक नियमों के आधार पर चलाना भी है, क्योंकि सामाजिकता से व्यक्ति–जीवन संबद्ध ही होता है।

व्यक्ति मानस को सामाजिक जीवन के लिए सर्वथा अनुकूल बनाने के लिए, स्वाभाविक रूप से सामाजिक अनुशासन के लिए तैयार करने की प्रक्रिया को मानुषीकरण कहते हैं। यह मानुषीकरण ही सच्चे अर्थ में संस्कृतिकरण है, पशुसामान्य वृत्तियों से मनुष्य का विशुद्धिकरण अथवा उदात्तीकरण ही संक्षेपतः संस्कृति का तात्पर्य है।

विश्व में अनेक राष्ट्र अस्तित्व में हैं और प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं, जीवन–मूल्यों तथा सामाजिक दृष्टियों से संचालित होता है। इन विविध संस्कृतियों की अपनी–अपनी विशेषताएँ, मान्यताएँ और ऐतिहासिक अनुभव होते हैं, जो उन्हें विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। यद्यपि प्रत्येक संस्कृति का मूल उद्देश्य मानव–मन का परिष्कार, नैतिक उत्थान और जीवन–मूल्यों की स्थापना ही होता है, तथापि प्रादेशिक परिस्थितियों, ऐतिहासिक प्रभावों और सामाजिक भिन्नताओं के कारण उनमें वैचारिक एवं व्यवहारगत विविधताएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। कई बार यही विविधताएँ सांस्कृतिक टकराव और संघर्ष का कारण भी बनती रही हैं। आज के वैश्विक युग में, जब मानवता सह–अस्तित्व, शांति, संवाद और समन्वय की नई राह खोज रही है, तब ऐसी संस्कृति की आवश्यकता अनुभव की जा रही है जो विश्व–बंधुत्व, सहिष्णुता, समरसता और मानवीय एकता के मूल्यों को सुदृढ़ आधार प्रदान कर सके। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति विश्व की अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अधिक व्यापक, समन्वयशील और मानवोन्मुख दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति ने सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और सह–अस्तित्व जैसी उदात्त मान्यताओं को आत्मसात करते हुए संपूर्ण मानवता के कल्याण का संदेश दिया है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समावेशी चेतना और विविधता में एकता की भावना है। यहाँ विभिन्न भाषाएँ, धर्म, परंपराएँ और जीवन–पद्धतियाँ होते हुए भी सांस्कृतिक समरसता का अद्भुत स्वरूप देखने को मिलता है। इस महान सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने, अभिव्यक्त करने और विश्व–पटल पर प्रतिष्ठित करने की सबसे बड़ी शक्ति भारतीय भाषाओं में निहित है। विशेषतः हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ भारतीय संस्कृति की संवेदनाओं, जीवन–दृष्टि और मानवीय मूल्यों को जन–जन तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम हैं। वस्तुतः, भारतीय भाषाएँ केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा और उसकी जीवंत अभिव्यक्ति हैं। इनके माध्यम से ही भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्व विश्व मानवता तक पहुँच सकते हैं और वैश्विक जीवन को अधिक मानवीय, संतुलित और समरस बनाने में सार्थक योगदान दे सकते हैं।

भारत की संस्कृति का आरंभ अत्यन्त प्राचीन काल में घटित हुआ, यह अनेक साक्ष्यों से प्रमाणित भी होता है। संस्कृति के वाहक मुख्य रूप से दो साधन हैं। एक : परंपरा, दो : भाषा। भाषा, संस्कृति तथा परंपरा का पोषक होती है, राष्ट्रीयता के विकास में सहायक होती है। भाषा का प्रचलन और व्यापन साहित्य के द्वारा होता है। सबसे अधिक प्रचलित भाषा सार्वत्रिक भाषा होती है लेकिन सार्वत्रिक भाषा ऐसी कोई वस्तु नहीं है। तब भारत की सर्वाधिक व्याप्त भाषा ही सबसे प्रचलित भाषा मानी जा सकती है। भारत की भाषाएँ अनेक हैं लेकिन अन्तःसलिला के रूप में उन सारी भाषाओं में प्रवाहित संस्कृत भाषा है। विशेषकर संस्कृति की दृष्टि से सबसे धन्य भाषा भी संस्कृत है। संस्कृत से संपुष्ट ही सारी भाषाओं के कलेवर हैं। विशेषकर हिंदी भाषा संस्कृत की उत्तराधिकारिणी भाषा कहलाती है, उसके द्वारा ही संस्कृति विकास को प्राप्त भी करती है। संस्कृत के प्राचीन साहित्य से ही भारत की पीढ़ियों से गृहीत भारतीय संस्कृति निहित है। इस कारण इधर वैदिक साहित्य से लेकर प्रसारित संस्कृति के कुछ ज्योतिर्मय बिंदुओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा हुई है। संस्कृत साहित्य अत्यन्त पुरातन काल से हमारे साथ है। कम–से–कम छः हजार वर्षों से भारत के जीवन को विभिन्न दिशाओं से संस्कृत और उदात्त करते रहने वाला साहित्य भारत में है। साहित्य के अन्तर्गत संगीत और कलाएँ भी गिनायी जाती हैं। यही नहीं साहित्य के भीतर भी दो विभाग हैं वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। इन उभय पक्षों पर दृष्टि डालते हुए प्रस्तुत लेख में यह दिखाया गया है कि साहित्य की संकल्पनाएँ पीढ़ियों से अंगीकृत की जाकर कैसे भारतीय जन–चेतना में जीवन्त रहकर संस्कृति की धाराएँ हो गई है और उनका विकास करके अखिल विश्व के लिए शान्ति का सन्देश कैसे पहुँचाया जा सकता है।

ऋग्वेदीय साहित्य कम–से–कम छः हजार वर्षों से पहले हमारे साथ है। यहाँ के जीवन को परिष्कृत, सभ्य और संस्कृत करते हुए यह साहित्य हमारा पथप्रदर्शन कर रहा है। सर्वात्मवाद और अद्वैत भावना ऋग्वेदीय साहित्य से ही प्रवाहित होकर गंगा की अमृतधारा के समान भारत के मानस में परिव्याप्त है। इसके आधार पर एक भारतीय व्यक्ति, जगत के समस्त चेतन पदार्थों में आत्मा के दर्शन करता है। इस धारणा के चलते भारत में यह माना जाता है कि एक पौधे की डाल को काटना भी अनुचित है। समस्त प्राणियों में चौतन्य है। सभी में एक आत्मा ही स्पंदित होती है। तब यह कहना नहीं है कि मनुष्य–मनुष्य में मूलतः अभिन्नता है। इस सत्य को सर्वात्मवाद कहते हैं। सूक्ष्म चिन्तन से यह तथ्य दार्शनिक धरातल पर ही नहीं व्यावहारिक जीवन में भी आभासित होता है। इसको अद्वैत भी कहते हैं।

"सर्वमेवेदं पुरुषः तदविश्वं उपजीवति" (ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त)।

इस समस्त सृष्टि में व्याप्त चेतना उसी परम पुरुष अथवा परमात्मा की अभिव्यक्ति है, सम्पूर्ण जगत उसी से आलोकित, संचालित और चौतन्यवान है—भारतीय दर्शन का यही मूल तात्पर्य है। उपनिषदों और वेदान्त की परंपरा ने इस सत्य को अनेक रूपों में व्यक्त किया है। वेदान्त के महावाक्यकृ'तत्त्वमसि' (तत् त्वम् असि – वही तुम हो) तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्मस्वरूप है)—इसी सर्वात्मवाद और अद्वैत चेतना के उदात्त सिद्धांत को प्रतिपादित करते हैं। इन वचनों में यह भाव निहित है कि समस्त प्राणी, समस्त जीवन और समस्त अस्तित्व एक ही सार्वभौम चेतना के विविध रूप हैं। जब मनुष्य इस आध्यात्मिक सत्य को हृदयंगम कर लेता है, तब उसके भीतर 'मैं' और 'दूसरे' का भेद धीरे—धीरे समाप्त होने लगता है। वह यह अनुभव करने लगता है कि किसी अन्य व्यक्ति या प्राणी को होने वाला दुःख, पीड़ा अथवा वेदना वस्तुतः उसकी अपनी ही वेदना है। इस अनुभूति से करुणा, सहानुभूति, प्रेम और संवेदनशीलता का उदय होता है, जो मनुष्य को केवल व्यक्तिगत हितों तक सीमित नहीं रहने देती, बल्कि समस्त जीव—जगत् के कल्याण की दिशा में प्रेरित करती है।

'अहिंसा परमो धर्मः' जैसी संकल्पनाएं इसी सर्वात्मवादी चिंतन से बह निकली हैं। भारतीय जनता इसी वाद की प्रेरणा से हमेशा हिंसा से दूर रहने के इच्छुक है। दुनिया में अन्य देशों के लोग बहुधा साम्राज्य स्थापित करने के लिए इतिहास के किसी भी मोड़ पर उत्सुक जब दिखायी देते हैं तो भारत की जनता में ऐसी उत्सुकता कभी दिखायी नहीं दी। उसने हिंसालुता से हमेशा दूर रहना चाहा है। स्वतंत्रता संग्राम में भी अहिंसा के रूप में यह भावना साकार दिखायी देती है। वस्तुतः महात्मा गाँधी के हथियारों मे यह अहिंसा एक अमोघ शस्त्र रही है। यदि यह सर्वात्मवादी चिंतन विश्व में सर्वव्याप्त किया जाये तो जगत् में बम वगैरह घातक पदार्थों का निर्माण हमेशा के लिए बंद हो जाएँगे, युद्ध और अन्य प्रकार के झगड़े भी बहुत कम हो जाएँगे। दुनिया में गाँधी जैसे महामानव उत्पन्न हो जाएँगे।

भारतीय जन जीवन में जीवन मूल्यों के प्रसारण में भी भाषा साहित्य का महत्त्वपूर्ण हाथ है। 'सत्यं वद (सत्य ही बोलो) धर्मं चर' (धर्म का आचरण करो) 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव' इत्यादि कई व्यक्ति— गुणों को उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है। ये वाक्य वैदिक साहित्य से ही उद्धृत हैं। गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके अपने घर जाने के लिए तैयार होने वाले शिष्य को दिए जाने वाले उपदेश ये हैं। दीक्षान्त उपदेश भी उसे कह सकते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद्, प्रसिद्ध उपनिषदों में एक है। इस उपनिषद् में जीवनोपयोगी और भी बहुत सारे उपदेश हैं। आचार्य अपने शिष्य को यह भी उपदेश देते हैं कि हमारे भी (आचार्यों के भी) अच्छे कर्मों का ही तुम्हें अनुकरण करना चाहिए। (यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नोइतराणि) ऐसे उपदेश हमेशा श्रेष्ठ व्यक्तियों को बनाने वाले होते हैं। गीता के आचार्य अन्त में अर्जुन को यह उपदेश भी देते हैं कि मेरे उपदेशों पर सोचकर, विमर्शनात्मक ढंग से निरीक्षण करके जो तुम्हें उचित लगे उन्हें ही पालन करना— "विमृश्यैतदशेषेण पथेच्छसि तथा कुरू" (गीता अध्याय 18 श्लोक 63) व्यक्तित्व विकास के लिए तथा शिष्य में आत्मविश्वास भरने के लिए ये उपदेश बड़े सहायक हैं। गुरु—शिष्यों की परंपरा भी भारतीय संस्कृति का चेतनापूर्ण अध्याय है। इन सबसे जगत् में संघर्ष का होना रोका जाता है।

भारतीय संस्कृति का और एक महत्त्वपूर्ण संदेश जिसका प्रचार विश्व में करना उपादेय होगा। वह कर्मफल सिद्धान्त है। मनुष्य जो अच्छे और बुरे कर्म करता है उसका फल अवश्य ही उसे अपने जीवन में भोगना होगा। अच्छे कर्मों से, शुभ कर्मों से शुभ परिणाम ही होते हैं और पाप—कर्मों से प्रत्येक को बुरा फल ही अवश्य भोगना पड़ता है, उसके लिए कितने ही जन्म क्यों न ग्रहण करने पड़े। ये जन्म मनुष्य के रूप में ही होना अनिवार्य नहीं है। अन्य प्राणियों में से किसी भी रूप में पैदा होना भी पर्याप्त है। महाभारत के 'स्त्री पर्व' में बताया गया है— "शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा कृतं लभति सर्वत्रा नाकृतं भुजयते क्वचित" (महा. स्त्री पर्व. 4—36) इसका तात्पर्य यह है कि जीवन में सुख या दुःख भोगने का कारण पहले किये हुए शुभ या अशुभ कर्म ही हैं। शुभ कर्मों का आचरण करने वाले को शुभ परिणाम और बुरे कर्म करने वाले को दुःख फल ही प्राप्त होंगे। उसी पर्व में अन्यत्र यह भी कहा गया है कि पूर्वकृत कर्मों के फल सोते समय भी, जागृत होने पर भी, खड़े होते समय भी और दौड़ते समय भी मनुष्य का पीछा करते हैं। उसमें से अलग रहना किसी भी व्यक्ति के वश में नहीं है। (धृतराष्ट्र को विदुर द्वारा दिए जाने वाले उपदेशों में प्रस्तुत भाग है।) शयानं चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम् (महा. भा. स्त्री पर्वम् 4—32) यह कर्मफल सिद्धान्त वैदिक संस्कृति द्वारा प्रसारित अमोघ सिद्धान्त है जो जगत् में संघर्ष और युद्ध को निस्सन्देह कम कर देगा।

वैदिक साहित्य से प्रवाहित संदेशों के विषय में ही ऊपर थोड़े से उद्धरण देकर विश्व शान्ति के उपादेय तत्व उदाहृत किये गए हैं। भारत के प्राचीन लौकिक साहित्य में भी इन उपर्युक्त सांस्कृतिक सन्देश भरे पड़े हैं। भारत में

हमेशा ही पेड़, पौधों के प्रति जैसा अपनापन दिखाया गया है उसी का उदाहरण 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' शीर्षक महाकवि कालिदास के नाटक में है। उस नाट्य कृति के चतुर्थ अंक में पति के घर जाने के लिए तैयार होने वाली शकुन्तला का दृश्य प्राप्त होता है। पिता कण्व के द्वारा उस आश्रम में पालित पेड़–पौधे का संबोधन करते हुए यह कहा जाता है– "हे वनदेवताओं, तुम्हारी प्रिय सखी अपने पति के घर आज जा रही है। तुम लोग इसकी अनुज्ञा या अनुमति दे दो। मुझे मालूम है तुम्हारे मन में शकुन्तला का चला जाना अत्यन्त दुःखकारक है, क्योंकि तुम्हारे प्रति यह ऐसा ही स्नेह किया करती रही है। तुम को जल दिए बगैर जो खुद पानी नहीं पीती और जो अपने अलंकार के लिए भी तुम्हारे किसलयों को नहीं तोड़ा करती और तुम लोगों के प्रथम पुष्पित होने का दिन जिसके लिए बहुत उत्साह और उत्सव का दिन है, तो भी अब तुम्हें शकुन्तला को जाने की अनुमति प्रदान करनी ही चाहिए।"

विश्व की संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का यह उत्कृष्ट स्वभाव अत्यन्त प्राचीन काल से सजीव है। दुनिया के विकास में अवरोध डालने वाली कई शक्तियाँ हैं जिनसे जगत् में संघर्ष और घात प्रतिघातमय वातावरण उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है। इसके स्थान पर शान्ति और सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए संस्कृतियों का विश्व व्याप्त स्वरूप सहायक होगा। उनमें भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक उपयोगिता है। भारतीय संस्कृति के समान चिरपुरातनकाल से जीवन्त, संजीवनी शक्ति से पूर्ण संस्कृति अन्य किसी भी स्त्रोत से संभव नहीं है। इस कारण मेरी यही हिदायत है कि विश्व शान्ति कायम रखने के लिए भारत की इस समृद्ध संस्कृति के तत्वों का व्यापन ही एक मात्र मार्ग दिखायी देता है, यह मेरा निश्चित मत है, यही सत्यदर्शी ऋषि कवियों का भी आदेश लगता है। लौकिक साहित्य में सांस्कृतिक जीवन के और भी भव्य गिरिशिखर दिखायी देते हैं जिनसे मानव मन की सदानीरा सांस्कृतिक जलधाराएँ चल निकली हैं।

रामायण भारतीय संस्कृति का केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि भारतीय जीवन–दर्शन, नैतिक आदर्शों, सांस्कृतिक मूल्यों और लोकमंगल की भावना का शाश्वत एवं प्रेरणादायी ग्रंथ है। यह ऐसा कालजयी महाकाव्य है जिसने सदियों से भारतीय समाज के विचारों, चरित्र और जीवन–मूल्यों को दिशा दिखलाई है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित इस महाग्रंथ में एक ऐसे महामानव श्रीराम के चरित्र का चित्रण किया गया है, जिन्होंने सत्य, त्याग, कर्तव्यपरायणता, मर्यादा, करुणा और लोककल्याण को अपने जीवन का सर्वोच्च आदर्श बनाया। उनका संपूर्ण जीवन इस तथ्य का प्रमाण है कि विपरीत परिस्थितियों में भी धर्म और नैतिकता के मार्ग से विचलित हुए बिना समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन किया जा सकता है।

श्रीराम का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के उन शाश्वत मूल्यों का सजीव प्रतिमान है, जिनमें आत्मसंयम, धर्मनिष्ठा, विनम्रता, सहिष्णुता, न्यायप्रियता, संवेदनशीलता तथा जनहित की भावना सर्वोपरि मानी गई है। वे एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श मित्र तथा आदर्श शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका संपूर्ण जीवन यह संदेश देता है कि व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र और मानवता के व्यापक हित को प्राथमिकता देना ही सच्चे नेतृत्व और महान चरित्र की पहचान है। रामायण में वर्णित उनके आदर्श केवल धार्मिक या पौराणिक संदर्भों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि आज भी सामाजिक, पारिवारिक और प्रशासनिक जीवन में समान रूप से प्रासंगिक एवं प्रेरणास्रोत हैं।

इसी कारण रामायण भारतीय जनमानस में आस्था, नैतिकता, सांस्कृतिक चेतना और मानवीय मूल्यों का एक सुदृढ़ आधार स्तंभ बन गई है। यह केवल एक धार्मिक या पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि मानव जीवन के विविध आयामों को आलोकित करने वाला ऐसा कालजयी ग्रंथ है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास के लिए आवश्यक आदर्शों एवं जीवन–मूल्यों का मार्गदर्शन प्रदान करता है। रामायण में निहित सत्य, धर्म, कर्तव्यनिष्ठा, त्याग, करुणा, सहिष्णुता, पारिवारिक सौहार्द, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा लोककल्याण जैसी शिक्षाएँ मानवीय भावनाओं को सुदृढ़ करती हैं और व्यक्ति को उच्च नैतिक आदर्शों के अनुरूप जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं।

यह ग्रंथ हमें सिखाता है कि जीवन में आने वाली कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य, संयम और धर्म के मार्ग का परित्याग नहीं करना चाहिए। रामायण के पात्र केवल कथा के चरित्र नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे आदर्श व्यक्तित्व हैं, जिनके आचरण और जीवन–संघर्ष मानव समाज को सदैव प्रेरित करते रहे हैं। यही कारण है कि रामायण की शिक्षाएँ समय, समाज और परिस्थितियों की सीमाओं से परे जाकर सार्वकालिक और सार्वभौमिक महत्व रखती हैं। आज के युग में, जब समाज अनेक नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब रामायण में निहित आदर्श और मूल्य मानव जीवन को संतुलित, मर्यादित और उद्देश्यपूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

वास्तव में, रामायण भारतीय संस्कृति की उस अमूल्य धरोहर का प्रतिनिधित्व करती है, जिसने सहस्राब्दियों से समाज को नैतिक दिशा, सांस्कृतिक पहचान और आध्यात्मिक आधार प्रदान किया है। इसकी शिक्षाएँ आज

भी उतनी ही सार्थक, प्रेरणादायी और प्रासंगिक हैं जितनी हजारों वर्ष पूर्व थीं, और भविष्य में भी मानवता को सत्य, सदाचार तथा लोकमंगल के पथ पर अग्रसर करती रहेंगी।

जब परिस्थितियोंवश रामचन्द्र को अपने समस्त राजकीय अधिकारों से वंचित होकर चौदह वर्षों के लिए वनवास स्वीकार करना पड़ा, तब उन्होंने इसे किसी दंड या दुर्भाग्य के रूप में नहीं, बल्कि पिता की आज्ञा और धर्मपालन के पवित्र कर्तव्य के रूप में सहर्ष स्वीकार किया। उनके त्याग की महानता इसी में निहित है कि राज्य, वैभव और अधिकारों से दूर होते हुए भी उनके मुखमंडल की प्रसन्नता और आत्मविश्वास में तनिक भी कमी नहीं आई। यह त्याग केवल व्यक्तिगत तपस्या नहीं था, बल्कि सत्य, मर्यादा और आदर्श के प्रति उनकी अटूट निष्ठा का प्रमाण था। वनवास की कठिन परिस्थितियों में मुनिवृत्ति के साथ जीवन व्यतीत करने के पश्चात जब वे अयोध्या लौटे, तब उन्होंने राज्य को व्यक्तिगत सुख–सुविधा का माध्यम न मानकर लोकहित और धर्मरक्षा का दायित्व समझा। राम के लिए शासन सत्ता का अर्थ अधिकार नहीं, बल्कि जनकल्याण था। उन्होंने सत्यपालन को केवल व्यक्तिगत नैतिकता तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे लोकमंगल और समाजहित से जोड़कर देखा। उनकी दृष्टि में वही सर्वोच्च सत्य है, जिससे अधिकाधिक लोगों का कल्याण हो।

इसी लोकहितकारी शासन–दृष्टि से 'रामराज्य' की परिकल्पना जन्म लेती है। रामराज्य केवल एक राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि न्याय, समता, नैतिकता, करुणा और जनकल्याण पर आधारित आदर्श सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना में रामराज्य आज भी सुशासन, सामाजिक समरसता और लोककल्याण के सर्वोच्च आदर्श के रूप में जीवंत है। वर्तमान समय में, जब समाज अनेक नैतिक, सामाजिक और मानवीय चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब राम के जीवन–मूल्य और रामराज्य की अवधारणा हमें यह प्रेरणा देती है कि सत्ता का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि समाज में न्याय, संवेदना और लोकमंगल की स्थापना करना है। यही कारण है कि श्रीराम भारतीय संस्कृति में केवल एक ऐतिहासिक या धार्मिक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि आदर्श मानवता, नैतिक नेतृत्व और जनकल्याणकारी जीवन–दृष्टि के शाश्वत प्रतीक के रूप में आज भी श्रद्धा और प्रेरणा के केंद्र बने हुए हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. बिहारीलाल, विश्वनाथ तथा त्रिपाठी, नरेश चन्द्र (2012) ''शिक्षा के नूतन आयाम'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.– 154–170
2. पाण्डेय, डॉ. रामशकल (2011) ''मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य'', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ.– 162–165
3. पाण्डेय, डॉ. रामशकल व मिश्र, डॉ. करूणाशंकर (2011) ''मूल्य शिक्षण'', श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ.– 125–137
4. रूहेला, सत्यपाल (2014) ''मूल्य शिक्षा : क्या, क्यों, कैसे?'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.– 220–240
5. शर्मा, डॉ. आर.ए. (2011) ''मानव मूल्य एवं शिक्षा'', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ.– 396–397
6. सिंह, आर. पी. (2013) ''उभरते भारतीय समाज में शिक्षा तथा शिक्षक की भूमिका'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.– 157–166
7. शर्मा, आर. ए. (2005) ''अध्यापक शिक्षा'', इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, पृ.– 427–440
8. शर्मा, सरोज (2007) ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा'', श्याम प्रकाशन, जयपुर, पृ.– 26–27

20 फरवरी, 2026 को अगरतला में आयोजित पूर्व, पूर्वोत्तर एवं उत्तरी क्षेत्रों के संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन के अवसर पर 'पूर्वोत्तर भारत' विशेषांक का विमोचन करते हुए माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी तथा अन्य मंचासीन अतिथिगण

20 जनवरी, 2026 को इंदौर में आयोजित मध्य, पश्चिम एवं दक्षिण क्षेत्रों के संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन में पुरस्कार विजेताओं को शील्ड प्रदान करते हुए माननीय गृह राज्य मंत्री श्री बंडी संजय कुमार तथा अन्य मंचासीन अतिथिगण।

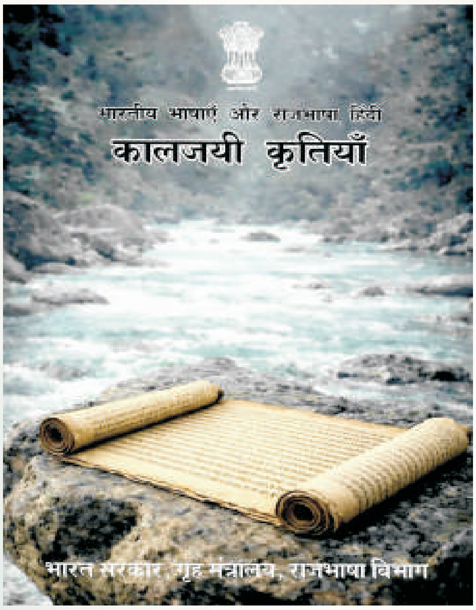

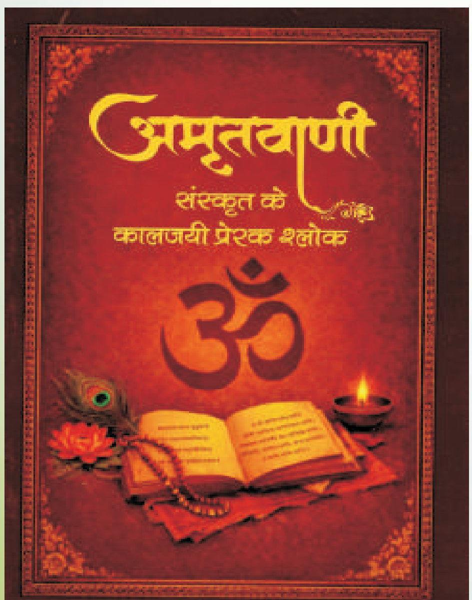

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के प्रकाशन

★ ★ ★ ★ ★ ★

भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, एन डी सी सी-II भवन, नई दिल्ली-110001
के लिए वारिधि कार्ड्स एण्ड ग्राफिक्स, चावड़ी बाजार, दिल्ली द्वारा मुद्रित